इमर्जेन्सी
क्या सच? क्या झूठ?

आपात्काल : क्यों, क्या, कैसे
की
अनुभूतिजन्य सच्ची कहानी

शंकर दयाल सिंह

दिल्ली प्रिंटर्स प्रकाशन
4648/21 दरियागंज, नई दिल्ली-2

EMERGENCY • KYA SACH? KYA JHUTH?
SHANKAR DAYAL SINGH
PRICE : TWENTY RUPEES

इमर्जेन्सी • क्या सच? क्या झूठ?

प्रकाशक . दिल्ली प्रिंटर्स प्रकाशन
4648/21 दरियागंज
नई दिल्ली-2 फोन 271508, 275292

प्रथम संस्करण : अक्तूबर 1977
प्रथम आवृत्ति : अक्तूबर 1977
द्वितीय आवृत्ति : अक्तूबर 1977
तृतीय आवृत्ति : अक्तूबर 1977

मूल्य : बीस रुपये

मुद्रक : दिल्ली प्रिंटर्स, 21 दरियागंज, नई दिल्ली-2 फोन : 271508, 275292

अन्तरात्मा की आवाज

भूलें इंसान से होती हैं लेकिन उन भूलों को स्वीकार कर उनके प्रति प्रायश्चित बोध भी मनुष्यता का एक अंग है। देश में आपातकाल के दौरान जो गलतियां होती रहीं, ज्यादतियां हुई, जनतंत्र की आस्था को और संसदीय मर्यादा को जो ठेस लगी उन सब के प्रति कांग्रेस के सच्चे सिपाही होने के नाते मैं यह स्वीकार करता हूं कि यह इतिहास का काला अध्याय है। सच्चाई और निष्ठा के साथ प्रायश्चित स्वरूप **इमर्जेन्सी : क्या सच ? क्या झूठ ?** प्रस्तुत कर रहा हूं। मैं जानता हूं कि मेरी साफगोई से कतिपय विवाद उठ खड़े होंगे और मेरे मित्रों को कष्ट भी पहुँचेगा। लेकिन करूं क्या, राजनीतिक कलेवर के नीचे आत्मा में सच्चाई का जो दर्द छिपा हुआ है वह रह रहकर मुझे टीस देता है—मेरी अभिव्यक्तियां अनुभूतिजन्य है।

किसी व्यक्ति के प्रति मेरा कोई दुराव नहीं है, प्रश्न यहां नैतिक मूल्यों का है और व्यवस्था के तोड़-मरोड़ का। पिछले दिनों मेरे जैसे तमाम लोगों ने अपने-आपको गिरवी रख दिया था। मैं वैचारिक रूप से "बन्धुआ मजदूर" वाली स्थिति से अपने को मुक्त कर रहा हूं।

आभार स्वीकार करने से ऋण भार कम नहीं होता है, अतः मैं सर्वश्री धर्मवीर गांधी, दिल्ली प्रिंटर्स प्रकाशन के मनीरामजी, मनमोहनजी, राजनारायणजी, हिन्दी बुक सेन्टर के अमरनाथजी, नरेन्द्रजी, पटना के अपने मित्रों सर्वश्री पर्वतियार, रणविजय, अशोक और निर्मल को भूल नहीं सकता। जगदीशजी की मदद न होती तो आकार ही कठिन था। इन सबों से परे··· प्रेरणा और कानन का उत्साह। भाई राजेन्द्रकुमार नायक और श्रीधर वासुदेव धावे को भी भुलाया नहीं जा सकता। और उन सबों की कृतज्ञता तो पुस्तक के हर पन्ने पर बिखरी हुई है जिनके पत्र, शब्द और अंश मैंने प्रयोग में लाये हैं।

-शंकर दयाल सिंह

दिल्ली
1 अक्तूबर, 1977

क्रम

लिखना कठिन हो रहा है

● —प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने आज कांग्रेस संसदीय दल की बैठक में बताया कि किस प्रकार श्री जगजीवन राम कल उनसे मिले थे और क्या बातचीत हुई थी।

श्रीमती गांधी ने बताया कि कल अपराह्न उन्हें संदेश मिला कि श्री जगजीवन राम कांग्रेस संसदीय बोर्ड की बैठक से पूर्व उनसे मिलना चाहते हैं।

प्रधानमंत्री ने बताया कि कल तबीयत भी ठीक नहीं थी और आज की बैठक होने वाली थी, इसलिए मैंने उसी वक्त उन्हें मिलने के लिए बुलाया। श्री जगजीवन राम पौने पांच बजे मेरे पास आये और गाड़ी से उतरने और पुनः गाड़ी तक पहुंचने में सिर्फ पांच मिनट का समय लगाया।

श्री जगजीवन राम बैठ गये और उन्होंने श्रीमती गांधी से कहा—यदि आप आपातस्थिति समाप्त कर देती हैं तो इससे आपकी प्रतिष्ठा और बढ़ेगी।

श्रीमती गांधी—गृह मंत्रालय ने इस संबंध में विचार किया था तथा आपातस्थिति के अनेक प्रावधानों में ढील दे दी गई है। आपातस्थिति को पूर्णतः समाप्त करने के लिए अनुकूल समय अभी नहीं है।

श्री जगजीवन राम—जैसी भी परिस्थिति उत्पन्न होती है आप अपने सामान्य अधिकारों द्वारा ही निबट सकती हैं।

श्रीमती गांधी—मैं इस पर गृह मंत्रालय से पुनः विचार-विमर्श करूंगी।

● एक संवाददाता ने जब श्री जगजीवन राम से पूछा कि आपातस्थिति की घोषणा से पूर्व कांग्रेस छोड़कर आने के श्री जयप्रकाश नारायण के आह्वान के बाद 18 माह तक क्यों प्रतीक्षा करते रहे?

श्री जगजीवन राम ने टिप्पणी की—'उन्होंने मुझसे कहा था या किसी और से। मैं हर निर्णय ठीक समय पर लेता हूं।'

—3 फरवरी 1977 को प्रकाशित पत्रों की रिपोर्ट

'मत मुस्कुराओ और तुम आंसू बहाओ मत
भेद दिल का खोलकर सबको बताओ मत
सो रहा मासूम बच्चे की तरह जो दर्द
बेसबब ही छेड़कर उसको जगाओ मत।'

कहीं की पढ़ी या सुनी ये पंक्तियां रह-रहकर याद आती हैं।

सच में लिखना या कहना बड़ा कठिन हो रहा है। क्या लिखूं और क्या न लिखूं? आपात्काल की कहानी क्या अभी भी एक रहस्य है? भला इतनी सारी पुस्तकें तो हर हफ्ते-महीने आती रहीं, बाढ़ के समान। 'जजमेंट' से लेकर '**टू फेसेस आफ इन्दिरा गांधी**' तक।

लेकिन इन पुस्तकों को पढ़कर मुझे गहरी निराशा हुई है और सुप्रसिद्ध नामों के बौद्धिक खोखलेपन पर दया या हंसी भी आई है। उदाहरण के लिए अभी हाल में ही प्रकाशित पुस्तक '**टू फेसेस आफ इन्दिरा गांधी**' उठा लीजिये। पृष्ठ संख्या का हवाला इसलिए नहीं दे रहा हूं कि इसके कई संस्करण हो गये हैं और पता नहीं आपके हाथ में कौन सा संस्करण हो। लेखिका के अनुसार सर्वश्री बसन्त साठे और सन्त बख्श सिंह राज्यसभा के सदस्य थे, जबकि दोनो में से किसी ने राज्यसभा का मुंह भी नहीं देखा। इसी प्रकार आपात्काल के दौरान चन्द्रशेखर और रामधन के साथ-साथ कृष्णकान्त भी जेल में थे—यह लेखिका की अपनी खोज है, कारण श्री कृष्णकान्त उस दौरान जेल गये ही नहीं। उनकी यह भी एक नई खोज है कि मृत्यु के समय श्री ललितनारायण मिश्र विदेश-व्यापार मंत्री थे, जबकि दुनिया जानती है कि मृत्यु के साल-डेढ़ साल पहले से वे रेल-मंत्री थे और उसी रूप में समस्तीपुर बम-काड में उनकी मृत्यु हुई। इसी प्रकार की बहुत सारी बेसिर-पैर की बातें इस पुस्तक में तथा अन्य पुस्तकों में भी हैं, जिसके लिए विस्तार में जाना नहीं चाहता।

हिन्दी में अब तक कोई भी प्रामाणिक या विस्तृत पुस्तक आपात्काल की स्थितियों पर नहीं लिखी गई, जिसकी विशेष तौर से आवश्यकता थी। क्रान्ति का उत्स हिन्दी-भाषा-भाषी राज्यों में ही था और सक्रिय आन्दोलन भी इन्हीं क्षेत्रों में हुआ। मुझे यह देखकर खुशी हुई कि हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में

इस प्रकार की चर्चा भी इधर आई है कि हिन्दी में इस तरह के साहित्य की बेहद कमी है, जिसकी पूर्ति होनी चाहिए। और इन्हीं प्रेरणाओं के कारण मैं लिखने को बाध्य हुआ, लेकिन देखता हूं कि लिखना बहुत कठिन हो रहा है। इसलिए कि अपने आपको तथा औरों को भी इसके लिए मुझे सूली पर चढ़ाना पड़ेगा, क्योंकि सत्य की प्राप्ति तो सूली पर ही चढ़कर होती है।

आपातकाल के एक साल पहले से ही जे० पी० आन्दोलन पूरे जोर पर था, लेकिन उस संबंध में दिल्ली का दिमाग साफ नहीं था। जो रिपोर्ट दिल्ली में आ रही थी, वह सरकारी या अधिकांश चापलूसी वाली थी और उससे दिल्ली-दरबार को यही भान होता था कि थोड़ी सख्ती से इसे दबा दिया जायेगा या काबू कर लिया जायेगा। लेकिन मैं उन लोगों में से प्रारंभ से ही था, जिसका दिमाग बड़ा साफ था और जो भविष्य की ज्वाला को वर्तमान की चिनगारियों के अन्दर छिपा हुआ देख रहा था। मेरे मन में बार-बार यह बात आती थी कि देश में ऐसा कौन व्यक्ति है, जिससे मैं इस संबंध में बातें करूं या जो सही दिशा-निर्देश दे सकता है।

बरबस मेरे ध्यान में पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र का नाम बिजली के समान कौंधा, इसलिए कि वे इन सारे छल-छद्मों से दूर जबलपुर के अपने 'उत्तरायण' में बैठकर शायद भीष्म के समान अंतिम परिणति देखने की प्रतीक्षा में थे। मैं यदा-कदा उनसे जबलपुर में जाकर मिला करता था और जो बातें होती थी, वे इतनी स्पष्ट कि मेरे ऊपर उनकी सुतीक्ष्ण बुद्धि की छाप थी और मेरे दिमाग में यह बात घर कर गई थी कि मिश्रजी किसी समस्या को जिस पैनी और दूरदर्शी दृष्टि से देखते हैं, वह केवल वर्तमान का ही सम्यक बोध नहीं होता, वरन् भूत और भविष्य की सम्मिलित रेख भी उसमें होती है।

इन्ही विचारों को सामने रखकर 25 जुलाई 1974 को पं० द्वारका प्रसाद मिश्र को मैंने एक पत्र भेजा, जिसमें उस समय की स्थिति का वर्णन करते हुए उनसे यह प्रार्थना की कि उनके समान व्यक्ति को इसमें पहल करनी चाहिए, जिससे संघर्ष और धूमिल भविष्य की आशंका टले और कोई सही राह भारत की राजनीति ले। बदले में पंडितजी की ओर से 31 जुलाई 1974 का लिखा पत्र मुझे मिला, जो मैं आज तक हवा और रोशनी से भी संजोकर रखे हुए हूं, लेकिन अब इतिहास के इस सुनहरे पन्ने को प्रकाश में लाने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूं। इसलिए कि चाणक्य की दूर दृष्टि से जो बातें मिश्रजी ने जुलाई 1974 में मुझे लिखी वे बातें दो वर्षों में ही कैसे अक्षरशः सही साबित हुई। क्या भविष्य-बोध या युग-बोध इसे ही कहते हैं ?

उत्तरायण
जबलपुर, 31-7-74

"प्रिय श्री शंकरदयाल सिंह जी,

आपका २५ ता० का कृपा-पत्र कल प्राप्त हुआ। आजकल अपनी ओर से मैं मौन रहना ही पसन्द करता हूँ। जब कभी लोग मिलते हैं और मुंह से कुछ निकल जाता है तो बात का बतंगड़ बन जाता है। परन्तु आपको मैं उन थोड़े से लोगों में मानता हूं जिन्हें देश की भी चिन्ता है। इसीलिए कुछ लिख रहा हूं।

यदि आप लुई फिशर द्वारा लिखी हुई गांधीजी की जीवनी के आखिरी हिस्से में 'द फ्यूचर आफ इंडिया' शीर्षक छोटा सा परिच्छेद पढ़ें तो आपको जयप्रकाशजी के आन्दोलन के उद्गम का आभास मिल जायेगा। यह बात अलग है कि जयप्रकाशजी गांधीजी के विचार को कार्य रूप में परिणत करने में समर्थ हैं या नहीं।

आपने संसद सदस्यों के बिहार भेजे जाने का जो सुझाव दिया है उसका अच्छा परिणाम तभी निकल सकता है जब कि भेजे गये व्यक्ति न केवल समझने की शक्ति रखते हों बल्कि अपनी बात कहने का साहस भी रखते हों।

यह सभी के द्वारा स्वीकृत बात है कि देश के लोग आर्थिक दृष्टि से व्यथित हैं और असंतोष दिन-प्रति-दिन बढ़ रहा है। जयप्रकाशजी उनकी आवाज बनकर सामने आ गये हैं। मैं नहीं मानता कि यह आन्दोलन बिहार की सीमा में बंद रहेगा। जयप्रकाशजी के विरुद्ध प्रचार करने, आन्दोलनकारियों का दमन करने या सर्वोदय कार्यकर्ताओं में फूट डालने से यह आन्दोलन नहीं रुकेगा। दमन तो अहिंसात्मक आन्दोलन को प्रज्वलित ही करता है। जयप्रकाशजी गांधी नहीं हैं और इन्दिराजी की सरकार अंग्रेजी सरकार नहीं है, फिर भी यदि स्थिति बिगड़ती ही गई तो लोग तुलना करने से नहीं हिचकेंगे।

कांग्रेस का कौन नेता है जो अपनी छाती पर हाथ रखकर यह

कह सकता है कि भूलें नहीं हुई हैं और बुराइयों को प्रश्रय नहीं मिला है। इसी प्रकार जयप्रकाशजी को भी सोचना चाहिए कि क्या वे अपने आन्दोलन द्वारा कम्युनिस्टों के हाथों में नही खेल रहे हैं। मेरा मतलब केवल मार्क्सवादियों से ही नहीं है। पिछले कई महीनों से प्रधानमंत्री सी० पी० आई० वालों से दूर हो रही थीं। अब जयप्रकाशजी उन्हें बाध्य कर रहे हैं कि वे फिर उनका सहारा लें। सभी जानते हैं कि जयप्रकाशजी कम्युनिस्टों के घोर विरोधी रहे हैं। अब उनके आन्दोलन से सबसे अधिक ये ही लाभान्वित होंगे।

आवश्यकता प्रधानमंत्री और जयप्रकाश में झगड़ा बढ़ाने की नहीं, प्रत्युत दोनों को एक साथ बिठाकर झगड़ा निपटाने की है। हमने जो भूलें की हैं उन्हें दूर करने के लिए तैयार रहना चाहिए और जयप्रकाशजी को भी यह सोचना चाहिए कि बुराइयों का विरोध करते करते कहीं अराजकता न फैल जावे जिसे फिर वे भी न संभाल सकें। दोनों ओर आत्मनिरीक्षण की आवश्यकता है। परन्तु इतिहास इस बात का साक्षी है कि नेता, चाहे वह सत्ताधारी हो और चाहे जन-बल से बली हो, आत्मनिरीक्षण की प्रवृत्ति नहीं रखता। ऐसी हालत में नेता के बदले परिस्थितियां भविष्य का निर्माण करती हैं।

हम थोड़े ही लोग अब बचे हैं जिन्होंने देश के उज्जवल भविष्य के स्वप्न आधी शताब्दी पूर्व देखे थे। हम लोग भी व्यथित हैं, परन्तु विवशता का अनुभव करते है। साथ ही यह भी सोचते हैं कि शायद हमारी चिन्ता अनावश्यक है। स्वराज्य बिना क्रान्ति हुए मिल गया था। क्या वह क्रान्ति अब होने जा रही है? यदि ऐसा है तो हम वयोवृद्ध लोग परमेश्वर से यही प्रार्थना कर सकते है कि क्रान्ति का अन्तिम परिणाम देश के लिए अच्छा हो।

विश्वास है कि आप स्वस्थ एवं प्रसन्न है।

भवदीय

ह० द्वारकाप्रसाद मिश्र"

इंटक अध्यक्ष एवं संसद सदस्य श्री बिजय भगवती को मैं उन व्यक्तियों में मानता हूँ जो मूल्यों को जीवन में प्राथमिकता देते हैं। अभी हाल में भगवतीजी ने मुझे एक 'नोट' पढ़ने के लिए दिया, जिसमें आपात्काल के पहले और बाद की बहुत सारी स्थितियों का वर्णन है। मैं नही जानता कि भगवतीजी का यह 'नोट' प्रकाश में आयेगा या नही, लेकिन उनका दर्द और उनकी व्यथा उनकी टिप्पणी के एक-एक वाक्य में समाहित है। एक जगह लिखा है—"जो कुछ भी हुआ है, उसके लिए मैं अपने आपको कभी माफ नहीं कर सकता, क्योंकि मैं उसका एक हिस्सा था। मैं अपने आपको इस बात के लिए दोषी पाता हूं कि कांग्रेस 1921 के असहयोग आन्दोलन के एक सिपाही होने के नाते, संस्था की महान परम्पराओं की रक्षा के लिए, जो कुछ हो रहा था, उसके खिलाफ मैंने क्यों नहीं आवाज उठाई? ये सारे अनैतिक कार्य इसलिए भी हो रहे थे कि करने वालों के पास नैतिक मूल्य नहीं था और जो इसे रोक सकते थे उन्होंने नैतिक साहस खो दिया था।'

मुझे अच्छी तरह याद है, जब कभी सेन्ट्रल हाल में या लोकसभा में या बाहर पं. विभूति मिश्र या श्री नीतिराज सिंह चौधरी सरीखे वयोवृद्ध कांग्रेस के कर्मठ सिपाही मुझे मिलते थे, तो छूटते ही उनके मुह से वाक्य निकलता था—'शंकरदयालजी, यह सब कुछ क्या हो रहा है? हम कहां जा रहे हैं?'

और अभी-अभी उस समय की कांग्रेस संसद सदस्या गांधीजी की पौत्री श्रीमती सुमित्रा कुलकर्णी के डायरी के कुछ अंश पत्रों में आये हैं, जिनमें एक जगह लिखा है—'लगता है सभी मुख में गांधी, बगल में छुरी लिये घूम रहे हों। आज का कांग्रेसी काफी भ्रष्ट, आलसी, असंयमी, अनुशासनहीन, स्वार्थी और लोभी-लोलुप बन गया है। किन्तु फिर भी असली कांग्रेसी की परीक्षा यह है कि वह दल और देश के साथ कभी धोखा कर ही नहीं सकता।'

गंगा और यमुना के बीच की भूमि वास्तव में क्रान्ति की भूमि रही है। आजादी के पहले और बाद में जो भी आन्दोलन आये-गये, उनमें इस भूमि का योगदान सबसे अधिक रहा और जे. पी. ने जब अपने संपूर्ण क्रान्ति का नारा दिया, तो इसी भूमि को उसका आधार बनाया। हिन्दी प्रदेश, जिन में मुख्य तौर से बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली के भू-भाग आते हैं, पिछले चुनावों में सत्ता-परिवर्तन कर क्रान्ति के अग्रणी बने। एक से अनेक दिग्गज, जिनके नाम के आब से थरथराहट पैदा होती थी भू-लुंठित हुए और इसका पूर्ण सेहरा किसी को है

तो भारत की उस जनता को, जिसने क्रान्ति क्या है, इसका सैद्धान्तिक पहलू समझा हो या नहीं, व्यवहार में दिखला दिया कि क्रान्ति इसे कहते हैं।

मैं क्यों इन बातों को इस प्रकार लिख रहा हूँ या बार-बार जो बातें कही गई होंगी, उन्हें क्यों दुहरा रहा हूँ? अकारण नहीं, सकारण।

फरवरी 1977 में कांग्रेस एवं विभिन्न दलों के उम्मीदवारों का चयन और मार्च में लोकसभा का चुनाव हुआ। टिकटों के बंटवारे के समय कांग्रेस-टिकट पाने वालों की भीड़ अन्य वर्षों की अपेक्षा अधिक थी और जो व्यक्ति प्रत्याशी बनना चाहता था, उसे यह उम्मीद थी कि 1971 के समान ही कांग्रेस प्रत्याशी पुनः विजयी होकर आ जायेंगे। विरोधी दलों के पास साधन नहीं हैं, अभी-अभी वे जेलों से निकले हैं, उनकी कमर टूटी हुई है, कांग्रेस के पास सब कुछ है तथा इन्दिराजी ने बिना सोचे-समझे चुनाव का बिगुल थोड़े फूंका होगा। जरूर उन्होंने अपने गोपनीय सूत्रों द्वारा और ज्योतिषीयों, भविष्यवक्ताओं द्वारा भी सब कुछ समझ-बूझकर यह 'रिस्क' लिया होगा, आम धारणा यही थी।

कांग्रेस के नेताओं का भी अहम और विश्वास कुछ ऐसा ही था। कांग्रेस की केन्द्रीय चुनाव समिति के सदस्य होने के नाते मुझे नजदीक से सारी बातों और परिस्थितियों को देखने-सुनने का मौका मिला और मेरा व्यक्तिगत अनुभव यह है कि कई नेता तो सातवें आसमान पर सवार थे।

हरियाणा के लिए टिकटों का बंटवारा हो रहा था और चौधरी बंसीलाल भिवानी से उम्मीदवार घोषित हुए। किसी ने बैठक में ही पूछा—चौधरी साहब, कैसा रहेगा?

—अजी, मैं तो अपने क्षेत्र में केवल एक दिन के लिए जाऊंगा। पहले भी मैं दूसरों को ही जितवाने के लिए दौड़ता रहा हूं, अपने क्षेत्र में तो कभी गया, कभी नहीं गया। इस बार भी ऐसा ही रहेगा, या तो बिल्कुल नहीं जाऊंगा या गया भी तो केवल एक बार। अपने क्षेत्र में क्या जाना?—बंसीलाल ने कुछ गर्व, कुछ गौरव, कुछ हम लोगों की ओर दया और अपने ऊपर भारी आत्माभिमान के साथ ये बातें कहीं।

मुझे यह भी अच्छी तरह याद है कि प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने स्वयं, हरियाणा का जब जिक्र आया तो, तीन नाम लिये थे—श्रीमती चन्द्रावती का, ओमप्रभा जैन का और रणबीर सिंह का कि ये तीनों मिलने आये थे, यदि इनमें से किसी की गुंजायश हो, तो देखना चाहिए। मैंने भी उनका समर्थन किया था कि ये लोग मुझसे भी मिले थे, इनमें से किसी को

टिकट देने से एक बात यह भी होगी कि दूसरे ग्रुप को भी संतोष होगा।

मेरी इस बात पर चौधरी बंसीलाल ने अपनी मिचमिचाई आंखों से मेरी ओर घूरा था और इन्दिराजी की ओर मुखातिब होकर कहा था—बहनजी, ये तीनों नाम ऐसे हैं, जिनमें किसी की जमानत नहीं बचेगी। मैंने हरियाणा की बड़े सोच समझकर लिस्ट बनाई है। जिताने की जिम्मेवारी मेरी। जिसे चाहूंगा, जितवाकर ले आऊंगा। आप मेरे ऊपर भरोसा रखें। और मेरी ओर देखते हुए उन्होंने धीरे से कहा था—बिहार की चिन्ता करो कि क्या होगा, हरियाणा की चिन्ता मेरे ऊपर छोड़ दो।

इतिहास-चक्र किसी की कुछ भी सुनता नही है। पांच गांवों की भीख मांगी थी पांडवों ने कौरवों से, लेकिन उन्होने दुत्कार दिया था। हरियाणा भी कुरुक्षेत्र था। चन्द्रावती, ओमप्रभा जैन, ब्रिगेडियर रण सिंह, भजनलाल, और ऐसे ही बहुत सारे बेचारे इधर से इधर दौड़ते चलते थे, कोई उनकी सुनने वाला नहीं था, बंसीलाल का रौब ऐसा था कि किसी की हिम्मत नहीं होती थी कि इनकी बात सुनें या न्याय के लिए एक शब्द बोले। प्रधानमंत्री ने भी सी० ई० सी० की बैठक में एक उसांस ली—ठीक है, देख लीजिये, मैं तो जानती नहीं हूं, मैंने आपके सामने वहां की बात रख दी—उन्होने सदा की भांति कहा, जो उनका तरीका था। वह बहुत कुछ इन बातों में नही पड़ती थीं कि किस को टिकट मिल रहा है, किस को नहीं। वह यह जरूर चाहती थीं कि ऐसे लोगों को टिकट मिले, जो जीतकर आयें और कुछ काम के हों।

इस तरह की कितनी बातें, कितने उदाहरण मेरे पास हैं जिन्हें चाहता हूं कि कह दूं, लेकिन सहमता हूं। भय नहीं खाता, कारण लिखने और कहने की ईमानदारी मुझ में है, लेकिन सहमता हूं इसलिए कि बहुतों का नकाब उतर जायेगा और किसी के चेहरे से नकाब हटाना कोई अच्छी बात तो होती नहीं।

जो बातें आगे के पृष्ठों में कहने जा रहा हूं, वही क्या कम है ? मैं जानता हूं कि सही और सच्ची बातों को लिखकर और कहकर कितने लोगों का मैं कोपभाजन बनने जा रहा हूं, लेकिन सच्चाई आनी चाहिए और उस सच्चाई के लिए मुझे यदि थोड़ी हानि भी उठानी पड़े तो उसके लिए मैं तैयार हूं। यदि इतना नैतिक साहस अपने में न जुटा पाता, तो फिर 'क्या सच : क्या झूठ' की कल्पना ही बेकार थी।

भारत एक ऐसा देश है जहां सैकड़ों-हजारों गुरु, औलिया, पीर, ज्ञानी, सिद्ध पुरुष, मंत्रवेत्ता अपनी सिद्धि और विद्या लिये चले गये, बिना किसी को

बताए। कही किसी को उचित शिष्य नहीं मिला और कहीं किसी ने अपनी विद्या किसी को देना उचित नहीं समझा। भला देश की कितनी बड़ी हानि हुई।

मैं भी कई दिनों तक कसमसाता रहा। कहूं न कहूं या चुपचाप मौन रहूं ? मैंने कई रातें इन उहापोहों में गवाईं और दिन भी इन दुश्चिताओं में गुजारे और अन्त में दृढ़ निश्चय किया कि वे सारी बातें कह दूंगा, जिन्हें कहना चाहिए, लेकिन पाता हूं कि लिखना कठिन हो रहा है।

बिहार में या उसके पहले गुजरात में जब आन्दोलन की शुरूआत हुई तो अन्य मित्रों के समान मैं भुलावे में नहीं था। एक दर्जन से अधिक बार मैं जे० पी० से और इन्दिराजी से मिला होऊंगा यह कहने के लिए कि आप दोनों एक-दूसरे के इतने निकट रहे, दोनो के बीच ऐसा पारिवारिक सम्बध रहा, फिर क्यों नही मिलकर बातें करते और इन मुद्दों को सुलझा देते हैं। जे० पी० बराबर उत्सुक थे। मैंने और कृष्णकांतजी ने बयान भी दिया कि बातें होनी चाहिए, उधर चन्द्रशेखरजी ने भरपूर कोशिश की, गगा बाबू ने भी अपने अनुसार पहल की—लेकिन इन्दिराजी उन दिनों सत्ता के मद में थीं और ऐसे सलाहकारों के चंगुल में, जो उन्हे ठीक सलाह नही दे पा रहे थे। उनके संतुलित कदम लड़खड़ा रहे थे, एक पर एक भूलें उनसे हो रही थीं, जो उन्हें उचित सलाह देने की क्षमता रखते थे—उन्हें वे शक की नजरों से देखती थीं। कांग्रेस के अंदर का माहौल चाटुकारिता और खुशामद से सनता चला जा रहा था।

श्री पी० एन० हक्सर हटाये जा चुके थे, गृह मंत्रालय में भारी हेर-फेर हो गया था—श्री उमाशंकर दीक्षित पदच्युत हुए, श्री कृष्णचन्द्र पन्त को गृह से हटाकर ऊर्जा और श्री रामनिवास मिर्धा को 'रिहेबलिटेशन' सौंप दिया गया, श्री इन्द्रकुमार गुजराल निकाल बाहर किए गये—श्री विद्याचरण शुक्ल की पौ बारह हुई।

खैर, दिल्ली मे क्या हो रहा था, क्या नही—यह अपनी जगह पर है, लेकिन मूलभूत बात यह है कि इन्दिराजी जो भी कर रही थीं, आखिर किन प्रेरणाओं से वशीभूत होकर या किन लोगों के इशारे पर, यह बड़ी बात है। बिहार में और मुख्य रूप से बिहार की राजधानी पटना में अभूतपूर्व बाढ़ आई। हर कोई सिहर गया, क्या आम जन और क्या सरकार। बिहार पर 1934 में एक ऐसी ही भयानक विपत्ति आई थी, जब बिहार अकाल की काल में फंस गया था। उन दिनों राजेन्द्र बाबू हजारीबाग सेन्ट्रल जेल में थे, ब्रिटिश

सरकार ने उन्हें राहत कार्य के लिए छोड़ दिया। इस बार जयप्रकाशजी चंडीगढ़ जेल में थे, उन्होंने भी सोचा कि सरकार से कहें कि वह उन्हें पैरोल पर छोड़ दे, तो वे भी राहत कार्य करें। जे० पी० की संस्था बिहार रिलीफ कमेटी ने 1967 के सूखा के समय ऐतिहासिक कार्य किये थे।

जे० पी० ने चंडीगढ़ से प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी को अपना संवाद भेजा जो इस प्रकार था—

"पटना और बिहार की बाढ़ रिपोर्टों से बहुत दुःखी हुआ। इतिहास साक्षी है कि इस प्रकार का कष्ट पटना में पहले नहीं देखा। यहां बेकार बैठे मैं बुरी तरह से दयनीय स्थिति में असहाय हूं। आपसे प्रार्थना करता हूं कि पैरोल पर एक महीने की रिहाई कर दें, ताकि मैं बिहार राज्य की और बाहरी राज्यों की जनता को सहायता के लिए प्रेरित कर सकूं और राज्य तथा केन्द्रीय सरकारों के सहयोग से लोकप्रिय सहायता की व्यवस्था कर सकूं। यदि बाढ़ का प्रभाव कम भी हो जाये, फिर भी अभी बड़े काम करने बाकी हैं। 1934 के महाभूकम्प के समय ब्रिटिश सरकार ने इसी प्रकार राजेन्द्र बाबू को रिहा किया था। शीघ्र ध्यान देने और कारंवाई के लिए प्रार्थना करता हूं। —जयप्रकाश"

इस पत्र के दो-चार दिनों बाद श्री गंगाशरण सिंह जी इन्दिराजी से दिल्ली में मिले और उन्होंने जे० पी० के मित्र-सखा-साथी के नाते प्रधानमंत्री से यह कहा कि ऐसी स्थिति में सरकार को चाहिए कि उन्हें पैरोल पर छोड़ दे। इन्दिराजी ने जयप्रकाशजी के पत्र की भाषा को "सरेन्डर" समझा और उनके मन में यह बात आई कि यह किसी टूट हुए आदमी का पत्र है, अतः उन्होंने गंगा बाबू से जो बातें की, उसमे साफ यह भाव झलका कि जे० पी० तो सरेन्डर कर गये हैं।

गंगा बाबू ने इन्दिराजी को साफ शब्दों में कहा कि जिस पत्र के कारण वह सरेन्डर समझ रही हैं, यह उनकी सबसे बड़ी भूल है। जे० पी० इस तत्व के नहीं बने हैं कि किसी के सामने सरेन्डर कर जाये।

जे० पी० ने खुद अपनी जेल डायरी में 27 अगस्त 1975 को लिखा है—

"मैं सोचता रहा हूं कि प्रतिज्ञा-पत्र में एक महीने या एक पखवाड़े के लिए पेरोल ले लूं, ताकि लोक सहायता की व्यवस्था करवा सकूं।...श्रीमती इन्दिरा गांधी इतनी मानवीय नहीं हैं या कमजोर हैं, किन्तु काश, कि तुम कर पातीं, जिस प्रकार ब्रिटिश पूंजीवाद ने किया था।"

बहुत बार मैंने लिखना और कहना चाहा है—जयप्रकाशजी और इन्दिराजी के सम्बंध में, लेकिन कह या लिख नहीं पाया हूं। इस सम्बंध में बहुत सी बातें मेरे पास लिखने-कहने को है, लेकिन मैंने जब कभी प्रयास किया, मेरा गला भर आया है। इन्दिराजी की मां श्रीमती कमला नेहरू और जयप्रकाशजी की पत्नी श्रीमती प्रभावतीजी इतने गाढ़े मित्र थे, जिसका अनुमान केवल वे ही लगा सकते है, जिन्होंने उस काल को या उन दिनों को देखा होगा। हमारे पास तो कुछ प्रमाण है, जिन्हें जब देखता हूं तो ऐसा लगता है कि मूल्यों और मान्यताओं के आधार पर बने सम्बंधों में इस प्रकार मरोड़ कैसे आ गई?

श्रीमती कमला नेहरू ने भुवाली से 15 अप्रैल 1935 को एक पत्र में श्रीमती प्रभावती को लिखा—

"प्रिय प्रभा, प्यार!

मैं तो मामूली वृत्ति की मनुष्य हूं। मेरे में क्या शक्ति है कि देश को आजाद करूं। मेरी तो पहले इच्छा थी कि देश को आजाद करवाऊं। लेकिन अब तो मेरी बस यही इच्छा है कि मैं अपने ईश्वर की तलाश करूं और उसको ढूंढ़ निकालूं। मुझे दुनिया की कोई चीज नहीं चाहिए। मैं तो योरोप भी इलाज के लिए नहीं जाती, लेकिन वह भी मैं ईश्वर के लिए ही जाती हूँ। तुम हंसोगी कि वहां क्या ईश्वर जाते मिल जायेगा। ऐसा नहीं। जल्दी अच्छी हो जाऊं, तो उतनी ही उसे पा सकूंगी। कभी तो ऐसी इच्छा होती है कि सब छोड़कर कहीं ऐसे जगह जाऊं, जहाँ एकान्त हो और कोई न हो। मालूम नहीं, ईश्वर की कृपा कब होगी। कौन हमारा, हम किसके? यह सब धोखे की टट्टियां है। सब चलाचली का खेल है। अगर मुझमें बापू जैसी शक्ति हो जाती कि संसार में रहकर और उससे अलग रह सकूं, तो अच्छी बात थी। लेकिन वैसी शक्ति तो बड़ी तपस्या से होती है।

—कमला"

यह वह समय था जब जवाहरलालजी जेल में थे और कमलाजी टी० बी० रोग से ग्रसित मृत्यु की ओर कदम बढ़ा रही थीं। एक दूसरे पत्र में कमलाजी ने प्रभावतीजी को लिखा है—

"प्यारी प्रभा, प्यार !

जवाहर, मैं कलकत्ते जा रहे हैं। 5-6 दिन को आपरेशन का ठीक करने। तुम उस वक्त मेरे पास आ सकोगी कि नहीं, लिखना।

कृपा करके जल्दी अच्छी हो जाओ और मेरे पास आकर रहो। फिर हम दोनों बहुत खुश रहेंगे।

—कमला"

इसी प्रकार कमलाजी ने न जाने कितने ऐसे पत्र प्रभावतीजी को भेजे हैं, जिसमें 'इन्दु' का जिक्र है। और जवाहरलाल की बेटी इन्दिरा, जयप्रकाश बाबू के लिए भी बेटी के समान रही, उन्होंने कभी उन्हें इन्दिरा नहीं कहा, बराबर 'इन्दु' कहकर बुलाया, संबोधन किया और स्वयं एक दिन जयप्रकाश बाबू ने मुझ से ये बातें कहीं—मैं तो बराबर उसे इन्दु कहकर ही बुलाता रहा, लेकिन अब प्रधानमंत्री या इन्दिराजी लिखता हूं—स्वाभाविक रूप से जे० पी० का हृदय नाम या पद कहते हुए कांपता रहा होगा।

जे० पी० भावुक हैं, पिघलना उनका काम है, राजनीतिक कटुता या कूटनीतिज्ञता उनमें नहीं हो सकती। इसीलिए भावनाओं के सहारे उन्हें जीता जा सकता है, सत्ता और राजनीतिक बुद्धिमत्ता के द्वारा [illegible] को दबाना या झुकाना बड़ा मुश्किल होता है, प्रारम्भ [illegible] द्वारा जो भी प्रयास इस सम्बंध में हुआ, उसने स्थितियों को और [illegible], सुलझाया नहीं। मेरा अपना निश्चित मत है कि [illegible] के प्रश्न के लिए [illegible] इन्दिराजी और जयप्रकाशजी में [illegible] हो जाती, [illegible] इन्दिराजी यह भूल जातीं कि वे [illegible] हैं, तो [illegible] का समाधान हो गया होता, लेकिन हुआ यह कि [illegible] उनका राजनेता सवार [illegible] में घी का काम किया।

छलनी कर दिया। इसी प्रकार 20 नवम्बर 1974 को चन्द्रशेखरजी ने अपने साउथ एवेन्यू के निवास स्थान पर जे० पी० को चाय पर आमन्त्रित किया और साथ ही कांग्रेस के करीब 100 संसद सदस्यों को आमंत्रित किया, जिनमें से 60 के करीब शामिल भी हुए। उनके एक दिन बाद 21 नवम्बर को तूफान उठ खड़ा हुआ। सेन्ट्रल हाल में, पार्लियामेन्ट के अन्दर और बाहर एक विचित्र प्रकार का तनाव।

मुझे अच्छी तरह याद है कि 21 को दिन में तत्कालीन गृहमंत्री श्री उमाशंकर दीक्षित के संसद भवन स्थित कमरे में 20 की शाम को भाग लेने वाले कई सदस्यों को बुलाया गया और वहां दीक्षितजी एवं श्री यशपाल कपूर ने उन्हें कई तरह की खरी-खोटी बातें सुनाईं। मैं जिस समय वहां था, उस समय श्री जगदीश जोशी एम० पी० और श्री मनुभाई शाह एम० पी० भी उपस्थित थे और दोनों इस बात की सफाई दे रहे थे कि हम लोगों को तो मालूम भी नहीं था कि जे० पी० भी वहां जाने वाले हैं, नहीं तो कभी नहीं जाते।

—मुझे पता था कि जे० पी० आ रहे हैं, मुझे कल शाम को प्रधानमंत्री के संसदीय कक्ष के बाहर चन्द्रशेखरजी ने निमंत्रित करते हुए ये बातें कहीं थीं—मैंने वहां कहा।

—यह देश ही ऐसा है, जहां किसी को भी लोग सिर पर चढ़ा देते हैं। जे० पी० को लोगों ने सन्त बना दिया है, दर्शन करने पहुंच जाते हैं, तो उनका दिमाग खराब हो जाता है। कोई न जाये, देखिये महीने-दो महीने में दिमाग ठीक हो जाये। हम ही कांग्रेसवालों ने उन्हें मसीहा बना दिया है—श्री यशपाल कपूर ने जो उन दिनों भाग्यविधाताओं में एक प्रमुख माने जाते थे, ये बातें कहीं।

जे० पी० मानों कोई अछूत हों, जे० पी० मानों कोई भयंकर छूत के रोग हों, जे० पी० मानों फासिस्ट हों, जे० पी० मानों देशद्रोही हों, जे० पी० मानों इन्दिरा गांधी के और सत्ता के एक नम्बर दुश्मन हों—यह बातें समझी और समझाई जाती थीं, उन दिनों। नतीजा यह हो रहा था कि इन्दिरा गांधी और जयप्रकाश नारायण एक दूसरे से दूर से भी दूर होते चले जा रहे थे और कोई ऐसा व्यक्ति आगे बढ़कर नहीं आ पा रहा था, जो इस मसले को सुलझाता या वस्तुस्थिति क्या है, उनकी तह में जाता।

जो थोड़े बहुत लोग, बीचवानी का काम कर सकते थे और हृदय से चाहते थे कि यह 'कन्फ्रन्टेशन' न हो, उन्हें भी गलत समझा जा रहा था और उनके खिलाफ एक सशक्त गिरोह बनता चला जा रहा था। ऐसे लोगों को 'फासिस्ट'

कहा जा रहा था और हर जगह सरकारी पैसे, सरकारी मदद और प्रभाव को लेकर 'ऐन्टी-फासिस्ट' सम्मेलनों का आयोजन हो रहा था। जे० पी० को जो जितने ऊंचे स्वरों में गाली दे सकता था या उनकी आलोचना कर सकता था, वह व्यक्ति उतना बड़ा प्रगतिशील माना जाता था। और यह दौर वास्तविकताओं से दूर, किसी ऐसे नाविक के समान था, जिसका दिशा-ज्ञान लुप्त हो गया हो—कहां जाये, कहां न जाये। बेड़े का पतवार इन्दिराजी के हाथ में था, लेकिन वे चाहती थीं या चाहकर भी कुछ न कर पा रही थीं, राम जानें। इतना तय है कि ईमानदारी से, सच्चाई से, सन्तुलित रूप से और जे० पी० आन्दोलन के भविष्य परिणामों की ओर गहराई से किसी ने अथवा सत्ता पक्ष के किसी सारथी ने ठीक से नहीं सोचा। यदि किसी ने सोचा भी तो प्रधानमंत्री के सामने किसी ने इसे बताया नहीं और यदि किसी ने बताया भी होगा तो उन्हें गुमराह ही अधिक किया, रास्ता सही मंजिल की ओर ले जाये, इसकी चेष्टा किसी ने न की।

पूरे माहौल मे दो व्यक्ति ऐसे थे—जो बिचवानी कर सकते थे और सन्तुलन कायम कर सकते थे—एक आचार्य विनोबा और दूसरे श्री जगजीवनराम। लेकिन दोनों में से पहले ने सत्ता का पक्ष इस प्रकार ले लिया कि उन्हे सारी दुनिया 'सरकारी सन्त' कहने लगी। मेरा अपना ख्याल भी कुछ ऐसा ही है कि सन्त विनोबा भावे, सन्त परम्परा के एक ऐसे व्यक्तियों में हैं, जो सत्ता से अलग नहीं रह सकते या जिन्हे चाहिए किसी न किसी का संरक्षण। वे यह भी चाहते रहे हैं कि उनके पास या उनसे मिलने या उनका हाल-चाल पूछने या उनसे सलाह लेने या उनकी बीमारी में तिमारदारी करने प्रधानमंत्री, केन्द्रीय मंत्री, राज्यों के मंत्री, राज्यपाल, दूसरे वी० आई० पी० आते रहें। यह मैं आज के अनुभव के आधार पर नहीं कह रहा हूं, वरन् मेरा यह मत वर्षों का है।

पहले तो विनोबा मौन रहे, लेकिन उस मौन काल में भी ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जिससे सत्ता पक्ष को बल मिले और बाद में जब उनका मौन समाप्त हुआ और उन्होंने अपना मौन तोड़ा तो संभावना यह थी कि विनोबाजी पहला वाक्य यही कहेंगे कि देश से इमर्जेन्सी हटे और राजनीतिक बंदी छोड़े जायें। लेकिन विनोबा अध्यात्मवाद में भटक गये। सर्वोदय के जिन कार्यकर्ताओं ने, विनोबा को सन्त ही नहीं, भगवान, मार्गदर्शक और मसीहा माना था, जयप्रकाश समेत कइयों ने अपना जीवन-अर्पण किया था, उन्ही में से अनेकों का जीवन समय की सूली पर झूल रहा था, लेकिन विनोबा ने उसे

सहलाया भी नहीं। यह था सन्त का ऐसा तत्वज्ञान; जिसने उस समय अधिकांश बुद्धिजीवियों को सत्यज्ञान दिया।

उस काल में विनोबा गो-वध बंद करने के लिए आमरण अनशन की धमकी दे सकते थे, लेकिन देश, काल, परिस्थिति और वस्तुस्थिति के संबंध में मौन होकर आचार्य सम्मेलन का आयोजन करवा रहे थे। उससे जब आगे बातें बढ़ीं, तो बाबा ने साफ कह दिया—मैं तो कर्ममुक्त हूं, एक ऐसा सन्यासी, जो भौतिक तत्वों की बात ही नहीं सोचता।

देश ने उन दिनों विनोबा के बारे में कम नहीं सोचा और सच यह है कि विनोबा ने शायद वही सोचा जो सोचने के लिए सुश्री निर्मला देशपांडे और श्री नरेन्द्र दूबे ने उन्हें बाध्य किया। विनोबाजी जो गांधी कुल के प्रथम सत्याग्रही थे, देश के इस संकुल-काल में भ्रान्तिबोध के भी प्रथम मसीहा बने। अन्तर यही था कि ईसा सत्य के लिए स्वयं सूली पर चढ़े थे और विनोबा ने उस सत्य का सहारा लेकर बहुतों को सूली पर चढ़ा दिया। विनोबा जो हजारों-लाखों को तत्वज्ञान और आत्मबोध दे सकते थे—स्वयं शायद ऐसी भ्रान्ति में भटक रहे थे, जिससे वे निकल नहीं पाये और शायद उस दिन भी उन्हें ज्ञान नहीं हुआ, जिस दिन 'मैत्री' की जिल्दें, जप्त की गईं, सेंसर ने उसे भी नहीं छोड़ा और गो-वध के लिए आमरण अनशन की धमकी कई दिनों तक अखबारों में आई भी नहीं और प्रचार के साधन जब बंद हो गये, तो संभवतः इसी कारण विनोबाजी ने अपने अनशन का विचार भी त्याग दिया।

जयप्रकाशजी ने उस दौरान मुझ से एक बार बड़े ही दुःख के साथ कहा था—बाबा को निर्मला देशपांडे और नरेन्द्र दूबे गलत राह पर ले जा रहे हैं।

अतः विनोबा की जो भूमिका हो सकती थी, उससे वे कर्तव्यच्युत रहे और न तो उनके ऊपर दोनों दलों अथवा व्यक्तियों का विश्वास रह गया था। संत एकपक्षीय हो गये थे, अतः सर्वोदय की ओर से भी यह आवाज कभी नहीं उठी कि विनोबा के हाथ में पूरे मामले का भार सौंपा जाये।

दूसरे व्यक्ति थे जगजीवनरामजी, जिनका बिहार से और जयप्रकाशजी से गहरा संबंध था और जानकारी भी थी। जिन दिनों जे० पी० के आन्दोलन की शुरुआत हुई थी, उन दिनों एक-दो बार जगजीवन बाबू उनसे मिले भी थे, लेकिन मैं विश्वस्त सूत्रों से इन बातों को जानता हूं कि उन्होंने जे० पी० से जो बातें की थीं, उसमें आन्दोलन को दाह देने की भूमिका ही अधिक थी, बंद करने की कम।

कई बार उस दौरान मुझे जगजीवन बाबू से मिलने का मौका मिला, उन

दिनों जब जे० पी० आन्दोलन चरम सीमा पर था, बराबर वे कहा करते थे—1942 का जयप्रकाश फिर एक बार अपनी जान को हथेली पर लेकर संकल्प के साथ समर में कूद पड़ा है। इस आग को बुझाना खेल नहीं है।

जगजीवन बाबू इन्दिरा-मंत्रीमंडल के एक वरिष्ठ सदस्य थे, लेकिन उनसे बातें कर कोई भी यह निष्कर्ष निकाल सकता था कि इन्दिरा गांधी की नीतियों से वे संतुष्ट नहीं हैं और जे० पी० आन्दोलन के प्रति उनकी पूरी सहानुभूति है, दो बातों से। एक तो यह कि वे चाहते हैं कि यह आग बुझे नही, जिससे इन्दिरा गांधी संकट मे पड़ी रहे और उनकी पूछ होती रहे। दूसरी बात यह भी थी कि बिहार सरकार को बर्खास्त करने, कराने या समाप्त करने के लिए वे मन ही मन उतावले थे। इसका भरपूर कारण भी था, नेतृत्व मे वरिष्ठता होते हुए भी जगजीवन बाबू की कोई पूछ नहीं थी और न तो कांग्रेस के कार्यों में या सरकार के उच्च निर्णयों में ही उनसे बहुत कुछ सलाह ली जाती थी। बराबर मिलने पर वे कहा करते थे—हम से तो कुछ पूछा नही गया या मुझ से तो कुछ कहा नही गया।

जगजीवन बाबू को किसी ने यह भी नहीं कहा कि आप जयप्रकाश बाबू से बातें करें। वस्तुस्थिति यह है कि न तो कांग्रेस अध्यक्ष श्री देवकान्त बरुआ ने उन्हे विश्वास में लिया और न प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने। कांग्रेस की केन्द्रीय अभियान समिति के अध्यक्ष के नाते जब-तब वे किसी बैठक की अध्यक्षता कर दिया करते थे और उसके मंत्री श्री यशपाल कपूर के कहने पर हस्ताक्षर आदि कर दिया करते थे। उनकी बस मात्र भूमिका यही थी।

लेकिन अब ऐसा लगता है कि जगजीवन बाबू का एक आशय यह भी रहा होगा कि इन्दिरा-विरोधी या कांग्रेस-विरोधी आन्दोलन चले, जिससे इन्दिरा और कांग्रेस कमजोर हो और उनके कांग्रेस छोड़ने की भूमिका बध सके। जितनी बैठके होती थी या प्रस्ताव आदि आते थे, उनमे जगजीवन बाबू का भाषण जरूर कराया जाता था और वे भी उसी लहजे में बोलते थे, जिस लहजे में और लोग। इन्दिरा गांधी का हाई कोर्ट का जिस दिन फैसला आया, उस दिन अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के कार्यालय में जो बैठक हुई, उसमें पहला भाषण उनका ही हुआ और फिर 18 को कांग्रेस संसदीय दल में उन्हीं के द्वारा प्रस्ताव रखा गया। इसके बावजूद जगजीवन बाबू के मन मे क्या बातें हैं, इसका पता पाना मुश्किल था।

उस माहौल को हम जो चाहें, वह नाम दें, लेकिन इतनी बात हर कोई मानकर चले कि कोई भी साफ नही था, निर्भय नहीं था और असलियत को

छिपाकर चल रहा था। मैं किन की बातें लिखूं और किन की बातें छोड़ दूं। पूरे कुंए में भांग थी, फिर नशा किसे न आता। क्या सन्त और क्या राजनेता। यहां तक कि 'मैडम' को जो 'इंटेलिजेन्स' की रिपोर्ट प्राप्त होती थी — वह भी सही नहीं थी और उसमें वे ही बातें लिखी-कही जाती थीं, जो दरबार को अनुकूल पड़ें। मैं स्वयं को भी इसी माहौल का एक अंग मानता हूं, अब। कारण हर किसी को 'तिहाड़' का भय सता रहा था और साथ ही यह भी कि कहीं हमारी टिकट न कट जाये।

मुझे यहां एक कहानी याद आती है, जो कहीं सुनी थी या पढ़ी थी। ईसा एक गांव से गुजर रहे थे। उन्होंने देखा कि कुछ लोग राह के किनारे एक दीवार पर बहुत संतापग्रस्त होकर मुंह लटकाए बैठे हैं। ईसा ने पूछा— तुम लोग इस प्रकार क्यों बैठे हो? उनमें से एक ने उत्तर दिया— हम नरक के भय से ऐसे हो रहे हैं। ईसा आगे बढ़े तो उन्होंने पाया कि कुछ लोग आसनों और मुद्राओं में बैठे हैं और वे सब के सब उदास हैं। ईसा के यह पूछने पर कि तुम्हारी तकलीफ क्या है? —वे सब बोल पड़े— स्वर्ग की आकांक्षा में हम सब इस प्रकार ध्यान लगाये हैं। ईसा और आगे बढ़े, फिर कुछ लोग उन्हें मिले, वे आनन्द मग्न थे। ईसा ने उनसे पूछा—क्या बात है?—उनमें से एक बोला कि हमें हमारी मंजिल मिल गई है, इसीलिए हम खुश हैं और हमें कुछ नहीं चाहिए।

इमर्जेन्सी के कुछ पहले और बाद का सारा समय ऐसा ही था। हम अपनी आंखों से सब कुछ देखकर भी न देख रहे थे और सब कुछ सुनकर भी आंखों के समान ही कान भी बन्द किए हुए थे। लेकिन उस समय की बहुत सारी बातें हैं अक्षय-कोष के समान जिन्हें मैं चाहता हूं कि एक-एक करके विचार करूं।

प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने 18 जनवरी 1977 को लोकसभा विघटन की सिफारिश राष्ट्रपति से की और राष्ट्र के नाम जो प्रसारण किया उसमें कहा — 'परिवर्तन जीवन का नियम है। दुनिया तेजी से बदल रही है। आज का समाज खतरों से भरा है और विकासशील देश उनका शिकार हैं। अतः परिवर्तन शान्तिपूर्ण ढंग से होना चाहिए। हमारी आजादी की लड़ाई की और महात्मा गांधी और पं. जवाहरलाल नेहरू की भी यही विरासत है।'

यह परिवर्तन कैसे हुआ, इसे हम देखना चाहेंगे। यह तो मानी हुई बात है कि यह परिवर्तन जितने शान्तिमय ढंग से हुआ, शायद ही कहीं इतनी शान्ति रहती है। 18 जनवरी को चुनावों की घोषणा के बाद का माहौल देखें,

तो पता चलेगा कि हर जगह पूर्ण शान्ति। दिल्ली में भी, अमेठी में भी और रायबरेली में भी। लेकिन अन्दर-अन्दर जो ज्वाला सुलग रही थी, उसकी ओर शायद सत्ता पक्ष के किसी व्यक्ति ने देखा नहीं या देखकर भी समझा नहीं। लेकिन वास्तविकता यह है कि 18 जनवरी से 1 फरवरी तक पुस्तक का प्रथम अध्याय है। दूसरा महत्वपूर्ण अध्याय शुरू होता है वास्तव में 2 फरवरी 1977 से, जब श्री जगजीवनरामजी ने कांग्रेस से और केन्द्रीय मन्त्रिमंडल से त्यागपत्र दिया, जब श्री हेमवतीनन्दन बहुगुणा उनकी एक ओर बैठे और श्रीमती नन्दिनी सत्पथी उनकी दूसरी ओर, जब नेहरू-परिवार की वरिष्ठ सदस्या श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित ने 'इन्दिरा हराओ' अभियान में आहुति दी और विभाजित कांग्रेस का एक बहुत बड़ा वर्ग फिर से विभाजित हो गया।

लोकसभा चुनावों के बाद दिल्ली में कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक हार के कारणों को जानने के लिए हुई तो उसमें पंजाब के मुख्यमंत्री ज्ञानी जैल सिंह ने एक अच्छी बात कही थी—इस हार का एक कारण यह भी है कि नेहरू-परिवार में दरार पड़ गई। जनता को अभी भी नेहरू परिवार से हमदर्दी है, वह उस परिवार को छोड़ नहीं सकती है, उसका कहना था कि बेटी को, इन्दिरा गांधी को तो बहुत दिनों तक देख लिया, उनकी बात भी मान ली, इस बार बहन की, विजयालक्ष्मी पंडित की बात मान कर देखें।

जगजीवन बाबू के बाद विजयालक्ष्मी पंडित का विरोधियों से हाथ मिलाना एक बड़ी बात थी। अपशकुन होता है तो कई तरफ से होने लगता है। इसी समय श्री फखरुद्दीन अली अहमद की मौत ने परिस्थितियों को और भी जटिल बना दिया। अनेक प्रकार की भ्रान्तियां और प्रचार शुरू हुए राष्ट्रपति की मौत को लेकर। नतीजा यह हुआ कि मुसलमानों का जो 'रिजर्व' के समान वोट कांग्रेस को मिलता था, उसमें दरार ही नहीं आई, वरन् वे सब के सब खिलाफ हो गए। इमर्जेन्सी के दौरान नसबन्दी के कारण उन्हे अनेक शिकायतें भी थी। इस प्रकार हम देखें तो पायेंगे कि जगजीवन बाबू के जाने से हरिजन वोट, फखरुद्दीन साहब के मरने से मुस्लिम वोट, विजयालक्ष्मी पंडित के सक्रिय होने से बीच का वोट कांग्रेस के खिलाफ पड़ा और कांग्रेस बुरी तरह हारी।

लेकिन हम अपने प्रतिपाद्य विषय से हट गये हैं, पुनः हम अपनी लीक पर आते हैं। इमर्जेन्सी के दौरान, चुनाव घोषणा के बाद और जगजीवन बाबू के कांग्रेस से हटने के बाद एक विचित्र परिस्थिति सामने आई, जिसने देश का मानचित्र बदल दिया। जगजीवन बाबू का त्यागपत्र 2 फरवरी 1977 को जब प्रधानमन्त्री और कांग्रेस अध्यक्ष के हाथों में दिया गया तो मैं भी सामने ही

था। कांग्रेस की केन्द्रीय चुनाव समिति की बैठक टिकटों के बंटवारे के लिए 1 अकबर रोड में हो रही थी और जगजीवन बाबू जब 10.20 तक नहीं आये तब कार्यवाई शुरू की गई और उसके बाद 10.35 पर बाबूजी तो न आये, आये उधर से दो लिफाफे, जिसे प्रधानमंत्री के अतिरिक्त सचिव श्री धवन ने, जिनका इन दिनों काफी नाम है, एक प्रधानमंत्री के हाथ में दिया और दूसरा कांग्रेस अध्यक्ष के हाथ में। और जब प्रधानमंत्री और कांग्रेस अध्यक्ष ने उन लिफाफों को खोला, जो मुहरबंद थे—एक के अन्दर दूसरा तो मैंने उनकी मुखाकृतियों का अध्ययन किया था। प्रधानमंत्री निश्चित रूप से चिन्तित हो गई थी और दूसरी ओर कांग्रेस अध्यक्ष श्री बरुआ प्रत्यक्ष रूप से जरूर चिन्तित थे, लेकिन परोक्ष रूप में उनकी आंखें यह कहती नजर आती थी कि अब कहां गये संजय गांधी।

और उस दिन से राजनीति का माहौल दूसरा ही हो गया था। यह माना जाता था कि प्रधानमंत्री को समय का अचूक ज्ञान है, कहां क्या कहना चाहिए, कौन-सा कदम कब उठाना चाहिए तथा राजनीति का कौन सा दांव-पेच कहां चलाना चाहिए इसमें वे माहिर हैं। लेकिन जगजीवन बाबू ने अपने त्यागपत्र का समय ऐसा चुना था, जो सभी समयों को मात करता था। प्रधानमंत्री न आगे बढ़ सकती थी, न पीछे लौट सकती थीं। चुनाव के कार्यक्रम निर्धारित हो चुके थे, राष्ट्रपति का हस्ताक्षर हो गया था, टिकटों के बटवारे के लिए हम लोग बैठे थे, कदम आगे बढ़ चुका था और ऐसे समय में जगजीवन बाबू का कांग्रेस से त्यागपत्र वैसा ही था जैसे द्वितीय विश्व युद्ध के समय हिरोशिमा और नागासाकी पर बम-वर्षा।

2 फरवरी को श्री जगजीवन राम जब स्व० राष्ट्रपति फखरूद्दीन अली अहमद के पास त्यागपत्र देने गये, तो कहा जाता है कि राष्ट्रपति की आंखों में आंसू आ गये और उन्होंने अपनी बांहों में इन्हें भर लिया—'यह आप क्या कर रहे हैं ?'

'वही जो मुझे करना चाहिए'! दूसरी ओर से भी रुंधे गले से आवाज आई—मैं तो आपको दावत देने आया हूं। कब तक इस कैदखाने में आप पड़े रहेंगे ? और कांग्रेस विभाजन की लड़ाई भी हम दोनों ने साथ-साथ लड़ी थी। कहा जाता है कि जगजीवन बाबू ने राष्ट्रपति से कहा था।

और राष्ट्रपति ने कांपते हाथों से जगजीवनबाबू के त्यागपत्र को पकड़ते हुए उनसे अर्ज किया था—मैं तो दरखास्त करूंगा, एक बार ठीक से सोच लीजिये और मुझे कुछ देर का मौका दीजिए!

जगजीवन बाबू ने सधी जबान में कहा था—मैंने अपना बिस्तर बांध लिया है, तिहाड़ जाने के लिए। तब मैं आपके पास आया हूं।

और जगजीवन बाबू के जाते ही फखरुद्दीन साहब ने हाटलाइन से इन्दिराजी से बातें की थी—गजब हो गया। बहुत बुरी खबर है। आप फौरन यहा आ जायें।

मेरी तबियत बिल्कुल ठीक नही है और सी० ई० सी० की बैठक चल रही है, सारे लोग यहां बैठे हुए हैं। —इन्दिराजी ने कहा था।

जी हां, आप फौरन यहा आ जायें। —मरहूम राष्ट्रपति ने अपना वाक्य दुहराया।

इन्दिराजी एक कमरे से निकलकर फिर हम लोगों के पास आईं और उन्होंने कहा प्रेसिडेण्ट मुझे फौरन बुला रहे है। मैं जाती हूं। आप लोग तब तक बैठे रहें, जब तक मैं नहीं आ जाऊं। —गंभीर सांस लेते हुए उन्होंने कहा था।

लगभग आधे घंटे बाद इन्दिराजी राष्ट्रपति भवन से वापस आईं। हम सब चिन्तित उनकी राह देख रहे थे। कांग्रेस-विभाजन के बाद ऐसी भयानक घड़ी कांग्रेस के लिए दूसरी नही आई थी। मुझे अच्छी तरह याद है कि इन्दिराजी को उस दिन बुखार-सा था और चेहरे पर फुंसी के समान लाल-लाल दाने निकल आये थे। वह कमजोर मालूम देती थी और ऐसी अवस्था में ही वह शाल लपेटकर राष्ट्रपति भवन गईं और आईं और आते ही उन्होंने बताया कि 'बाबूजी ने फखरुद्दीन साहब से बहुत कुछ बातें कही है—जिसमें यह कहा कि इमर्जेन्सी उठानी चाहिए और यह भी कहा कि संजय से कभी उनका लड़का सुरेश मिलने आया था, वह नही मिल सका और अपमानित होकर घर लौटा तो उसने बाबूजी को ये बातें कही।

इन्दिराजी ने हम लोगों को पहली बार यह भी बताया कि कल शाम को बाबूजी मुझ से मिलने आये थे और मुश्किल से 5 मिनट मेरे पास रहे। आते ही उन्होंने मुझ से कहा कि आप इमर्जेन्सी क्यों नही उठा देती हैं। मैंने उन्हे बताया कि आप पहली बार यह कह रहे हैं, मैं इसे एक्जामिन करवाती हूं और मैने आज ही ओमजी को कहा कि बाबूजी यह कहते थे, आप जांच करायें कि कैसे क्या किया जाये?

हम सब उस घड़ी चिन्तित थे, लेकिन प्रधानमंत्री सब से अधिक चिन्तित थी। लगता था जैसे भविष्य उन्हें उसी समय से दिखाई देने लगा था। अन्दर से हिलती हुईं भी, वे बाहर से भान होने देना नही चाहती थी और सहज रूप

में कहने लगी, तो आज की बैठक यहीं समाप्त करें, देखा जाये आगे क्या होता है।

मैं वहां से भागा तो सीधा . . . के पास गया। सारी बातें उन्हें विस्तार से बताईं। पहली बार उन्होंने मेरी बातें सुनीं। अस्वस्थ होकर भी।

और 2 फरवरी से लेकर 5-6 फरवरी तक का समय झंझावातों का समय रहा, जिसे मैंने रोज-बरोज अंकित करके रखा भविष्य के लिए और इतिहास के लिए, जिसे ज्यों का त्यों यहां प्रस्तुत कर रहा हूं—

2 फरवरी, 1977

कांग्रेस के टिकट बटवारे के लिए प्रधानमंत्री निवास 1 अकबर रोड, नई दिल्ली में प्रातः 10 बजे से केन्द्रीय चुनाव समिति की बैठक प्रारम्भ हुई। अधिकतर यह बैठक अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के कार्यालय में होती थी लेकिन पता नहीं क्यों इस बार प्रधानमंत्री का निवास स्थान इसके लिए चुना गया। यों दो दिनों से इन्दिराजी की तबीयत अस्वस्थ थी, अतः वे किसी से मिल नहीं रही थी। मैंने बैठक में भी यह देखा कि वे काफी स्वस्थ नहीं है और उनके चेहरे पर फफोले के समान कई जगह लाल-लाल सूजन है।

मैं 10 बजने के 10 मिनट पहले ही वहां पहुंच गया था। पहले से *सर्वश्री ब्रह्मानन्द रेड्डी, कुलूर मलप्पा, चौधरी बंसीलाल, श्रीमती पूर्वी* मुखर्जी, वी वी राजू, श्रीमती मर्गदम चन्द्रशेखर आदि बैठे थे। मेरे जाने के बाद तुरन्त कांग्रेस अध्यक्ष श्री डी. के. बरुआ आये और उसके बाद श्री यशवन्त राव चव्हाणजी और ठीक 10 बजे प्रधानमंत्री पहुँचीं। प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी और कांग्रेस अध्यक्ष श्री बरुआ टेबुल की एक ओर लगी दो कुर्सियों पर बैठे और उसके बाद दूसरी ओर लगी कुर्सियों में से प्रधानमंत्री के बायीं ओर की पंक्ति में श्रीमती पूर्वी मुखर्जी। उनके बाद वाली कुर्सी खाली रखी गई, यशवन्त राव चव्हाण, सरदार स्वर्ण सिंह, ब्रह्मानन्द रेड्डी, रघुरमैया और ओम मेहता तथा प्रधानमंत्री के दाहिने ओर लगी कुर्सियों पर श्रीमती चन्द्रशेखर, श्री राजू, श्री बंसीलाल, मैं तथा कुलूर मलप्पा बैठे। 10 बजकर *10 मिनट पर श्री सिद्धार्थशंकर राय आये।* वे जब चव्हाण साहब की बगल वाली कुर्सी पर बैठने लगे तो श्री बरुआजी ने उनसे कहा कि वह कुर्सी बाबूजी के लिए छोड़ दें, वे आने वाले हैं, आप इधर बैठ जायें और वे हम लोगों की ओर वाली कुर्सी पर आकर बैठ गये।

10.15 बजे से विचार शुरू हुआ। बसीलालजी ने कहा कि पहले हरियाणा ले लिया जाये और हरियाणा पर ही बात शुरू हुई। प्रधानमंत्री ने हरियाणा की लिस्ट मे विचार के लिए श्रीमती चन्द्रावती, चौधरी रणधीर सिंह और डा. ओमप्रभा जैन का नाम लिया कि वे मेरे पास आये थे। लेकिन बसीलालजी और हरियाणा के मुख्यमंत्री श्री बनारसीदास गुप्त ने एक स्वर से कहा कि वे तीनो बिल्कुल नही जीत सकते हैं। हरियाणा की सूची में भिवानी से बसीलालजी का नाम भी स्वीकृत हुआ। मजाक मे श्री ओम मेहता ने यह भी कहा कि इनके नाम का मैं विरोध करता हू। उसके बाद कांग्रेस अध्यक्ष का अपना प्रान्त आसाम आया। जो सूची प्रदेश कांग्रेस कमेटी की ओर से आयी थी करीब-करीब वही स्वीकृत की गई। इस सूची मे श्री बरुआजी और इटक अध्यक्ष श्री बी० भगवती का भी नाम था। सारी सूची उसी तरह से स्वीकृत हुई जिस तरह से बरुआजी चाहते थे। इसके बाद हिमाचल पर बात शुरू हुई। वहा केवल चार सीटें थी जिन पर कोई बहुत विवाद की गुंजाइश नही थी। कारण, तीन सिटिंग एम० पी० ही थे। मैंने दबी जबान से यह निवेदन पेश किया कि श्री प्रेमचन्द वर्मा भू. पू. संसद सदस्य मेरे पास आये थे, शायद प्रधानमंत्रीजी से भी मिले हैं, इन पर भी जरा विचार हो। हिमाचल के मुख्यमंत्री श्री राम लाल ने भी समर्थन किया कि वे बहुत अच्छे कार्यकर्ता हैं और इनके जीतने में भी कोई हिचक नही है। प्रधानमंत्री बोली कि मेरे पास भी आकर ये मिले थे लेकिन इनके लिए क्या किया जाये, समझ लें। निर्णय यही हुआ कि सिटिंग मेम्बरो को न छेड़ा जाये।

उसके बाद गोआ की सूची पर विचार प्रारम्भ हुआ, लगभग 10.35 बजे। उसी समय प्रधानमंत्री के निजी सचिव श्री धवन ने कमरे में प्रवेश किया और दो मुहरबन्द लिफाफे—एक प्रधानमंत्री को और एक कांग्रेस अध्यक्ष को थमा दिए। दोनों ने अपने-अपने लिफाफों को खोला। हम सबो की दृष्टि उधर ही मुड गई। पहले लिफाफे के बाद दूसरा लिफाफा था वह भी मुहरबन्द। उसके बाद दोनों ने अपनी-अपनी चिट्ठियां पढ़ी और बरुआजी ने अपनी चिट्ठी इन्दिराजी की ओर और इन्दिराजी ने अपना पत्र बरुआजी की ओर बढ़ा दिया। मेरे मन मे यह बात आई कि संभव है युवक कांग्रेस का बोलबाला चल रहा है। संजयजी ने या उन लोगों ने कोई सूची भेजी होगी। पता नहीं औरों ने उन पत्रों के सम्बन्ध मे क्या सोचा ? यह मैंने अवश्य महसूस किया कि पत्र पढ़ने के बाद प्रधानमंत्री ने एक गहरी सांस ली, उनका चेहरा कुछ

फीका हुआ लेकिन सामने नजर दौड़ाकर उन्होंने कहा—हां तो इसमें क्या करना है ?

गोआ कांग्रेस की अध्यक्ष कोई महिला है जिन्हें मैं नही जानता, उन्होंने बड़े जोरदार शब्दों मे यह वकालत की कि हम लोगों को पार्लियामेण्ट और असेम्बली का चुनाव एक-साथ करवाना चाहिये। प्रधानमंत्री के यह कहने पर कि गोआ की मुख्यमंत्री उनसे विचार-विमर्श करने आने वाली हैं और संभव है कि कोई समझौता हो जाये तो वहां की अध्यक्षा ने इस पर भी अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की कि हम लोगों को कुछ भी बात करने की जरूरत नहीं है। वहां वे हमारी आलोचना करते हैं और यहां आप लोगो से आकर बातें करते है। यह दुरंगी नीति नही चलनी चाहिए। इसी बीच इन्दिराजी ने कहा कि इस पर अभी विचार स्थगित रखें। वे जब आ रही हैं तो कोई बातें कर ली जायें और दो-तीन दिनों में इसका फैसला हो जायेगा। वहां के विधानसभा मे कांग्रेस दल के नेता और अध्यक्षा दोनों को जाने का आदेश हुआ। प्रधानमंत्री ने इसके बाद अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के जो दो-तीन व्यक्ति फाइले और कागजों के साथ आते हैं (सर्वश्री के० एन० जोशी संसद सदस्य स्थाई मंत्री, राजकुमार सिह और मनोज बसु) उन्हें बाहर जाने के लिए कहा। जोशीजी को उन्होने कहा कि आप यहीं रुक जाइये। इसी समय बेयरा चाय के प्याले उठाने आया, उसको भी इन्दिराजी ने कहा कि यह सब छोड़ दो, तुम बाहर चले जाओ और उन्होंने उस कमरे के दरवाजे बन्द करवा दिए। मुझे पता नहीं चल रहा था कि आखिर बात क्या है कि तभी प्रधानमंत्री ने कांग्रेस अध्यक्ष श्री देवकान्त बरुआ की ओर इशारा किया—इन सबों को कह दीजिये और इसके बाद श्री बरुआ ने कहा, अभी-अभी श्री जगजीवन बाबू का एक पत्र मुझे और प्रधानमंत्री को मिला है जिसे मैं पढ़कर आप लोगों को सुना देता हूं। एक पन्ना का वह पत्र था जिसमें बाबूजी ने यह लिखा था कि कुछ दिनों से कांग्रेस पार्टी का काम राजनैतिक संस्था के रूप में नहीं चलकर व्यक्तिगत रूप से चल रहा है जो मेरे लिए असहनीय हो रहा है। मुझे ऐसा लगता है कि पार्टी अपने सिद्धान्तों से दूर हो गई है। ऐसी स्थिति मे मैंने यह फैसला किया है कि संस्था से अलग हो जाऊं, अतः मैं कांग्रेस पार्लियामेण्टरी बोर्ड, कार्यकारिणी तथा प्राथमिक सदस्यता से अपना त्यागपत्र देता हूं।

इसके बाद प्रधानमंत्री ने अपना पत्र पढा जो उन्हें लिखा गया था। यह पत्र तीन पन्नो का था। पत्र में पार्टी की बातें तो लिखी ही थीं, साथ ही उनसे यह भी निवेदन किया गया था कि वे इमर्जेन्सी को तुरन्त उठा लें और अन्त

में बड़े भावुक रूप से यह लिखा गया था कि विगत 11 वर्षों से मैंने आपके साथ कैबिनेट के एक सहयोगी के रूप में काम किया, इस बीच आपका जो अपनापन और मेरे प्रति श्रद्धा रही है इसके लिए मैं बहुत आभारी हूं। पत्र अंग्रेजी में था। उस पत्र में यह भी लिखा था कि मैं राष्ट्रपति को अपना त्यागपत्र देने जा रहा हूं और 11 बजकर 15 मिनट पर प्रेस कान्फ्रेंस में मैं इसकी घोषणा भी करने जा रहा हूँ।

पत्र समाप्त होते ही वहां स्तब्धता छा गयी। हम सभी हतप्रभ हो गये। किसी की जबान से एक शब्द नहीं निकला। लगा जैसे हवा थम गई है ऐसे अचानक, अयाचित और इतनी बड़ी घटना घट जायेगी, इसकी किसी ने कल्पना भी न की थी। प्रधानमंत्री ने ही चुप्पी तोड़ी—अब हम लोगों को क्या करना चाहिये ?

जो कठिन स्थिति आ गई है उसका सामना दिलेरी से करना ही है—यह बात मीर कासिम ने कही।

सरदार स्वर्ण सिंह ने सुझाव दिया कि कांग्रेस में और सरकार में अविलम्ब दो-चार हरिजनों को ऊंचे स्थानों पर बैठा देना चाहिये जिससे हम बाबूजी के जाने को बैलेन्स कर सके।

बंसीलालजी ने कहा कि तुरन्त कैबिनेट की मीटिंग बुलाई जानी चाहिये जिसमें इसकी निन्दा होनी चाहिये और प्रधानमंत्री इसमें न जायें बल्कि चव्हाण साहब को इसकी अध्यक्षता करनी चाहिये।

श्री सिद्धार्थशंकर राय ने इसका विरोध किया—जब प्रधानमंत्री यहां हैं तो वे क्यों नहीं अध्यक्षता करेंगी, इसमें क्या बुरा है ?

चव्हाण साहब अब तक सारी घटनाओं को और सारी बातों को मूक द्रष्टा के समान देख-सुन रहे थे। अब बोले—'इतना पैनिक होने की जरूरत नहीं है।' "मैंने इस पर कहा कि कुछ दिनों से यह चर्चा थी कि बहुगुणाजी और नन्दिनी सतपथी कांग्रेस छोड़कर जनता पार्टी में मिलने वाले है लेकिन बाबूजी की बात तो कही से नही सुनी थी। मैंने यह भी कहा कि जो बड़ी संख्या में कांग्रेस जन मेरे पास आते हैं उनका यह भी कहना है कि रजनी पटेल भी कांग्रेस छोड़ने वाले हैं।" कांग्रेस अध्यक्ष ने इसका विरोध किया—नहीं, रजनी से तो मेरी आज ही बातें हुई हैं और नन्दिनी के पति को तो टिकट दे दिया गया, वह क्यों कांग्रेस छोड़ेंगी ?

इसी बीच राष्ट्रपति भवन से 'हाट लाइन' पर प्रधानमंत्री के लिए फोन आया और राष्ट्रपतिजी ने प्रधानमंत्री को तुरन्त राष्ट्रपति भवन आने को

कहा। प्रधानमंत्री बोलो भी कि मैं कुछ अस्वस्थ हूं, बात क्या है तो उन्होंने कहा कि मैं फोन पर नहीं कहूंगा, आप तुरन्त यहां चली आयें, मामला बहुत गम्भीर है। प्रधानमंत्री हम लोगों को वहा बैठे रहने के लिए कहकर राष्ट्रपति भवन चली गई और यहां कई तरह की बातें होने लगी। जितने लोग उतनी बातें। किसी ने कहा कि हम सबों को हस्ताक्षर करके एक वक्तव्य देना चाहिये जिसमें बाबूजी के त्यागपत्र की भर्त्सना होनी चाहिये। किसी ने कहा कि अलग-अलग वक्तव्य जाना जरूरी है। चव्हाण व सिद्धार्थशंकर राय काफी होशियार ही नहीं बल्कि काफी संतुलित भी हैं। दोनों ने यह राय दी कि अलग वक्तव्य की कोई जरूरत नहीं है। प्रधानमंत्री बाबूजी के पत्र का जो उत्तर देंगी उसी को पत्रों में प्रकाशनार्थ भेजा जाये और उसी लाइन पर आगे हम सब लोग काम करें।

हम लोग प्रधानमंत्री के राष्ट्रपति भवन से वापिस आने की इंतजार में थे कि तभी विद्याचरण शुक्ल और चन्द्रजीत यादव भी आ गये। शुक्लजी ने यह कहा कि जगजीवन बाबू की प्रेस कान्फ्रेंस शुरू हो गयी है और उसमें एक ओर नन्दिनीजी और दूसरी ओर बहुगुणा जी बैठे हैं।

प्रधानमंत्री लगभग 25-30 मिनटों के अन्दर राष्ट्रपति भवन से वापिस आ गई। उन्होंने बताया कि बाबूजी ने अपना त्यागपत्र देते समय उनके सम्बंध में तथा विशेष तौर से संजय के सम्बन्ध में बहुत बातें कही। इन्दिराजी का स्वर काफी मलिन था। एक तो कुछ वह अस्वस्थ-सी चल रही थी और साथ ही यह आघात।

मैं नहीं जानता कि प्रधानमंत्री को इस बात की कोई सूचना थी या आभास था। मेरा अपना ख्याल यह है कि उन्हें या किसी को भी इसकी कोई ठोस जानकारी नहीं थी, नहीं तो बाबूजी के लिए कुर्सी खाली नहीं रखी जाती। जगजीवन बाबू ने अपने त्यागपत्र के लिए ऐसे समय का चुनाव किया था जबकि देश में पहले से ही बवण्डर की तैयारी थी या होम चल रहा था उसमें उनके त्यागपत्र ने घी की आहुति दे दी।

सरदार स्वर्ण सिंह बड़े माहिर आदमी हैं। पहले उन्होंने यह कहा कि बाबूजी के त्यागपत्र से केवल उत्तर प्रदेश और बिहार में कुछ प्रभाव पड़ेगा विशेष कहीं नहीं, लेकिन जब सेठीजी ने यह बताया कि मध्य प्रदेश में भी उनके त्यागपत्र का प्रभाव पड़ेगा तो सरदारजी पुनः बोल पड़े — अजी सब से ज्यादा कहीं पड़ेगा तो पंजाब में।

मेरे मन में बहुत सारी बातें आ रही थी, जा रही थी। मैं सोच रहा था

कि जगजीवन बाबू के त्यागपत्र ने जितने बडे नुकसान की पृष्ठभूमि तैयार की है, पता नही इसका एहसास हमारे उपस्थित नेताओ को है या नही। आज तक कांग्रेस की मूलभूत पूजी पिछड़ी जातियां रही हैं जिनमे हरिजन मुख्य हैं। श्री जगजीवनराम को उन्होंने एक प्रतीक के रूप में स्वीकार किया था। इसके साथ ही जगजीवनराम केवल हरिजनों के नेता नही कहे जा सकते। वे एक राष्ट्रीय नेता हैं जिनका वक्तृत्व, कर्तृत्व, व्यक्तित्व और नेतृत्व विगत 40-50 वर्षों से देश के जन-मानस पर अंकित है। इसे किसी प्रकार भी कम करके सोचना गलती होगी। लेकिन जब हम राजनीति में है तो इससे आतंकित होकर भी नही चल सकते। कांग्रेस का कोई भी व्यक्ति चाहे कुछ भी कह दे लेकिन जगजीवन बाबू के त्यागपत्र से कांग्रेस को बहुत बड़ा धक्का लगा है।

मैंने मन ही मन निश्चय किया कि चाहे कुछ हो वर्तमान परिस्थिति मे कांग्रेस नही छोडूंगा। सब के बावजूद इन्दिराजी के नेतृत्व की जो एक मर्यादा है और भारतीय जनता में इनके प्रति जो एक आकर्षण है, तथा दृढ़तापूर्वक काम करने की जो क्षमता है वह शायद ही किसी में हो। मैं ज्यों-ज्यों प्रधानमंत्री को नजदीक से देखता हू त्यों-त्यों प्रभावित होता जाता हूं।

सारा माहौल बदल गया था। कहा हम चले थे चुनाव युद्ध मे कूदने, टिकटों का बंटवारा करने, चक्रव्यूह बनाने और कहां पासा ऐसा पलट गया कि ऐसा लगता है कि हम चक्रव्यूह में कैद हो गये हैं। मैं नही जानता कि प्रधानमंत्री इस चक्रव्यूह को भेदकर बाहर निकलने की कला जानती हैं या नही। मेरा अपना विश्वास है कि वह जरूर जानती होंगी।

लगभग 12.30 से 1 बजे तक 1 अकबर रोड मे बैठकर अनेक तरह की बातें करते रहे। जब हमने 10 बजे वहां प्रवेश किया था तो राजनीति की तस्वीर कुछ और थी और तीन घण्टे बाद जब प्रधानमंत्री की कोठी से मैं बाहर निकल रहा था तो मन मे यही सोच रहा था कि कुछ समय मे ही राजनीति कहां से कहां चली गई है।

3 फरवरी, 1977

सब के बावजूद कांग्रेस एक महा समुद्र है। बाबूजी अलग हो गये। जयप्रकाशजी, मोरारजी भाई, चरण सिह, मोहन धारिया, चन्द्रशेखर और बहुत सारे नेता एक मंच पर आ जुटे हैं। फिर भी मैं देखता हू कि कांग्रेस

टिकट लेने वालों की कोई कमी नहीं आ रही है। भयानक भीड़ देश के हर हिस्से से दिल्ली पहुंच गई है। महाकुम्भ के बाद यह विचित्र टिकटों का कुम्भ शुरू हुआ है। मैं प्रयास करता हूं कि अधिक से अधिक लोगों से मिल लूं। उन्हें मौखिक तसल्ली दे दूं। आखिर एम. पी. के टिकट के लिए जो भी आता है हैसियत का आदमी होगा, तीन-चार-पांच सौ रुपये खर्च करके आता होगा और अगर उससे ठीक से बातें भी न की जायें तो उसकी प्रतिक्रिया बहुत बुरी होगी। आखिर यही कांग्रेस का नेता या कार्यकर्ता जी-जान लगाकर हमें विजयी बनायेगा।

आज आन्ध्र और पंजाब की सूची पर विचार हुआ। कांग्रेस चुनाव समिति के सदस्य के रूप में ब्रह्मानन्द रेड्डी तो थे ही, साथ ही विशेष आमंत्रण पर संसदीय कार्य मंत्री होने के नाते श्री रघुरमैया भी उपस्थित थे, वी. वी. राजू कांग्रेस के महामंत्री की हैसियत से उपस्थित थे और नियमतः आन्ध्र के मुख्य-मंत्री और कांग्रेस अध्यक्ष भी वहां मौजूद थे।

श्री ब्रह्मानन्द रेड्डी ने यह अनुरोध किया कि आन्ध्र पर विचार दो-दिनों के लिऐ स्थगित हो। कांग्रेस अध्यक्ष ने इस पर बतलाया कि क्या जरूरत है? एक घण्टे में हम इसे यहीं समाप्त करते हैं। मुख्यमंत्री और रघुरमैया भी इसी मत के थे कि समय नहीं बढ़े। मुख्यमंत्री ने कहा कि प्रान्त में इतनी समस्याएं हैं कि मुझे वहां पहुंचना जरूरी है, मैं तीन-चार दिनों से दिल्ली में ही हूं। हमारे कई मंत्रीगण भी यहीं हैं, अतः आज ही फैसला हो जाना जरूरी है।

प्रधानमंत्री के निवास स्थान पर कल से ही भयानक जमाव लग रहा है। हर तबके के लोग बड़ी संख्या में आते हैं, जिन्दाबाद के नारे लगाते हैं, 'हम आपके साथ है,' के वचन दुहराते हैं, प्रधानमंत्री उनके बीच संक्षिप्त भाषण देती है और वे जय-जयकार करते हुए चले जाते हैं। ऐसी ही टोली से निपट कर प्रधानमंत्री 15-20 मिनटों के विलम्ब से बैठक में आई। ब्रह्मानन्द रेड्डी ने अपनी बात दुहराई कि मुझे आज ही यह लिस्ट मिली है, मित्रों से मैं बातचीत नहीं कर सका हूं, अतः इस पर दो दिनों के लिए विचार स्थगित रखा जाये। प्रधानमंत्री ने पूछा कि क्या आपकी और वेंगलराव (मुख्यमंत्री) की बातें इस सम्बन्ध में नहीं हुई हैं, श्री वेंगलराव ने कहा कि कल मैं इनके घर गया था, बातें हुई हैं। इस पर ब्रह्मानन्द रेड्डी बहुत जोर से बिगड़े—क्या बातें हुई हैं। आपने तो मुझ से यह कहा कि हम लोगों को एक-जुट होकर कांग्रेस उम्मीदवारों को विजयी बनाने का प्रयास करना चाहिये। क्या आपने

यह सोचा था कि मैं कांग्रेस विरोधी हूं और कांग्रेस उम्मीदवारों को हराने के लिए काम करूंगा ? मैं कांग्रेस में 1932 में आया और मुझे आप यह उपदेश देने के लिए आ गये।

सरदारजी ऐसे मौके के लिए बड़े मुफीद व्यक्ति है। बोले—ठीक है अब आप लोग बातचीत कर लीजिये। प्रधानमंत्री ने कहा कि एक दिन का समय बढ़ा दिया जाये। रघुरमैयाजी ने कहा कि उनके घर पर बैठक हो जाये, इस पर ब्रह्मानन्दजी तुनक पड़े—'मेरे पास भी यहां एक सरकारी घर है।' मुख्यमंत्री ने कहा कि क्यों नहीं हम लोग आन्ध्र भवन में बैठ जायें। ब्रह्मानन्दजी ने इसका भी विरोध किया—'इस काम के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में ही हम लोग बैठ सकते है।'

यह विरोध देखकर सहज रूप से मेरा विनोदी स्वभाव कुछ मनोरंजित हो रहा था। हर बात या काम मुर्दे की तरह से होने में कोई रस भी नहीं आता, सजीवता होनी चाहिये। दूसरी बात यह थी कि जगजीवन बाबू के हटने के बाद से हर आदमी की कद्र भी बढ़ गई। संभव था कि ब्रह्मानन्द रेड्डी पहले नहीं बोल पाते, लेकिन अब वे कडक कर बोल रहे हैं।

पंजाब की 10 सीटों का फैसला हो गया। कोई देर नहीं लगी। दो उम्मीदवार तो अन्दर ही बैठे थे—सरदार स्वर्ण सिंह जी और प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष श्री महेन्द्र सिंह गिल। इसमें सबसे बड़ी बात यह रही कि गुरदासपुर से अखिल भारतीय युवक कांग्रेस की अध्यक्षा श्रीमती अम्बिका सोनी का नाम था जिसे प्रधानमंत्री ने स्वयं रोका—क्या यह जीत सकेंगी ? अन्त में यह तय हुआ कि प्रबोधचन्द्रजी एक वयोवृद्ध नेता ही नहीं हैं बल्कि उन्होंने चुनाव लड़ने से अनिच्छा प्रकट की थी—उन्हें ही यह जगह दी जाये।

अम्बिका सोनी का नाम जब कटा तो श्री ओम मेहता ने धीरे से पंजाब के मुख्यमंत्री ज्ञानी जैल सिंह के कान में कहा—'सरदारजी, अब ट्रेण्ड समझ जाइये।'

शाम को कांग्रेस कार्य समिति और केन्द्रीय चुनाव समिति की संयुक्त बैठक चुनाव घोषणापत्र पर विचार करने के लिए हुई। मैंने इसमें कई बातें सुझाईं। प्रधानमंत्री ने उन्हें माना भी। प्रधानमंत्री बराबर नहीं बैठती थी। कभी आती थी, कभी जाती थी। श्री सिद्धार्थशंकर राय, सुब्रह्मण्यम, शंकर घोष, के. डी. मालवीय ज्यादा रस ले रहे थे। बंसीलाल और डा. शंकरदयाल शर्मा एक साथ बैठे थे और अब बंसीलालजी यह कह रहे थे कि भाई, यह सब इंटेलेक्चुअलों (बुद्धिजीवियों) का काम है, हम लोगों को छोड़ो, तुम लोग ड्राफ्ट

कर लो। गम्भीरता बहुत कम थी। पूर्वी मुखर्जी पढ़ कर सुना रही थीं और लोग प्रतिक्रियायें व्यक्त कर रहे थे। तीन चार घण्टे तक यह बैठक चली।

कोई कहे या न कहे, जगजीवन बाबू के त्यागपत्र ने हिला कर रख दिया है। इसीलिये आज यह पता चला कि श्री बलिराम भगत अपना चुनाव क्षेत्र बदलने के लिए कांग्रेस अध्यक्ष के पास गये। बहुत लोगों के पांवो के नीचे से जमीन खिसक रही है। मैं अपने चुनाव क्षेत्र को सब से सुरक्षित मानता था, कारण इसमें चार विधानसभा क्षेत्र सुरक्षित हैं और हरिजनों की संख्या बहुत ज्यादा है, लेकिन मेरी परेशानी और बढ़ गई। श्री शुकदेव प्रसाद वर्मा जगजीवन बाबू की पार्टी मे चले गये और वे मेरे ही खिलाफ उम्मीदवार भी हो गये हैं। कारण, यह है कि एक तो मेरे संसदीय क्षेत्र मे हरिजनों की संख्या बहुत अधिक है, साथ ही कोयरियों की संख्या बहुत है। वर्माजी उसी जाति के हैं। उन्हे उसमें बहुत भरोसा है।

मैंने कभी जातीयता पर आधारित राजनीति नही की। मेरा इसमे विश्वास भी नहीं है, अतः मुझे कई मित्रों ने यह सलाह दी कि यहां से बदल कर मैं कोडरमा चला जाऊं लेकिन मैंने यह बात नही मानी। भला इतना डर कर राजनीति में आदमी रहे तो काम कैसे कर सकता है? मुझे अपने आप पर, जनता से संपर्क पर काफी भरोसा रहता है इसीलिए मुझे न तो कोई डर है, न हिचकिचाहट। अच्छी तरह से लड़ूंगा और विजयी होने में भी कहीं कोई शंका मुझे नही है।

जगजीवन बाबू के कांग्रेस से अलग हो जाने पर समस्या बड़ी गम्भीर हो गई है, खासकर बिहार में। जयप्रकाशजी बाहरी हवा बांधने के लिए और जगजीवन बाबू धरती तक पहुचने के लिए काफी हैं। साथ ही सत्येन्द्र बाबू की वजह से ऊंचे वर्गों का सहयोग भी मिल सकता है। बिहार की हर सीट कांटे की लड़ाई हो गई है। कौन जीतेगा, कौन हारेगा, कहना कठिन है।

बिहार में आज सब लोगों की नजर रामलखन बाबू की ओर मुड़ गई है। जब कभी भी चुनाव आता है तो ऐसा ही होता है। यह सही है कि बिहार का जो माहौल है उसमें यादवों और राजपूतों की सम्मिलित शक्ति ही मुकाबला कर सकती है नही तो सारे लोग हवा हो जायें। मैंने आज प्रधानमंत्री से रामलखन बाबू को मिलवाया। उन्होंने अच्छी बातें भी की।

4 फरवरी, 1977

भीड़ का आलम वही है। 1-2 बजे रात में सोता हूं, 5-6 बजे भोर में

कर लो। गम्भीरता बहुत कम थी। पूर्वी मुखर्जी पढ़ कर सुना रही थी और लोग प्रतिक्रियायें व्यक्त कर रहे थे। तीन चार घण्टे तक यह बैठक चली।

कोई कहे या न कहे, जगजीवन बाबू के त्यागपत्र ने हिला कर रख दिया है। इसीलिये आज यह पता चला कि श्री बलिराम भगत अपना चुनाव क्षेत्र बदलने के लिए कांग्रेस अध्यक्ष के पास गये। बहुत लोगों के पावों के नीचे से जमीन खिसक रही है। मै अपने चुनाव क्षेत्र को सब से सुरक्षित मानता था, कारण इसमें चार विधानसभा क्षेत्र सुरक्षित हैं और हरिजनों की संख्या बहुत ज्यादा है, लेकिन मेरी परेशानी और बढ़ गई। श्री शुकदेव प्रसाद वर्मा जगजीवन बाबू की पार्टी मे चले गये और वे मेरे ही खिलाफ उम्मीदवार भी हो गये हैं। कारण, यह है कि एक तो मेरे संसदीय क्षेत्र में हरिजनों की संख्या बहुत अधिक है, साथ ही कोयरियो की सख्या बहुत है। वर्माजी उसी जाति के है। उन्हे उसमें बहुत भरोसा है।

मैंने कभी जातीयता पर आधारित राजनीति नही की। मेरा इसमें विश्वास भी नही है, अतः मुझे कई मित्रों ने यह सलाह दी कि यहा से बदल कर मैं कोडरमा चला जाऊं लेकिन मैंने यह बात नही मानी। भला इतना डर कर राजनीति में आदमी रहे तो काम कैसे कर सकता है? मुझे अपने आप पर, जनता से सपर्क पर काफी भरोसा रहता है इसीलिए मुझे न तो कोई डर है, न हिच-किचाहट। अच्छी तरह से लड़ूंगा और विजयी होने में भी कहीं कोई शंका मुझे नही है।

जगजीवन बाबू के कांग्रेस से अलग हो जाने पर समस्या बड़ी गम्भीर हो गई है, खासकर बिहार में। जयप्रकाशजी बाहरी हवा बांधने के लिए और जगजीवन बाबू धरती तक पहुंचने के लिए काफी हैं। साथ ही सत्येन्द्र बाबू की वजह से ऊंचे वर्गों का सहयोग भी मिल सकता है। बिहार की हर सीट कांटे की लड़ाई हो गई है। कौन जीतेगा, कौन हारेगा, कहना कठिन है।

बिहार में आज सब लोगों की नजर रामलखन बाबू की ओर मुड़ गई है। जब कभी भी चुनाव आता है तो ऐसा ही होता है। यह सही है कि बिहार का जो माहौल है उसमें यादवों और राजपूतों की सम्मिलित शक्ति ही मुकाबला कर सकती है नही तो सारे लोग हवा हो जायें। मैंने आज प्रधान-मंत्री से रामलखन बाबू को मिलवाया। उन्होंने अच्छी बातें भी की।

4 फरवरी, 1977

भीड़ का आलम वही है। 1-2 बजे रात में सोता हूं, 5-6 बजे भोर में

उठ जाता हूं। टेलीफोन रखा नहीं कि फिर घण्टी शुरू। दस-बीस लोग गेट के बाहर हुए कि 30-40 फिर अन्दर हो जाते है। मैंने इसका कारण जानना चाहा। एक तो लोग इसलिए आते हैं कि मैं चुनाव समिति का एक मुखर सदस्य हूं, जो सही बात होती है उसे वहां कह देता हूं। मुख्यमंत्री या मंत्री नहीं होने का लाभ यह है कि भय से अलग रहता हूं, चिकनी-चुपड़ी बातें नहीं कर पाता। दूसरी बात यह है कि सबों से स्वाभाविक रूप से मिल लेता हूं। कांग्रेस टिकट पाने के लिए इस बार सब से बड़ी भीड़ इसलिए भी है कि लोग यह जानते है कि पार्टी की ओर से काफी पैसा और जीप आदि दी जायेंगी। अतः हार हो या जीत, दोनों में लाभ है।

केन्द्रीय चुनाव समिति मे आज बंगाल की सूची पर विचार हुआ। बाबूजी के जाने के बाद से सिद्धार्थ बाबू का पलड़ा कुछ भारी हुआ है। कांग्रेस अध्यक्ष भी कुछ बुलन्द हुए हैं। संजय और युवक कांग्रेस की तस्वीर कुछ धुंधली पड़ गई है। जगजीवन बाबू ने बाहर जाकर सब से बड़ा लाभ यह किया कि जो सिटिंग संसद सदस्य हैं उन्हें बचा लिया। पहले से जो लिस्ट बनने की सभावना थी या बनकर तैयार थी वह किस गताल खाते में पड़ी है कोई नहीं जानता। जहां युवक कांग्रेस की बात आती है, हर व्यक्ति कह पड़ता है कि इन्हें तो क्षेत्र समझने में भी कुछ समय लग जायेगा। मैं जरूर उनकी वकालत करता हूं।

मैंने आज उड़ीसा पर जब विचार हो रहा था तब यह कहा कि दो बातें हम लोगो को सामने रखनी चाहियें—एक यह कि जिसे टिकट दें वह जीते, दूसरी बात यह कि जीत कर हमारे साथ रहे। प्रधानमंत्री के विचार भी यही हैं।

उड़ीसा की लिस्ट में राजा-महाराजाओं को प्राथमिकता दी गई कि यही जीत सकते हैं। प्रधानमंत्री ने धीरे से यह बात कही भी कि ज्यादा राजा-महाराजाओं को लेकर हम न चलें लेकिन बरुआजी की अपनी ऐतिहासिक 'थीसिस' होती है। वे इन दिनों एक उजली माला लेकर आते हैं और उसे पहुंचे हुए फकीरों के समान जपते रहते हैं। चेहरे पर रौनक भी आ गई है और अपने को एक सक्षम अध्यक्ष के रूप में साबित कर रहे हैं।

बंगाल की सूची में कुछ परिवर्तन अवश्य किया गया लेकिन सिद्धार्थ बाबू के साथ जो लोग उनके गुट के थे उनके टिकट कटते-कटते बच गये। चुनाव समिति की बैठक मे देवी बाबू और प्रणव बाबू भी बुलाये गये। मुझे यह बात अच्छी नहीं लगी। कारण, अब तक केवल सदस्यों को ही बुलाया जाता था।

मैं इन दिनों ऐसा करता हूं कि अपनी गाड़ी से 1 अकबर रोड नहीं जाता, किन्हीं की गाड़ी से चला जाता हूं और कोई पहुँचाने चले आते हैं। आज सिद्धार्थ बाबू पहुँचाने आये। मैंने रास्ते में पूछा, आपके यहां की लिस्ट कैसी बनी? बोले—चार-पांच लोग तो ठीक नहीं हैं लेकिन सब को लेकर चलना ही पड़ता है। मैं अपने इमेज से चुनाव जितवा दूंगा। कारण देश में एक मात्र मैं ही ऐसा मुख्यमंत्री हूं जो संजय को एयर पोर्ट पर रिसीव करने नहीं गया और जिसने माला नहीं पहनाई।

सिद्धार्थ बाबू के हृदय में जो आग जल रही है, उसका अंदाजा इससे हो सकता है।

5 फरवरी, 1977

आज कांग्रेस की ओर से एक विशाल रैली का आयोजन रामलीला मैदान में किया गया जिसमें प्रधानमंत्री ने चुनाव अभियान का श्रीगणेश किया। भीड़ काफी थी लेकिन असंतुलित। सर्वश्री मीर कासिम, कमलापति त्रिपाठी, सरदार स्वर्ण सिंह और यशवन्त राव चव्हाण तथा प्रधानमंत्री ने भाषण दिए। आयोजकों की गलती थी तथा वक्ताओं की भी, केवल प्रधानमंत्री का भाषण होना चाहिये था, वहां कमलापतिजी ने आधा घण्टा ले लिया। चव्हाण साहब और स्वर्ण सिंह तो दो मिनटों में ही बैठ गये।

प्रधानमंत्री आधा घण्टा बोलीं लेकिन इतने गुस्से में थीं और इस तरह से क्रोध के साथ उन्होंने भाषण दिया कि वह जम नहीं पाया। बीच में ही भीड़ उठकर जाने लगी, अतः बहुत जल्द उन्हें अपना भाषण समाप्त करना पड़ा। यह शायद पहला मौका था जब इन्दिराजी के भाषण के बीच से ही भीड़ उठने लगी हो। इसकी प्रतिक्रिया अच्छी नहीं हुई।

मैंने 3 की शाम को कार्य समिति की बैठक में यह बात कही थी कि विरोधी दलों की रैली के बाद हमारी रैली होनी चाहिये लेकिन इन लोगों ने मेरी बात नहीं मानी। आज की रैली की सब से बड़ी विशेषता यह थी कि हर जगह यह पोस्टर लगाये गये थे कि श्री संजय गांधी चुनाव अभियान का उद्घाटन करेंगे और सर्वश्री ओम मेहता, शफी कुरैशी और श्रीमती अम्बिका सोनी के भाषण होंगे लेकिन इनमें से कोई भी न तो बोलने आये, न तो मंच पर ही। दो चार दिनों में ही भारत की राजनीति कहां से कहां चली गई थी। संजय किस पिटारे में बन्द हो गये थे, कहना कठिन है। मंच के एक ओर

इन्दिराजी की बहुत बड़ी तस्वीर लगी थी और दूसरी ओर संजयजी की। बहुतों को मैंने यह कहते सुना कि संजय की तस्वीर को यहां से जल्दी हटाओ नहीं तो हम लोगों का वोटर भड़क जायेगा। कहने वाले कांग्रेसजन थे। मुझे ऐसा लगता है कि राजनीति में इतना जल्द उत्थान और इतना जल्द पतन किसी का नहीं हुआ होगा। कहां संजय ऐसे थे कि मंत्री और मुख्यमंत्रीगण उनके तलवे सहलाने में ही लगे रहते थे और कहा आज ऐसा मौका आया कि उन्हे मंच पर नही लाया गया।

मैं यह मानता हूं कि युवा शक्ति को संजय गांधी ने आगे लाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। मठाधीशों को भी अक्ल सिखलाई लेकिन जिस तरह से वे देश और राजनीति पर हावी हो गये, इसे किसी ने पसन्द नहीं किया। अगर यही वह धीरे-धीरे करते तो शायद लोगों को सह्य हो जाता।

इन्दिराजी को देश ने माना और आज भी गरीब जनता उन्हें मानती है। अगर उनकी प्रतिष्ठा को ठेस पहुंची तो संजय गांधी के कारण। पुराने कांग्रेसकर्मी केवल कुपित ही नहीं दुःखी भी हुए। उन्हे तिरस्कृत भी किया गया और अपमानित भी। मुझे ऐसा लगता है मानों एक नया दौर शुरू हो रहा है। देश की राजनीति कही करवट ले रही है। हम सब टिक जायें तो यही बहुत बड़ी बात है।

हां, आज वास्तव में लिखना कठिन हो रहा है, लेकिन 2 फरवरी से 5 फरवरी तक की बातें मैंने उन्ही दिनों लिखी थी और किसी अमूल्य निधि के समान संजोकर रखी थी कि शायद किसी काम दे दें। आज जब उस लिखे को पढ़ता हूं, तो लगता है कि मैं न तो कोई भविष्य-वक्ता हूं न ज्योतिषी, लेकिन काल-परिधि को खुली आंखों हम सब देख रहे थे। मैंने जो सोचा या मैंने जो लिखा—वही कम-अधिक हमारे अन्य भाई भी सोच रहे थे, लेकिन रह-रहकर मैं एक ही विचार-परिधि में फस जाता हूं कि यह बातें प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी को क्यों नहीं सूझ रही थी?

12 जून 1975 को जब इलाहाबाद हाई कोर्ट का फैसला आया था, उस दिन भी प्रातः श्री डी. पी. धर की मृत्यु ने अशुभ की सूचना दे दी थी और इस बार भी जगजीवनरामजी का कांग्रेस छोड़कर जाना, राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद की मृत्यु—ये दो ऐसे अशुभ लक्षण थे, जिनके बाद भविष्य की स्थिति बिलकुल साफ थी। लेकिन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के लिए कोई दूसरा चारा नही था। चुनाव हुए और उनके फल सामने है।

समय शिल्प है और उसके प्रत्यंचा की डोर को जो धनुर्धर ठीक से संधान कर दे—वही वीर होता है। सवालों के बवंडर में बार-बार मेरी इच्छा होती है कि लिखूं कि कौन थे वे सब, जिन्होंने इन्दिरा गांधी जैसी वीर को धराशायी करने का सारा बीज-मन्त्र तैयार कर दिया था। निश्चित रूप से वे न तो जयप्रकाशजी थे, न मोरारजी भाई, न चन्द्रशेखर, न जगजीवनराम, न बहुगुणा, न अटलबिहारीजी और न मौलाना बुखारी—बल्कि इन्दिरा गांधी को धराशायी करने वाले उन्ही के चट्टे-बट्टे थे—चाहे वे उनके सुपुत्र हों या उनके मिट्टी के शेर, जो आज कही नजर नही आते और जिन्होंने अपनी अदूरदर्शिता से एक ओर जहां कांग्रेस के 90 वर्षों के इतिहास को धूल में मिला दिया, वही इन्दिरा गांधी के विश्वव्यापी व्यक्तित्व को जिन्दा कफन से ढंक दिया और जनतंत्र की मर्यादा को जो ठेस पहुंचाई, उसके दंड देने के लिए इतिहास या समय की प्रतीक्षा बेकार है, आज उन सबों के मुख पर कालिख की अनगिनत परतें पड़ गई हैं, जिससे उनका चेहरा भी दिखाई नहीं देता।

क्या सच : क्या झूठ

'पिछले आपात्कालीन प्रकरण में कानून का क्षय बहुत कुछ कानून के हाथों ही हुआ, लोकतन्त्र की दुहाई देकर ही स्वार्थ और निरंकुशता के दुर्योधन और दुःशासन ने सांवैधानिक और लोकतन्त्रीय मर्यादाओं की द्रौपदी का चीर-हरण किया।'

— डा० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी — 'धर्मयुग', २३ जुलाई, १९७७

'मैं पिछली आधी शताब्दी से राजनीति में रहा, हर अन्याय के विरुद्ध युद्ध करता रहा, वह चाहे अंग्रेजों के राज्य के विरुद्ध हो या देश की उन्नति के लिए, मेरा धर्म केवल युद्ध था, क्या हुआ मुझे? वह कौन-सी शक्ति या वह कौन-सी दुर्बलता थी, जिसने मुझे सही बात इन्दिराजी के सामने रखने से रोका।............सोचता हूं कि शायद मेरे मन में कहीं कमजोरी थी और वह यह कि मैं सोचता था कि मेरे ऊपर कितने व्यक्ति निर्भर हैं, कितने लोगों की राजनीति, केन्द्र में और प्रदेशों में मेरे दिशा-निर्देश पर चलती है, मैं शायद सोचता रहा कि उन सब का क्या होगा, यदि मैं शक्ति के केन्द्र से अलग हो गया तो?'

— पण्डित कमलापति त्रिपाठी — 'धर्मयुग', २ सितम्बर १९७७

आखिर क्यों ऐसा किया इन्दिरा गांधी ने ? जवाबों की कमी नहीं है, लेकिन जवाहरलाल और इन्दिरा गांधी में यही सबसे बड़ा फर्क दिखाई देता है। और वह फर्क है, जो स्वयं श्रीमती गांधी ने दो-तीन वर्षों पहले इण्टक अध्यक्ष श्री विजय भगवती को बातचीत के दौरान कहा था—मेरे पिता सन्त थे, लेकिन मैं सन्त नहीं हूं।

— इसी पुस्तक का एक अंश

यह ठीक है कि कितने लोगों के अनुसार देश, जनतन्त्र और कांग्रेस संस्था का सूरज उस दिन सबेरे-सबेरे ही अस्त हो रहा था, लेकिन यह भी सही है कि बहुत लोगों के जीवन का सूरज तो उसी दिन उगा था, जो मध्याह्न तक पहुंचा भी, लेकिन क्षितिज तक पहुंचने के पहले ही उल्कापात हो गया।

— इसी पुस्तक का एक अंश

टन······टन······टन······टेलीफोन की घंटी बजती है, लपक कर चोंगा उठा लेता हूं—हलो······?

कुछ पता चला ? — उधर से धर्मवीर गांधी की आवाज आती है।

नही तो ? क्या ? —पूछता हूं ?

जयप्रकाशजी, मोरारजी भाई, चन्द्रशेखर, कृष्णकांत आदि कई लोग गिरफ्तार हो गये, देश मे इमर्जेन्सी लागू हो गई। आज कोई भी अखबार नहीं निकला। सब की लाइन काट दी गई और सेंसरशिप लागू हो गया।— बिल्कुल अवाक् कर देने वाली आवाज थी, लेकिन मैं चौंका कम, चिन्तित ज्यादा हुआ — बोला — जो भी और खबर मिले उसे बताइयेगा।— और चोंगा मैंने रख दिया या मेरे हाथ से गिर गया, यह याद नही है।

मैं कुर्ता खोलकर टांगने की तैयारी में था। अभी-अभी तुरन्त पालम से घर पहुंचा था। पालम गया था पटना के लिए सर्विस प्लेन पकड़ने, वहां देखता हूं कि हर जगह सी.आर.पी के जवान तैनात, टोपधारी और हर किसी के हाथ मे बेंत की ढाल—रोड़-पत्थर-ईंटा के बचाव के लिए।

माजरा क्या है, मैं चौंक गया —सम्भवत: प्रधानमंत्री कहीं जा रही हैं, उन्हीं की रक्षा के लिए शायद यहा शस्त्र-बल हो, लेकिन नहीं, कहीं कुछ खास बात है—मेरे अंदर के छट्ठे 'सेंस' ने कहा।

काउन्टर पर जाकर दरयाफ्त किया — भाई साहब, पटना के लिए जगह है ?

हां, हां, जगह है। टिकट ले आइये — कुछ मुस्कुराते और कुछ तिरछी नजरों से ताकते हुए काउन्टर अधिकारी ने कहा।

टिकट कटाने जा ही रहा था कि रास्ते मे एक परिचित विमान-अधिकारी मिल गये, आंखो ही आंखों में इशारा कर अलग ले गये और कान के पास मुंह ले जाकर कहा—पुलिस की यह भीड़ आपने देखी, जयप्रकाश नारायण अरेस्ट हो गये और उन्हे प्लेन से कहीं बाहर भेजा गया है। (बाद में यह पता चला कि जयप्रकाशजी कार द्वारा हरियाणा के सोहना नामक स्थान मे ले जाये गये थे)।

सुनते ही मेरे रोंगटे खड़े हो गये—यह क्या हुआ ? टिकट कटाने के

लिए बढ़ते पांव झटके से रुक गये, पीछे की ओर मुड़ गया और भागा हुआ घर पहुंचा ही था कि गांधीजी का फोन आया और अस्पष्ट-सी लग रही सारी बातें स्पष्ट हो गईं।

कुर्ता टांग कर पटना फोन लगाया—20374, रामलखनजी हैं?

—हां, मैं रामलखन बोल रहा हूं। उधर से आवाज आई।

—रामलखन बाबू मैं हूं दिल्ली से शंकरदयाल, भारी तहलकेदार समाचार है। जयप्रकाशजी, मोरारजी भाई, चन्द्रशेखरजी आदि कई नेता अरेस्ट हो गये, देश मे आपात्काल को घोषणा हो गई, आज अखबार नहीं निकले।—मै एक सांस में कह गया।

—डिक्टेटरशिप आ गया। — पटना से आती हुई रामलखन बाबू की यह आवाज इस प्रकार कानों में टकराई मानों किसी ने कस कर गालो पर चपत लगा दी हो।

दूसरा फोन मैंने अहमदाबाद किया—भाई साहब, दिल्ली की भयानक खबरें है। पूर्ण रूप से यह कि इमर्जेन्सी लागू हो गई। जयप्रकाशजी, मोरारजी भाई सरीखे बड़े-बड़े नेता गिरफ्तार हो गये, अखबार नहीं निकले। और फोन पर क्या कहूं, इतना ही कम नहीं है।""""तुरंत दिल्ली भिजवा दीजिये।

और इसके बाद मैं भागा बगल के फ्लैट में हरिकिशोरजी के यहां। मैं मीनाबाग 43 मे था और हरिकिशोरजी 41 मे। जब भी हम यहां रहते हमारा नियम था कि सवेरे चाय पर प्रतिभाजी और हरिकिशोरजी तथा कानन और मैं सब उनके यहा, कभी वे सभी मेरे यहां आकर मिलते थे और सारी बाते होती थीं—दीन-दुनिया की।

मैंने जब घंटी बजाई तो हरिकिशोरजी ने सहमे हुए रूप में दरवाजा खोला और पूछा—और कोई है क्या……?

—नहीं तो —मैंने जवाब दिया। आ जाइये अन्दर—कहते हुए वे 'बेड रूम' की ओर बढ़े, वहां पहुंचा तो एक अप्रत्याशित मेहमान को देखकर हंस पड़ा—कृष्णकांतजी दो तकियों के अलावा दोनों हाथों से सिर पकड़कर अध-लेटे थे।

—कहा थे तुम, कुछ पता चला क्या-क्या हुआ? कृष्णकांत बोले।

मैंने जो दृश्य पालम हवाई अड्डे पर देखा था और जो अभी-अभी धर्मवीर गांधी ने कहा था, एक ही सांस में कह गया।

—मैं तो वहीं से सीधा यहां आ रहा हूं। कृष्णकांतजी ने कहा।

—कहां से? मैंने पूछा।

—पालियामेण्ट स्ट्रीट थाने से। वहा जे.पी. और चन्द्रशेखर को देखकर।

जे.पी. को जब ये गांधी शांति प्रतिष्ठान में गिरफ्तार करने गये तो उन्होंने वहां से अपने कुछ मित्रों को फोन से खबर दी—चन्द्रशेखर को कह दिया तथा मुझे भी पता चला। चन्द्रशेखर को पहले पुलिस वाले मिलने ही न दे, बाद में जे.पी. ने ही कहा कि ये एम०पी० हैं, आने दें। ठीक इसी समय पुलिस के एक वरिष्ठ अधिकारी ने आकर चन्द्रशेखर को नमस्कार किया और बोला— आप स्वयं आ गये, मैं तो आपको लेने आपके घर गया था। कृष्णकांतजी घबराये से थे, उन्होंने आगे कहा—मैं तो यहां इसलिए आ गया कि बाहर रहकर कुछ व्यवस्था करूगा। एक लम्बी सांस लेकर वे बोले।

उसके बाद बातों का लम्बा सिलसिला शुरू हुआ—क्या हो गया यह ? क्या सच में जनतंत्र इस देश से विदा हो गया ? क्या अब मार्शल लॉ लागू हो जायेगा ? क्या देश की करोड़ों जनता इस अन्याय को बर्दाश्त कर लेगी ? कौन-कौन से और लोग गिरफ्तार किये गये होंगे ? बिहार मे तो आज आग लग जायेगी ? इस तरह का किसी ने सोचा भी नही था कि 'मैडम' इतना बड़ा कदम उठायेगी ? बीच-बीच में चाय और काफी का दौर चल रहा था, रह-रह कर जहां-तहां टेलीफोन कर जानकारी प्राप्त करने की कोशिश कर रहे थे और साथ ही कृष्णकांतजी, हरिकिशोरजी और मेरे कान बाहर की ओर लगे थे कि कहीं पुलिस की गाडी आकर हमें भी न ले जाये।

इस तरह आठ बजे और कृष्णकान्तजी पीछे के रास्ते मेरे घर आये। उन्होंने न मुंह धोया था न स्नान किया था, अतः मैं साहस बटोर कर अपनी गाड़ी से उनके घर गया। उनका हाल-चाल कह आया और नहाने के लिये उनके कपड़े लेकर वापस आ गया। उस समय मैंने यह जरूर देखा कि कृष्णकांतजी के घर के आस-पास सादी वर्दी में एक-दो लोग घूम रहे हैं और मुझे भी घूर रहे हैं।

तब तक हमें यह नहीं पता था कि यह इमर्जेन्सी क्या है और किस तरह की इमर्जेन्सी देश में लगी है ?

क्या यह पूर्णतया डिक्टेटरशिप है ? क्या अब मार्शल लॉ लागू हो जायेगा ? क्या लोकसभा और विधानसभाये भग कर दी जायेंगी ?

कुछ भी पता नही चल रहा था। और इधर बिहार से लगातार फोन पर फोन आ रहे थे—'क्या हाल-चाल है?' लोग यह जानना चाहते थे कि मैं हूं या पकड़कर कही भेज दिया गया। बार-बार यह भी सवाल पूछा जा रहा था कि आपको पता है कि नही कि जगजीवन बाबू और चव्हाण

साहब हाउस अरेस्ट हैं ? जिसके मन में जो आ रहा था, वही अनुमान कर रहा था।

स्थिति विषम थी और परिस्थिति विकराल। इसी बीच आकाशवाणी से प्रधानमंत्री का भाषण हुआ—"राष्ट्रपति ने आपातकाल की घोषणा कर दी है। इससे घबराने की आवश्यकता नहीं।"

हम सब चिंतित थे लेकिन कृष्णकांतजी विशेष रूप से। मैं जानता था कि वे उर्दू के शेर-शायरी, गजल और नज्म के बड़े शौकीन हैं इसलिए मैंने रिकार्ड प्लेयर पर फैज अहमद 'फैज' की नज्म का रिकार्ड चढ़ा दिया, जिसे अभी हाल में ही श्री धर्मवीर गांधी ने अपनी पाकिस्तान यात्रा से लौटकर मुझे भेंट किया था। फैज गा रहे थे—

"आज मिरा दिल फिक्र में है,
ऐ रोशनियों के शहर।
शबखं से मुंह फेर न जाये अरमानों की रौ।
खैर हो तेरी लैलाओं की, उन सब से कह दो।
आज की शब जब दिये जलायें, ऊंची रखें लौ।"

और दूसरी ओर कृष्णकांत अपनी गोद में रखे तकिये पर ताल दे रहे थे—बस-बस, यही आज हाल है हमारा भी।

और मैं इधर फैज की दूसरी नज्म को गुनगुना रहा था, जो उन्होंने पकिस्तान में अय्यूब शाही आने पर और मार्शल लॉ लागू किये जाने पर लिखी थी—

"आ गई फस्ले सकूं चाक गरेबां वालो।
सिल गये होंठ कोई जख्म सिले या न सिले।
दोस्तो, बज्म सजाओ कि बहार आई है।
खिल गये जख्म कोई फूल खिले या न खिले।"

आपात्काल की घोषणा क्यों हुई, कैसे हुई, किस की प्रेरणा से हुई—इन सवालों को हल करने के लिए काफी माथापच्ची हो चुकी है। किसी-किसी का कहना है कि सिद्धार्थशंकर राय के दिमाग की यह उपज थी कोई-कोई यह कहता है कि गोखले ने इसका मसविदा तैयार किया, बहुत सारे लोगों का विश्वास है कि बंसीलाल ने इसके लिए सलाह दी थी, कई लोगो की यह पक्की जानकारी है कि डी० के० बरुआ ने इसके लिए प्रेरित किया था, कई मित्रों की राय में पी० एन० धर, रॉ के श्री कॉव एव सी० बी० आई० के डी० सेन का इसमें प्रमुख हाथ है। और कुछ छुटभइयों के अनुसार

श्री धवन और श्री संजय गांधी ने 'मैडम' को इसके लिए मजबूर कर दिया।

क्या सच है, क्या झूठ, भगवान जानें, लेकिन मेरा यह दृढ़ मत है कि आपातकाल की योजना श्रीमती इंदिरा गांधी के अपने दिमाग की उपज थी और इसका एक ही उद्देश्य था प्रधानमंत्री की गद्दी को बरकरार रखना।

सुनते हैं कि मौत की सजा सुनाने वाला जज फैसले के बाद जब घर आता है तो उस दिन खाना नहीं खाता। पता नहीं जिन हाथों ने अथवा जिन लोगों ने इमर्जेन्सी की घोषणा की या करवाई उन्होंने उस दिन क्या किया।

1942 के 8 अगस्त को जब गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने यह उद्घोष किया था कि 'अंग्रेजो भारत छोड़ो', तो उसके दूसरे ही दिन महात्मा गांधी के साथ-साथ कांग्रेस कार्यसमिति के सभी सदस्य और सभी बड़े-बड़े नेता जेलों मे ठूंस दिये गये थे और कांग्रेस संस्था अवैध घोषित कर दी गई थी। 25 जून, 1975 की संध्या में रामलीला मैदान की जनसभा में जयप्रकाशजी ने भी एक ही नारा दिया था—'इंदिरा गांधी गद्दी छोड़ो' और उसके लिए उन्होंने कुछ कार्यक्रम दिये थे, जिसकी परिणति हुई 26 जून को जयप्रकाश समेत देश के सभी विरोधी दलों के नेताओं की गिरफ्तारी और उनके साथ-साथ कांग्रेस के भी कतिपय बड़े नेता जेलों में ठूंस दिये गये।

क्या इतना बड़ा निर्णय तत्कालीन गृहमंत्री ब्रह्मानन्द रेड्डी ने लिया था? क्या उनके राज्यमंत्री श्री ओम मेहता ने यह साहसिक कदम उठाया था? क्या श्रीमती गांधी ने अपने केबिनेट के सहयोगियों से इस संबंध में राय ली थी? क्या प्रधानमंत्री को छोड़कर पूरी भारत सरकार मे यह ताकत थी कि वह जयप्रकाश, मोरारजी देसाई, चंद्रशेखर, अटलबिहारी वाजपेयी, श्यामनन्दन मिश्र, रामधन, लालकृष्ण आडवाणी, मोहन धारिया, पीलू मोदी, राजनारायण, राजमाता सिंधिया, भैरों सिंह शेखावत, चरण सिंह सरीखे नेताओं को एक साथ कैद कर दे और अनिश्चित काल के लिए उन्हें काल-कोठरियों में बन्द कर दे। श्रीमती गांधी नहीं चाहती तो क्या यह कुछ भी सभव था—आपातकाल, सेंसरशिप, गिरफ्तारी और लोकतंत्र की हत्या।

12 जून, 1975 को जब इलाहाबाद हाई कोर्ट का फैसला आया तो सम्भव है कि इन्दिराजी ने त्यागपत्र देने की बात सोची हो। हालांकि एक भी जगह किसी बयान में या अखबार में या आकाशवाणी से यह बात पढ़ने-सुनने को न मिली कि प्रधानमन्त्री त्यागपत्र देने जा रही हैं। बार-बार यही ब्राडकास्ट होता रहा कि इन्दिरा गांधी अब भी प्रधानमन्त्री बनी हुई हैं। यह

दूसरी बात है कि हमारे तमाम गुलामदियों और चाटुकारों द्वारा यह प्रस्ताव पारित किया जाता रहा और नारे भी लगते रहे कि आपको त्यागपत्र नहीं देना है।

अब सोचता हूं तो हंसी आती है—भला त्यागपत्र दे कौन रहा था ?

इन्दिराजी में यदि थोड़ी भी सूझ-बूझ, पद की गरिमा और त्याग की भावना होती तो 25 जून 1975 को 10 बजकर 20 मिनट पर इलाहाबाद हाई कोर्ट का फैसला आया था और वे 10 बजकर 30 मिनट पर राष्ट्रपति के सामने अपना त्यागपत्र प्रेषित कर देतीं तो इतिहास में वह सदा के लिए अमर हो जाती। विदेशों की बात हम छोड़ दें, हमारे देश में ही कई मौकों पर यह त्यागवृत्ति दिखलाई गई है। स्व० लालबहादुर शास्त्री ने एक रेल दुर्घटना के बाद इस्तीफा दे दिया था। डा० सम्पूर्णानन्द ने मतदा के चुनावों में हार जाने पर मुख्यमन्त्री का पद छोड़ दिया था। श्री जान मथाई ने बजट की गोपनीयता भंग होने पर वित्तमन्त्री पद पर बने रहना अनैतिक समझा था। श्री नीलम संजीव रेड्डी बसों के मामले में आंध्र प्रदेश हाई कोर्ट के फैसले के बाद तुरन्त हट गये थे। स्वयं श्रीमती इन्दिरा गांधी ने अपने मन्त्रिमण्डल के एक सदस्य डा० चेन्ना रेड्डी की चुनाव याचिका खारिज होने पर उन्हें अविलम्ब कार्यमुक्त कर दिया था। एक हवाई दुर्घटना के कारण डा० कर्ण सिंह ने भी अपना त्यागपत्र प्रेषित किया था। तब फिर इन्दिरा गांधी को स्वयं किस नैतिकता ने पद पर बने रहने को बाध्य किया ? रह-रह कर यह प्रश्न मेरे मन में किसी ज्वार-भाटे के समान उठता रहता है।

मरहूम राष्ट्रपति श्री फखरुद्दीन अली अहमद का नाम मैं घसीटना नहीं चाहता। लेकिन यह जरूर कहना चाहता हूं कि संवैधानिक अधिकार होते हुए भी क्या उनके हाथों में यह ताकत थी कि वे आपातकाल की घोषणा पर हस्ताक्षर कर देते ? संविधान कहता है कि राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल की सिफारिश के अनुसार कार्य करेगा। 'आपातस्थिति की घोषणा की जाये'—क्या श्रीमती गांधी ने अपने मन्त्रिमण्डल में इस सम्बन्ध में कोई राय ली थी ? क्या यही एक जुर्म किसी भी लोकतन्त्रीय देश के प्रधानमन्त्री के लिए काफी नहीं है कि वह इतना बड़ा निर्णय मन्त्रिमण्डल की उपेक्षा करके लें ?

क्या ये सारे कदम श्रीमती इन्दिरा गांधी ने देश के हित में उठाये थे या अपने हित में ? कहा जाता है कि देश में अराजकता की स्थिति आ जाती। क्या वह अराजकता आपातस्थिति की तुलना से बढ़कर होती ? यह सही है कि आपातकाल के दौरान उत्पादन बढ़ा, अनुशासन आया, औद्योगिक शान्ति

हुई, शिक्षण संस्थाओं में ठीक समय पर परीक्षाएं ली गईं, अखबारों में कल्पित समाचार न छपे, विरोधी सभाएं न हुईं, जलूसों और पोस्टरों का दौर बन्द हुआ, विधि-व्यवस्था में चुस्ती आई, बीस-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम लागू किये गये, रेलें ठीक समय पर चली, आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में कमी हुई, कार्यालयों-दफ्तरों में वक्त पर हाजिरी बनी, जनता के हित में अनेक कानून बने और संविधान को संशोधन किया गया—लेकिन क्या इन सभी कदमों को जनता ने पसन्द किया ?

जनतन्त्र का जब उद्घोष हुआ, आपातकाल के दौरान जो ज्यादतियां हुई थी वे जब प्रकाश में आईं, संजय गांधी और रुख्साना सुल्ताना के अनेक किस्से सामने आये और जब लोकतन्त्र और तानाशाही का नारा दिया गया—तब जनता ने अपना फैसला भी सुना दिया। सारी बातें, प्रगति की सारी तस्वीरें, मुद्रा-स्फीति के सारे आंकड़े और 20 और 5 पच्चीस सूत्रीय कार्यक्रमों का कितना भी उद्घोष किया गया, जनता ने उसकी ओर मुड़कर भी नहीं देखा। 'डेमोक्रेसी वर्सेज डिक्टेटरशिप' का नारा शहरों से गांवों में, गांवों से गलियों में, गलियों से घरों में और उसके बाद आदमी के दिल-दिमाग में प्रवेश कर गया और नतीजा हुआ उत्तर भारत में लोकसभा चुनाव के दिनों में जहां-कहीं भी दीवारों पर इन्दिराजी की तस्वीर वाले पोस्टर लगे—'अधिकार आपके हाथ', यह देखा गया कि दूसरे दिन या तो वे पोस्टर फटे मिलते या इन्दिराजी के चित्र से नाक, कान, मुंह या आंखें नुची हुई दिखाई देतीं। दूसरी ओर सुदूर देहातों में भी दीवारों पर 'लोकनायक जिंदाबाद' और 'जनता पार्टी को वोट दो,' यह वाक्य लिखे हुए दिखाई देते थे। भविष्य हमारे सामने था, हम देखकर भी न देख रहे थे, यह हमारी गलती थी।

मैं दूसरी जगहों पर लिख चुका हूं कि जब इलाहाबाद हाई कोर्ट का फैसला आया तो वह दिन और दिनों की अपेक्षा कुछ और ही था। दोपहर को मैं श्री जगजीवनरामजी से मिलने गया था। मुझे जहां तक याद है मेरे साथ श्री कृष्णकान्त थे या श्रीमती सुमित्रा कुलकर्णी थी। हम लोगों ने जगजीवन बाबू से हर दृष्टिकोण पर विस्तार से बातें की थी। अब आगे क्या करना चाहिये, क्या हो रहा है तथा यह भी कि ऐसे गाढ़े समय में आपको आगे बढ़कर मार्ग-दर्शन करना चाहिये। मुझे अच्छी तरह याद है जगजीवन बाबू ने जो बातें कही थीं उसका सार यह था कि वे बड़ी गम्भीरता से सारी स्थिति का अवलोकन कर रहे हैं और अगर श्रीमती इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री पद से हटती हैं तो उसके बाद प्रधानमंत्री बनने के एक मात्र हकदार वे ही है। उनकी

यह भी राय थी कि इन्दिरा गांधी यदि त्यागपत्र दें तो कांग्रेस संसदीय दल को अपने नेता चुनने का अधिकार होना चाहिये। उनके अन्दर एक ध्वनि यह भी थी कि कई खेमों में यह आवाज आनी चाहिये कि जगजीवन बाबू ही प्रधानमंत्री बनें, लेकिन अफसोस की बात यह थी कि स्वयं वे आगे बढ़कर मोर्चा लेने के लिए तैयार नहीं थे। उन्हें अपने वर्तमान का खतरा नजर आता था, साहस की कमी थी और यह भी भावना रही होगी कि कहीं दूसरा व्यक्ति न हो जाये, इससे ज्यादा अच्छा है कि इन्दिरा गांधी ही प्रधानमंत्री बनी रहें। हालांकि बार-बार वे यह भी कहते थे कि इलाहाबाद हाई कोर्ट के फैसले के बाद इन्दिरा गांधी का प्रधानमंत्री पद पर बने रहना बिल्कुल अनैतिक है, लेकिन शाम को 5, राजेन्द्रप्रसाद मार्ग पर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के कार्यालय में कांग्रेस संसदीय दल की जब बैठक हुई तो इन्दिराजी के प्रधानमंत्री बने रहने का प्रस्ताव जगजीवन बाबू ने ही पेश किया।

12 की रात में लगभग 9.00 बजे जब मैं तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष श्री देवकान्त बरुआ के घर पर पहुंचा, वहां काफी रौनक और भीड़ थी। कांग्रेस दल के महत्वपूर्ण व्यक्ति आ-जा रहे थे और बरुआजी अपने मनमौजू स्वभाव के अनुसार एक से अनेक कथा-कहानी के साथ हंस-बोल रहे थे। एकान्त पाकर मैंने उनसे धीरे से पूछा—अब आगे क्या होना चाहिये ?

पार्टी में यह प्रस्ताव आ जाये कि इन्दिराजी यदि प्रधानमंत्री नहीं रहती है तो अपने उत्तराधिकारी को वे स्वयं चुन दें—बहुत धीमी और सधी आवाज में बरुआजी ने मुझ से कहा। वे जानते थे कि मैं दल के उन सदस्यों में से हूं जो जागरूकतापूर्वक उन घटनाओं पर नजर रख रहा है।

उन दिनों यह भी चर्चा सामान्य रूप से चल रही थी कि इन्दिराजी यदि प्रधानमंत्री पद से हटती हैं तो अपने उत्तराधिकारी के रूप में सर्वश्री सिद्धार्थ-शंकर राय, देवकान्त बरुआ, अथवा सरदार स्वर्ण सिंह को वे प्रधानमंत्री बनायेंगी। जगजीवन बाबू का नाम किसी प्रकार भी प्रधानमंत्री अथवा कांग्रेस अध्यक्ष द्वारा न आ रहा था। यह भी सच्चाई है कि श्री चव्हाण और जगजीवन बाबू के ऊपर पैनी दृष्टि रखी जा रही थी और इसकी निगरानी जो लोग कर रहे थे उनमें निश्चित रूप से संजय गांधी, धवन, ओम मेहता और बंसीलाल प्रमुख थे। ये चारों नाम ऐसे हैं जो प्रायः 1 नम्बर सफदरजंग रोड और 1 नम्बर अकबर रोड के इर्द-गिर्द हर समय देखे जा सकते थे—सुबह हो या शाम, रात हो या दिन। बाद में श्री विद्याचरण शुक्ल भी इसी मेमें में तत्परतापूर्वक लग गये।

व्यक्ति चाहे कितना ही महान क्यों न हो, बड़े से बड़े पद पर वह क्यो न बैठा हो, लेकिन देश उससे बड़ा होता है। जहां कही भी इस बात की कोशिश की गई कि व्यक्ति राष्ट्र से बड़ा है वहा उस व्यक्ति को मुह की खानी पड़ी। मेरी समझ में उन दिनों अथवा आपात्काल की घोषणा के बाद जिस तरह से प्रचार के सभी माध्यमों को एक व्यक्ति के साथ केन्द्रित कर दिया गया और टी० वी०, रेडियो, सूचना एव प्रसारण मंत्रालय, सेंसरशिप के बाद अखबार एक या दो व्यक्तियों के ही जय-घोष में जिस प्रकार सिमट गये उससे लाभ की अपेक्षा हानि हुई। उन प्रचारों में यह दिखलाने की चेष्टा की गई कि इन्दिरा गांधी देश से या कांग्रेस संस्था से भी बढ़कर हैं। राष्ट्र की चेतना को इससे धक्का लगा, सस्था का गौरवमय इतिहास इससे कलंकित हुआ और जितना ही दुरुपयोग इन साधनों का व्यक्तिगत लाभ के लिए किया गया, बुद्धिजीवियों के मन-मस्तिष्क पर इसका प्रभाव उल्टा पड़ा।

उन दिनों के समाचार-पत्रों को अगर हम उठाकर देखें तो मुख्य रूप से चार प्रकार के समाचार दिखाई देते थे—इन्दिराजी का, श्री सजय गाधी का, आनन्द मार्ग के श्री सरकार का और श्री नागमणि का।

ससद का अधिवेशन जब चलता रहता था तब भी उसकी कार्यवाहियों का बहुत कम जिक्र समाचार-पत्रों में रहता था। श्री फिरोज गांधी ने वहां की कार्यवाहियों के प्रकाशन सम्बन्धी जो व्यवस्थाएं कायम करवाई थी, उसे समाप्त कर दिया गया था।

यह भी कितना बड़ा इतिहास का उपहासमय अध्याय कहा जायेगा कि जिस ससदीय कार्यवाहियों के प्रकाशन की स्वतन्त्रता का अधिष्ठापन श्री फिरोज गांधी ने संसद द्वारा कराया था उन्हे उन्ही की पत्नी श्रीमती इन्दिरा गांधी ने प्रधानमन्त्री के रूप में समाप्त करने का गौरवपूर्ण तिलक अपने मस्तक पर लगाया। और अन्य थे हम सब, संसद सदस्य के रूप में अपने गलों में फांसी का फंदा खुद बांध रहे थे। ससद सदस्य को सब से बडा अधिकार था तो यही कि वह अपनी बात सदन के अन्दर रख सकता था, बाहर उसका प्रकाशन हो सकता था और जनता के हित में कही गई बातें जनता तक पहुंच सकती थी, उसका भी गला घोंट दिया गया।

ये स्थितियां थी जिन्होंने आगे की परिस्थितियों को निर्मित किया। घाव के अन्दर जैसे मवाद टीसता रहता है और अन्दर ही अन्दर शरीर को गलाता रहता है, उसी भांति सत्ता और संस्था दोनों अन्दर ही अन्दर टीस रहे थे लेकिन कोई ऐसा आदमी सामने नही आ रहा था जो आगे बढ़कर इसका

आपरेशन करता। भले इसमें कुछ दर्द होता, लेकिन रोग तो ठीक हो जाता।

मैं यहा यह कहे बिना नही रह सकता कि हमारे जैसे राजनीतिक या संसद सदस्य, जो पहली बार ही संसद का मुंह देख रहे थे और इन्दिराजी की आंधी में 1971 में चुनकर आये थे—वे कुछ सहम रहे थे, कुछ नासमझी में पड़े हुए थे, कुछ एम० पी० गिरी के लोभ में जकड़े हुए थे, कुछ खुशामद की चादर ओढ़े हुए थे, भूतकाल का उन्हें ज्ञान न था और भविष्य में क्या होने वाला है, इसकी पहचान भी नहीं थी—अतः हमारी अक्ल को पाला मार गया था, लेकिन वे सब क्यों चुप थे जो 20-25-30 साल से लगातार संसद सदस्य रहते आये थे, वर्षों से जो मन्त्रिमण्डल के माननीय सदस्य थे, जिनकी बुद्धि प्रखर थी, जिन्होंने गाधीजी की प्रेरणा से राजनीति को वरण किया था, सरदार पटेल, पं० जवाहर लाल नेहरू, डा० राजेन्द्रप्रसाद, मौलाना आजाद, सुभाषचन्द्र बोस और लाल बहादुर शास्त्री के साथ-साथ आजादी की लड़ाई या देश-निर्माण में जिन्होंने काम किया था, जिनमें से आज कई मुखर बने हुए हैं—वे क्यों चुप थे? क्या इतिहास कभी भी ऐसे लोगों को क्षमा कर सकेगा जिन्होंने पद के मोह में अपनी नैतिकता और प्रतिष्ठा को ताक पर रख दिया था।

कांग्रेस संसदीय दल की कार्यकारिणी में लोकसभा का कार्यकाल 5 साल से 9 साल बढ़ाने का प्रस्ताव आया। पहले से ही प्रचारित किया गया कि प्रधानमंत्री यही चाहती हैं। श्री रघुरमैया एवं श्री ओम मेहता सरीखे दल के व्यवस्थापकों ने भूमिका-भाग में बताया कि देश की गरीब जनता के ऊपर हर 5 साल के बाद चुनाव के खर्च का बोझ लादना अन्याय है—अतः कार्यकाल बढ़ाना चाहिए, कम से कम 7 साल।

कश्मीर के सदस्य श्री आगा ने तो आगे बढ़कर यह भी कहा कि 10 साल से कम का 'टर्म' नहीं होना चाहिए, कारण साल-दो-साल तो मेम्बरों को समझने-बूझने में ही लग जाता है और जब वे संसदीय-कार्य समझ लेते हैं तब चुनाव की तलवार सिर पर लटक जाती है, उन्हें भाग कर क्षेत्र में ही दौड़ना पड़ता है।

श्री आर० एस० पांडेय तो शायद ही किसी बैठक में बिना बोले रह पाये हों; वह भी हवा का रुख देखकर। अतः कुछ बम्बइया अदा के साथ बोले—10 साल बहुत ज्यादा हो जाता है, 7 साल ठीक है।

उसके बाद एक-एक कर चार-पांच सदस्यों ने कार्यकाल बढ़ाने के प्रस्ताव का समर्थन किया। चार-पांच सदस्यों के बाद मैं पहला सदस्य था, जिसने यह

कहा कि 5 साल से अधिक कार्यकाल बढ़ाना सरासर अन्याय होगा। दुनियां के शायद ही किसी जनतन्त्रीय देश मे 5 साल से अधिक कार्यकाल हो। मैंने अमेरिका, इंगलैण्ड, फ्रांस और स्वीटजरलैण्ड का उदाहरण दिया।

इसके साथ ही मैंने यह भी कहा—चुनाव की यदि चिन्ता न हो तो कोई भी प्रतिनिधि शायद ही अपने क्षेत्र में जाये या जन-सेवा करे। दूसरी बात यह है कि इस बन्द कमरे में हम जो भी फैसला ले लें, बाहर जनता हमें हिकारत की नजर से देख रही है कि ये एम० पी० पेंशन तय कर रहे हैं, अपना कार्य-काल बढ़ा रहे है और अपनी ही सुख-सुविधा में लगे हैं।

कांग्रेस-दल में तेज-तर्रार एवं साफगोई से बोलने वाले सदस्यों की कमी नही रही है। मैंने जब कार्यकाल बढाने का विरोध किया तो मुझे खुशी है कि सर्वश्री मूलचन्द डागा, दिनेश गोस्वामी आदि सदस्यों ने मेरा साथ दिया। दूसरी ओर ऐसे सदस्य जो बिल्कुल लकीर के फकीर थे, इन्दिराजी का मुंह देखते रहे कि वह क्या बोलती हैं।

इतनी बात मैं निष्पक्षता के साथ कहूंगा कि इन्दिराजी में इतना धीरज जरूर रहता था कि वह सदस्यों की बात सुनती रही है और उसके आधार पर कई बार उन्होंने अपने निर्णय बदले भी हैं।

कार्यकारिणी में जब निश्चित-तौर पर कार्यकाल बढाने और न बढ़ाने के सम्बन्ध मे दो मत हो गये और लगभग दोनों ओर बराबर-बराबर सदस्य हो गये तब इन्दिराजी ने बीच का रास्ता अपनाने पर जोर दिया—क्यों नहीं छः साल कर दिया जाये, न पांच साल न सात साल। बीच का रास्ता तो यही हो सकता है।

अधिकांश सदस्य उनकी इस बात पर 'हां में हां' कर उठे। लेकिन मुझे संतोष नहीं हुआ, मेरा दृढ़ मत था कि लोकसभा का कार्यकाल नही बढ़ना चाहिए। अतः बैठक के बाद जब प्रधानमन्त्री अपने कार्यालय में जाने लगी तब मैं उनके साथ हो गया और मैंने कहा—आप ने छः साल कह दिया, इसलिए छः साल ही सभी कह उठे। मेरा ख्याल है कि 5 साल से किसी प्रकार कार्यकाल का बढ़ना ठीक नही होगा, लोग क्या सोचेंगे तथा विरोधी दल और समाचार-पत्र तो इसकी आलोचना कर ही रहे हैं।

मै इसमे कहां पड़ती हूं। जो सदस्यगण चाहे, करें—उन्होंने अपने कमरे में प्रवेश करते-करते कुछ झल्लाते हुए ये बातें कही।

मैं विस्तार से इस सम्बन्ध में बातें करना चाहता था लेकिन दरवाजे पर खड़े व्यक्ति ने फौरन उनका दरवाजा बन्द कर दिया और वह अन्दर हो गई

ग्रौर मैं बाहर रह गया। अक्सर मैंने ये बातें देखी हैं कि सदस्यों के साथ इन दिनों यही होता रहा है।

विशेष तौर से 12 जून, 1975 एवं 26 जून, 1975 के बाद प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी से मिलना और खुलकर बातें करना कठिन और कभी-कभी बड़ा अपमानजनक-सा हो गया था। प्रधानमन्त्री की कोठी पर जिन लोगों को इण्टरव्यू के लिए बुलाया जाता था वे चाहे कितने भी बड़े आदमी हों, भूतपूर्व मंत्री हों, संसद सदस्य हों, विदेशी राजनयिक हों अथवा समाज के अन्य वरिष्ठ तबके के व्यक्ति हों—सब पर भयानक कड़ी नजर रखी जाती थी और जिस तरह से उन्हें गलियारे से होकर कई पुलिस-चैक-पोस्टों के आगे से गुजरना पड़ता था—यह अपमानजनक था। किसी भी स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए मिलने से ज्यादा अच्छा था, नहीं मिलना। और मैं इस बात का साक्षी हूं कि बहुत से कांग्रेस के स्वाभिमानी और पुराने सदस्य इस संकोच और अपमान के कारण प्रधानमन्त्री से नहीं मिलते थे। सेन्ट्रल हाल में बैठकर संसद सदस्य प्राय. यह चर्चा किया करते थे कि प्रधानमन्त्री की कोठी पर उन्हें किस प्रकार जलील होना पड़ा।

कारण क्या था ? मैं नहीं जानता, इन्दिराजी इन बातों को जानती थीं या नहीं और जानते हुए भी क्या वह उस सम्बन्ध में चुप्पी साधे हुए थीं। आजादी के बाद से ही संसद सदस्यों का, चाहे वे किसी भी दल के हों एक सम्मानित स्थान जनतन्त्र में माना गया। जब कभी भी वे किसी मंत्री अथवा किसी पदाधिकारी से मिलने के लिए गये तो यह परम्परा रही कि वह व्यक्ति खड़े होकर उनका स्वागत करे और जाते समय भी इसी प्रकार विदा करे। संसद के अन्दर और बाहर संसद सदस्यों को यही प्रतिष्ठा मिलती रही। निश्चित रूप से भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू का इन परम्पराओं को स्थापित करने में बहुत बड़ा हाथ रहा। लेकिन इन्दिराजी के दरबार की स्थिति ठीक इसके विपरीत होती जा रही थी। आम तौर पर श्री सेशन संसद सदस्यों अथवा वरिष्ठ व्यक्तियों को इंटरव्यू की व्यवस्था करते थे। अमूमन इमर्जेन्सी के बाद जब कोई संसद सदस्य प्रधानमंत्री के कार्यालय में लगे हुए स्वागत कक्ष या श्री सेशन के कमरे में इन्टरव्यू निर्धारित करने के लिए जाता था तो श्री सेशन जम्हाई लेते हुए कभी-कभी दोनों हाथों को पीछे फेंक कर कुर्सी के मत्थे से अपना सिर लगाकर उपेक्षा या 'नेवर माइण्ड' के तौर पर सदस्यों की ओर देखते थे और मुंह से पेटेण्ट वाक्य निकलता था—अभी दो-तीन दिन समय नहीं है।

दूसरी ओर संसद सदस्यगण चिरौरी में अपनी दन्त पंक्तियों को चमका देते थे—सेशन साहब, भला आपके रहते मैं निराश कैसे जा सकता हूं। कोई न कोई उपाय लगा दीजिये। प्रधानमंत्री से मिलना बहुत जरूरी है।

'अच्छा बैठो' या 'कल पूछ लेना' या 'अगले हफ्ते बाद' या 'खबर भेजूंगा' आदि वाक्य सेशन साहब की जबान पर थिरकता नजर आता था।

प्रधानमंत्री की कोठी पर पहले श्री यशपाल कपूर और बाद में श्री धवन का दार-दौरा चलता रहा। जिसे चाहते मिलवाते, जिसे न चाहते, वह सिर पटक कर रह जाता, इन्टरव्यू ग्राण्ट न होता। जिससे इन्दिराजी थोड़ा भी नाराज रहती थीं तो उसका पहला सिगनल यह था कि उसे इन्टरव्यू ही न मिले। मैंने एक बार कृष्णकान्तजी से पूछा—आप इतनी सारी बातें बाहर किया करते हैं, क्यों नहीं ये बातें आप इन्दिराजी से जाकर करते।

क्या बात करते हो, तुम लोगों की तरह मैं भी वहां लाइन लगाने जाऊं। सेशन, धवन या यशपाल कपूर की खुशामद मुझ से नहीं होगी। जब भी मैं समय मांगता हूं या तो यह खबर मिलती है कि दो-चार दिन बाद पूछ लीजिये या यह कि खबर भेज दूंगा और खबर कभी नहीं आती है, कृष्णकान्तजी बोले।

इसी प्रकार जिन मुख्यमंत्रियों से इन्दिराजी नाराज होती थीं उन्हें पांच-पांच सात-सात दिनों तक उनसे मिलने के लिए दिल्ली में बैठना पड़ता था। कहा जाता है कि एक बार श्री हेमवतीनन्दन बहुगुणा, मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश को आठ दिनों तक लगातार कोशिश करने के बाद भी दर्शन-लाभ न मिल सका। यह भी बात सुनने में आई थी कि श्रीमती नन्दिनी सत्पथी कई बार भुवनेश्वर से दिल्ली आकर निराश वापस लौट गईं।

साक्षात्कार की बात जब चली है तो दो-तीन उदाहरण यहां पेश करना उचित समझता हूं—आपात्काल की घोषणा के आठ-दस दिन के अन्दर एक संसद-सदस्या अपने निर्धारित समय पर अपनी आठ-दस वर्षों की बच्ची के साथ प्रधानमंत्री से मिलने गयी। दस-पन्द्रह मिनटों तक तो पहले सिक्यूरिटी के लोगों ने तरह-तरह का सवाल किया। बहुत मुश्किल से खन्दकों और चेक पोस्टों को पार कर अपनी बच्ची के साथ जब वह अन्दर गई तो वहां पन्द्रह-बीस मिनटों बाद प्रधानमंत्री उपेक्षा के साथ मिली। बच्ची ने जब चाहा कि प्रधानमंत्री का हस्ताक्षर ले तो फौरन एक-दो पदाधिकारियों ने इसके लिए उसे रोका। बच्ची जब घर आई तो उसने अपनी अनुभूतियों से इस सम्बन्ध में एक कविता लिखी, जिसमे सुनने का मुझे मौका मिला। उस कविता में

साफ तौर से यह लिखा हुआ था कि प्रधानमंत्री से मिलना इतना गन्दा काम है कि मैं तो अब कभी भी उनसे नहीं मिल सकती हूं। वहां के दमघोट्ट वातावरण का जिक्र था और साथ ही यह भी लिखा था कि पुलिस वाले मुझ को इस तरह देख रहे थे जैसे वे पकड़ कर जेल में बन्द कर देंगे। उस बच्ची ने अपनी बाल सुलभ पंक्तियों में इसका भी वर्णन किया था कि हमारी प्रधानमंत्री कैसी हैं जो एक बच्ची को हस्ताक्षर भी नहीं दे सकती ?

यह उन स्थितियों का वर्णन है जिनके बीच से आपातकाल का दौर गुजर रहा था, स्थितियां बिगड़ती जा रही थीं, आस्थाएं टूट रही थीं, जनता और प्रधानमंत्री के बीच की दूरी बढ़ती जा रही थी और हर किसी के सम्मान को ठेस पहुँच रही थी और इसकी प्रतिक्रियायें निश्चित रूप से भविष्य के लिये बद-से-बदतर होती चली जा रही थी।

बंसीलालजी को हराने का श्रेय प्राप्त करने वाली कांग्रेस की ही श्रीमती चन्द्रावती प्रायः मुझ से मिलने आया करती थीं। जब उन्हें बंसीलाल ने काफी अपमानित करके मंत्रिमण्डल से निकाला तो वे दिल्ली पहुचीं और मुझ से मिलने आईं। उनकी बातें सुनकर किसी का भी कलेजा पिघल सकता था। मैंने उनसे कहा—बहनजी आप क्यों नहीं इन्दिराजी से मिलकर ये सारी बातें कहती है ?

—वहां तो बंसीलाल की हुकूमत चलती है। हमारे जैसे लोगों को इन्टरव्यू ही नहीं मिलता और जब-जब मैंने इन्दिराजी से बंसीलाल के जुल्म के बारे में सच्ची बातें कही हैं, उन्होंने यही जवाब दिया है—मैं इसमें क्या कर सकती हूं ?

हरियाणा में 'रिवासा काण्ड' की जो घटना हुई, उसके बाद वहां के बहुत से लोग मुझ से आकर मिले और जिस ढंग से बिलखते हुए उन्होंने बंसीलाल की बर्बरता की कहानी कही उससे रौंगटे ही खड़े नहीं होते थे बल्कि पत्थर का कलेजा भी पिघल उठता था। मैंने उन भाईयों से कहा कि आप ये सारी बातें प्रधानमंत्री को जरूर जाकर कह दें। उनमें से एक भाई ने बताया कि इन्दिराजी की कोठी पर जाकर हम सबों ने उन्हें लिखकर दिया है और रोते हुए अपनी बातें कही हैं लेकिन बंसीलाल के खिलाफ कुछ भी सुनने या करने के लिए वे तैयार नहीं हैं। चलते-चलते उनमें से एक बुजुर्ग भाई ने मुझे बांहों में भर लिया और आंखों में आंसू लाकर कहा—ठाकुर साहब, अब इन बातों का फैसला भगवान के सिवा और कहीं नहीं मिलेगा। हम जानते हैं, आप या आपकी पार्टी या इन्दिरा गांधी बंसीलाल के खिलाफ कुछ नहीं कर सकते।

इसी भांति बिहार के सम्बन्ध में जब कभी भी ऐसा प्रतिनिधिमण्डल जो तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री जगन्नाथ मिश्र के खिलाफ प्रधानमन्त्री से मिलने आता था तो श्री धवन द्वारा यह प्रयास किया जाता था कि वह मिल ही न पाये और यदि मिल भी लेता था तो उसका कुछ भी असर इन्दिराजी के ऊपर नहीं होता था। निराशा इस हद तक बढ़ती जा रही थी कि लोग यह सोचते थे कि इन्दिराजी से मिलकर क्या होगा, वह तो कुछ कर नही सकेंगी और जब किसी नेता या सत्ता के प्रमुख के प्रति लोगों के मन में यह भावना घर कर जाये कि वह इंसाफ नही दे सकता है तो क्षोभ होना आवश्यक और लाजमी है। ये सारी ऐसी परिस्थितियां थीं जिनके कारण श्रीमती इन्दिरा गांधी के समान एक सशक्त नेता संकुचित दायरे में फंसती चली जा रही थी।

अक्सर एक सवाल यह भी पैदा होता है कि श्रीमती इन्दिरा गांधी ने आपात्काल की योजना कब बनाई? अधिकतर लोग यह सोचते हैं कि 25 जून 1975 की शाम को जे० पी० तथा अन्य विरोधी दलों के नेताओं ने जब रामलीला मैदान में जनसभा को संबोधित किया और जब सेना और पुलिस को गलत आदेश न मानने की सलाह जे० पी० ने दी, उसके बाद 'प्रधानमन्त्री ने यह फैसला लिया। यह सरासर गलत कल्पना होगी। 12 जून को जब इलाहाबाद हाई कोर्ट का फैसला आया, उसके बाद ही श्रीमती इन्दिरा गांधी ने यह फैसला कर लिया होगा कि आगे क्या करना चाहिए। हालांकि मैं यह मानता हूं कि उनके दिल में जनतन्त्र का मोह जरूर रहा होगा, लेकिन 12 जून को फैसले के बाद त्यागपत्र नही देने की भूल के बाद जो भी उन्होंने कदम उठाये, सभी उन भूलों पर सुनहरा महल खड़ा करने के लिए।

विरोधी दलों के नेताओं को अथवा दूसरे लोगों को भी इसकी भनक जरूर मिली होगी, कारण 23 जून को आपात्कालीन घोषणा के दो ही दिनों पहले जयप्रकाशजी और चन्द्रशेखरजी डिलक्स ट्रेन से दिल्ली पहुंचे, तो मैं भी उसी गाड़ी से दिल्ली आ रहा था। रास्ते में मैंने चन्द्रशेखरजी को कहा कि आप प्रधानमन्त्री से मिलकर क्यों नही कोई रास्ता निकलवाते हैं। चन्द्रशेखरजी ने इस बात पर मुझे साफ तौर से कहा था कि श्रीमती इन्दिरा गांधी के पाव डिक्टेटरशिप की ओर बढ़ गये हैं और पीछे नही लौट सकते और यह भी बताया था कि किसी भी दिन 'मैडम' उन्हें जेल में भिजवा सकती हैं। मैंने इसका विरोध किया था, लेकिन दो दिनों बाद ही मेरे सामने इतिहास का काला अध्याय था जिसकी परिणति जाहिर थी।

आखिर क्यों ऐसा किया इन्दिरा गांधी ने?

जवाबों की कमी नहीं है, लेकिन जवाहरलाल और इन्दिरा गांधी में यही सब से बड़ा फर्क दिखाई देता है। और वह फर्क है जो स्वयं श्रीमती इन्दिरा गांधी ने दो-तीन वर्षों पहले इंटक अध्यक्ष श्री विजय भगवती को बातचीत के दौरान कहा था—मेरे पिता सन्त थे, लेकिन मैं सन्त नहीं हूं।

12 जून 1975 से लेकर 26 जून 1975 तक की स्थितियां ऐसी थी कि उस में श्रीमती गांधी चाहे कुछ भी करतीं, लेकिन उन्हें हटना ही पड़ता। उसके लिए आवश्यक तौर पर दल के कुछ लोगों को सीधे तौर पर उन्हें जाकर कहना होता। लेकिन इस कठिन परिस्थिति को यदि मुख्य तौर पर किन्हीं दो-चार व्यक्तियों ने संभाला तो उनमें सर्वश्री देवकान्त बरुआ, कृष्णचन्द्र पन्त और चन्द्रजीत यादव का नाम मुख्य तौर से आगे आता है। ये तीनों व्यक्ति ऐसे हैं, जिन्होंने संसद सदस्यों से बातचीत करने में, वातावरण तैयार करने में एड़ी-चोटी का पसीना एक किया। इन तीनों व्यक्तियों का यह मानना था कि इन्दिराजी नहीं रहेंगी तो देश और कांग्रेस पार्टी टूट जायेगी और इसलिए ये लोग काफी सक्रिय थे। हालांकि 26 जून को प्रातः 6 बजे जब 1 नं० अकबर रोड में कैबनेट की विशेष बैठक बुलाई गई तो उसमें भाग लेने के बाद डा० कर्ण सिंह और श्री के० सी० पन्त एक साथ बाहर निकले और बहुत देर तक दिल्ली की सड़कों पर मटरगश्ती करते रहे। न तो श्री पन्त अपने सामने के निवास स्थान तीन मूर्ति पर गये और न डा० कर्ण सिंह अपने न्याय मार्ग स्थित मकान पर लौटे, दोनों पालम के रास्ते निकल गये और दोनों में बहुत देर तक बातें होती रही कि क्या इस देश से जनतन्त्र समाप्त हो गया? और दोनों ने इस पर भी गम्भीरता से विचार-विमर्श किया कि यही वह घड़ी है, जब वे मन्त्रिमण्डल से त्यागपत्र देकर अलग हो सकते हैं, लेकिन विचार कार्य में परिणत नहीं हो सका।

कैबिनेट की बैठक इतने आकस्मिक रूप से बुलाई गई थी कि किसी को पता भी नहीं चला कि क्यों इतने सवेरे यह सब किया जा रहा है। मंत्रियों की नींद यों भी जरा देर से टूटती है, अतः अधिकतर लोग तो उमीदों से वहां गये थे। उन्हें क्या पता था कि एक ओर जब पूरब छोर से सूरज उग रहा है, तो दूसरी ओर भारतीय जनतत्र और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का सूरज डूब रहा है। कई लोगों के ड्राइवर भी नहीं आये थे, अतः डा० कर्ण सिंह जैसे मत्री भी टैक्सी पर चढ़कर आये और जल्दबाजी में तैयार होते-होते भी बीस मिनट देर से ही पहुंच सके।

मंत्रिमंडल की बैठक में क्या हुआ, किसने क्या कहा, किसके मुंह पर क्या

भाव था, किस प्रकार उन्हें यह सूचना दी गई—ये सारी बातें मन्त्रिमण्डल की गोपनीयता की रक्षा हेतु न कहना ही ठीक है। वैसे दुनिया की शायद ही कोई ऐसी बात हो, जो कालान्तर में बाहर न आ जाती है।

लेकिन बाहर आने पर किस ने क्या कहा, यह तो कहा ही जा सकता है। एक वरिष्ठ मंत्री जब घर पहुंचे तो उनसे किसी ने पूछा—इतने सवेरे किस लिए बैठक बुलाई गई थी ?

दाह संस्कार करने के लिए !—गुस्से में उन्होंने अपने परिवार के एक वरिष्ठ सदस्य को कहा।

एक दूसरे मंत्री से जब उनकी पत्नी ने पूछा कि बैठक से इतना जल्द कैसे आ गये, तो उन्होंने जवाब दिया—आ ही गया, यही बहुत समझो !

और मंत्रियों के चले जाने के बाद भी कई एक मंत्री तो 1 नं० अकबर रोड पर रुक गये, आगे की तैयारी पूरी करने के लिए। यह जानने के लिए कि कौन-कौन लोग अब तक गिरफ्तार किए जा चुके है, कौन बच गये हैं तथा किन्हे और अन्दर करना है। यह ठीक है कि कितने लोगों के अनुसार देश, जनतंत्र और कांग्रेस संस्था का सूरज उस दिन सवेरे-सवेरे ही अस्त हो रहा था, लेकिन यह भी सही है कि बहुत लोगों के जीवन का सूरज तो उसी दिन उगा था, जो मध्याह्न तक पहुँचा भी, लेकिन क्षितिज तक पहुंचने के पहले ही उल्कापात हो गया। हम उन्हें 'किचेन कैबिनेट' का सदस्य कहें या 'कोक्स' कहें 'फेमिली कैबिनेट' कहें, लेकिन यह भी सही है कि कैबिनेट की जिसकी नियुक्ति प्रधानमंत्री की सिफारिश पर राष्ट्रपति करते है और सयुक्त जवाबदेही होती है, उसकी वह आखिरी बैठक थी। उसके बाद देश मे जो कुछ भी हुआ, वह 'सुपर कैबिनेट' या 'सुपर प्राइम मिनिस्टर' की मर्जी से हुआ। जिसका कुछ भी उत्तर नहीं है और न तो कोई दलील है, इसलिए कि भारतीय जनता ने उसी आधार पर अपना फैसला दे दिया है। हम गड़े मुर्दे को जितना ही कम उखाड़ें, उतना ही अच्छा है।

. . . .

1974 के जाड़े की थरथराती रात। पुरानी दिल्ली रेलवे स्टेशन। दिल्ली हावड़ा एक्सप्रेस। एयरकंडीशन कूपे में अकेला यात्री मैं। गाड़ी छूटने ही वाली थी कि दरवाजा खुला और एक बेंत की टोकरी और एक अटैची के साथ अटेन्डेन्ट आगे-आगे और पीछे से एक सज्जन आ धमके। झटके से मन विषैला हो गया। कल्पना थी कि अकेले आराम से रात बीतेगी। जब तक जी में आयेगा पढ़ूंगा, लिखूगा, सोऊंगा और जब तक इच्छा होगी, सोया रहूंगा।

10 बजे रात से 6 बजे शाम तक का 20 घंटों का सफर अपने आप में बिताने की खुशी को ठेस लगी।

आगन्तुक सज्जन ने मेरी ओर तिरछी नजरों से देखा मानों मुआयना कर रहे हों और मैंने सामने किसी पत्रिका पर आखें गडाये हुए ही उनकी ओर चोरी से दृष्टि डाली—भला यह कौन दूध में मक्खी के समान आ गया।

ऐसी घड़िया भयानक बोझिल होती हैं, जब दो अनजान यात्री किसी ट्रेन के कूपे में भिड जायें, तो कुछ समय इसी विचार में चला जाता है कि बात की शुरुआत कैसे की जाये और बात को भी जाये या नहीं ? उन्होंने ही शुरूआत की—माफ करेंगे, आपको कष्ट दिया। कहाँ जा रहे हैं आप ?

जी, पटना तक !—औपचारिक सवालों का जवाब भी औपचारिक ही हुआ करता है।

आप कोई बिजनेस करते है या राजनीति में हैं ?—संभलने के पहले ही दूसरा प्रश्न उन्होने मेरे खादी के कपड़ों को देखते हुए दाग दिया।

अब बार-बार के झमेले से बचने के लिए मैंने एक बार ही जवाब दे देना उचित समझा। बोला—मेरा नाम शंकरदयाल सिंह है और मैं बिहार से लोकसभा का सदस्य हूं। यों एम० पी० को फर्स्ट क्लास का पास होता है, लेकिन मैं एक कमेटी का मेम्बर हूं जिसके चेयरमेन श्री कृष्णकान्त है, उन्हीं की कृपा से एयरकंडीशन का पास मिल गया है, इसीलिए इसमें जा रहा हूं।

अच्छा, तो आप ही है शंकरदयाल सिंह ?—सज्जन कुछ आश्वस्त या कुछ विस्मित से हुए। और मैं इधर पसीने-पसीने। क्या मैंने कुछ झूठ तो नहीं बोल दिया ? क्या मैं शंकरदयाल सिंह नहीं हूं क्या ? मैं स्वयं अपनी ओर इस प्रकार देखने लगा कि मैं 'मैं' ही हू या कोई दूसरा आदमी मेरी जगह पर आ गया है।

आपका शुभ नाम और आपका परिचय ?—अपनी झेंप मिटाने के लिए और 'बोल्डनेस' दिखाने के लिए मैंने भी उनके ऊपर चढ़ाई की।

मुझे लोग स्वामीजी कहते हैं।—वे बोले।

मैंने पहचानने की कोशिश की, ये सुब्रमण्यम स्वामी तो नहीं हैं और न तो चन्द्रा स्वामी, फिर हैं कौन ? मन ने फिर समझाया क्या लेना-देना है, इतना जानकर या सुन-समझकर। कोई भी हैं; तुम्हें क्या लेना-देना ; सो जाओ। बहुत पुरानी बात याद आई गाव की। ऐसे ही

समय के लिए कहा गया है—'किस-किस को याद करें, किस-किस को रोयें। आराम बड़ी चीज है, मुंह ढंक के सोयें।

सोने की तैयारी में ही था कि स्वामीजी ने स्थिर होते हुए अपनी पैनी दृष्टि मेरे ऊपर डाली—आप ही हैं शंकरदयाल सिंह, जो ललितनारायण मिश्र के पीछे पड़े हैं? भाई जो हो, तुम हो आदमी जीवट के। भला आज के समय में उस आदमी से टक्कर लेना आसान नहीं है, सो मैं जब-तब तुम्हारा ब्यान देखता हूं, उनके संबंध में। यह मामूली बात नहीं है। उस आदमी में तो यह ताकत है कि हर किसी को मुट्ठी में रखता है। प्रधानमंत्री की तो हिम्मत है ही नहीं कि उनसे उन्नीस-बीस करें। वह आदमी जानता है, राजनीति को कमर से बांधकर रखना।—स्वामीजी एक ही सांस में इतनी बातें कह गये और मेरी नींद न जाने कहां हवा हो गई।

महाराज, आप इतनी बातें कैसे जानते हैं? और मैं तो एक मामूली-सा आदमी हूं। मेरी कहां ताकत कि ललित बाबू से तकरार मोल लूं। जहां-तहां सह्य नहीं होता है, तो कुछ कह-सुन देता हूं। वह भी कोई व्यक्तिगत द्वेष मेरा उनसे नहीं है। जो भी कहता हूँ, अपनी समझ में इन्दिराजी के और पार्टी के भले के लिए।—मैंने कहा।

बात की शुरूआत के बाद कुछ औपचारिकताएं कम हुईं तब हम दोनों में अनौपचारिक बातें शुरू हुईं। उन पर मेरा कुछ विश्वास जमा और वे भी मुझ से मिलकर कुछ आश्वस्त से हुए। उन्होंने मुझ से पूछा—तुम धीरेन्द्र ब्रह्मचारी को जानते हो?

नाम सुना है, वैसे मुझे उनसे मिलने का कभी मौका नहीं मिला—मैंने कहा।

अच्छी बात है जो तुम नहीं मिले। रामायण में गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है, 'खलों से जितना दूर रहा जाये ठीक है।' यह जो धीरेन्द्र ब्रह्मचारी है न, सारी बुराईयों की जड़ यही है। मैं अपनी इन छोटी-छोटी आंखों से भविष्य को देख रहा हूं। इन्दिरा गांधी के समान तेजस्वी और दुनिया की एक बड़ी नेता धराशायी होती चली जा रही है। उसे लोगों ने अपने कब्जे में कर लिया है। यह अब हिल नहीं सकती है और काल-गति को कोई रोक नहीं सकता।—स्वामीजी ने बन्द आंखों को खोलते हुए मेरी आंखों में झांका जहां उन्हें प्रश्न ही प्रश्न दिखाई दिए।

मैं एक शब्द भी नहीं बोला, स्वामीजी ने आगे कहना शुरू किया—देखो, यह जो ललितनारायण मिश्र है, यह बड़ा ही धूर्त, काईयां और फरेबी किस्म

का आदमी है। दिल्ली में बहुत कम लोग इस बात को जानते हैं कि धीरेन्द्र ब्रह्मचारी ललितनारायण मिश्र का अपना सम्बन्धी है। नाम तो इसने अपना ब्रह्मचारी रखा है लेकिन है पक्का व्यभिचारी। योग और आसन के नाम पर इसको ललितनारायण मिश्र ने कई लोगों के पास पहुंचा दिया है। पण्डित-जी के जीवन काल में ही इसका प्रवेश प्रधानमंत्री गृह में हो गया था। ललित-नारायण मिश्र ने यह सोचा कि जवाहरलालजी को प्रभावित करने के लिए यह आवश्यक है कि उनकी बेटी को मुट्ठी में किया जाये। इस धीरेन्द्र ब्रह्मचारी के द्वारा ललितनारायण मिश्र ने इन्दिराजी को अपने कब्जे में कर लिया है और अब संजय गांधी को इसी ब्रह्मचारी द्वारा अपने कब्जे में करके इन्दिरा गांधी को बराबर के लिए अपने चंगुल में रखने की योजना बना रहा है। मैं कितनी बातें तुम्हें खोल कर कहूं। बहुत दुखद और अशोभनीय बातें हैं, लेकिन इतनी बात सच मानो कि धीरेन्द्र ब्रह्मचारी ने मां और बेटे दोनों को कब्जे में कर रखा है और अदृश्य रूप से इसके पीछे ललितनारायण मिश्र है।

स्वामीजी की बातों से मुझे जहां एक ओर विस्मय हो रहा था वहीं दूसरी ओर न जाने कितनी गुत्थियां बन रही थीं और गुत्थियों के बहुत सारे पट आप से आप खुल रहे थे। मैं यह मानने के लिए तैयार न था कि स्वामी-जी जो कह रहे हैं उसमें शत प्रतिशत सच्चाई है लेकिन इन दिनों धीरेन्द्र ब्रह्मचारी के सम्बन्ध में जितनी बातें आ रही हैं और जिस तरह के उनके प्रभावों की चर्चा प्रधानमंत्री एवं संजय गांधी के ऊपर बहुचर्चित है उससे साफ जाहिर होता है कि 1974 की जनवरी में स्वामीजी ने जो बातें मुझे कही थीं वह कपोल-कल्पित नहीं थीं।

—इन्दिरा गांधी के चारों ओर जाल बिछा दिया गया है। इसका संचालन एक ओर से ललितनारायण मिश्र कर रहे हैं और दूसरी ओर से धीरेन्द्र ब्रह्मचारी। उस चक्र-व्यूह से निकलने के लिए इन्दिरा गांधी छटपटा रही है लेकिन उसे कोई रास्ता नजर नहीं आ रहा है। मुझे कुछ महीनों पहले इन्दिरा गांधी ने मिलने के लिए अपनी रायबरेली यात्रा के अवसर पर वहां बुलाया था और रात में जब मेरी उनसे मुलाकात हुई तो वे मेरे सामने रोने लगीं। मैं कितनी ही बातें तुम्हें बताऊं। मैं इन्दिरा गांधी के भविष्य को देखता हूं तो दुःख होता है। स्वामीजी की कही हुई बातें अभी तक मेरे कानों में गूंज रही हैं।

स्वामी, संन्यासी, भविष्यवाणी, ज्योतिष—इन बातों के ऊपर मेरी कोई आस्था नहीं है। मैं कर्त्तव्य में और कर्म में विश्वास करता हूं लेकिन बहुत

सारी ऐसी बातें जो उस स्वामी ने मुझे कही थी और जिन्हें मैं लिख नहीं सकता, मेरे सामने आज किसी पारदर्शी शीशे के समान झलक जाती है। जब रात काफी हो गई थी तो मैं सो गया था। 4 बजे भोर के लगभग जब मेरी नींद टूटी तो मैंने नीचे की बर्थ पर झांक कर देखा, वे संन्यासी ध्यान मग्न आसन लगाये बैठे हुए थे। फिर मैं सो गया। इलाहाबाद कब आया, मुझे पता नहीं। मिर्जापुर में मेरी नींद टूटी, पाया कि स्वामीजी नहीं हैं और मैं उस कूपे में अकेला हूं। तब से वह स्वामी मुझे कहीं नहीं मिले। हालांकि मैंने उनकी ये बातें अपने दो-चार विश्वस्त लोगों को उन्हीं दिनों बता दी थी। जो लोग इस पर विश्वास करने के लिए तैयार न थे, आज वे उन बातों पर अविश्वास नहीं कर सकते।

बहुत से लोगों का यह मानना और कहना है कि श्रीमती इन्दिरा गांधी बहुत गम्भीरतापूर्वक दो बातों पर आपातकाल के समय और उसके बाद विचार कर रही थी। एक यह कि यदि स्थिति काबू से बाहर हो जाती है तो सैनिक शासन लागू करवाना है और किसी न किसी रूप में उसका प्रधान हो जाना है। दूसरी बात यह कि चुनावों में हार की सभावना अथवा चुनाव-फल के साथ ही साथ देश से बाहर चले जाना है। मेरे पास इन दोनों के सम्बन्ध में कोई प्रमाण नहीं है, अतः कहा नहीं जा सकता कि इसमें सच्चाई क्या है। वैसे मैं यह मानता-समझता हूं कि ये दोनों बातें आधारहीन हैं।

आपातकाल की घोषणा के सम्बन्ध में मैंने अपनी निश्चित धारणा जाहिर की है कि इन्दिराजी ने इसका निर्णय स्वयं लिया होगा और मुख्य रूप से इसका उद्देश्य रहा होगा प्रधानमन्त्री की कुर्सी को सुरक्षित रखना। संभव है कि उन्होंने अपने अत्यन्त विश्वस्त व्यक्तियों से सलाह-मश्विरा किया हो लेकिन इसके साथ ही जो भी उनका सलाह-मश्विरा का क्षेत्र होगा वह व्यक्तिगत अधिक होगा। कारण, यह बात तो अब स्पष्ट है कि मंत्रिमण्डल से भी इस सम्बन्ध में कोई सलाह उन्होंने न ली थी।

व्यक्तित्व की उदारता जब समाप्त होने लगती है और आदमी के पांव जब गलत कामों में फस जाते हैं तो संदेह और असुरक्षा—इन दो यायामों में वह पूरी तरह से घिर जाता है। लगता है जैसे जून, 1975 के बाद से इन्दिराजी भी इन्हीं दो यायामों में घिर गई थीं—संदेह और असुरक्षा। यह स्थिति ऐसी होती है जब आदमी का विश्वास अपने आप से भी उठने लगता है। और अपनी छाया से भी उसे भय होता है। यह ठीक है कि इन्दिरा गांधी ने अपने व्यक्तित्व की जो सुदृढ़ता आपातकाल के दौरान दिखलाई उससे पूरे देश में भय

का एक वातावरण पैदा हुआ लेकिन इसके साथ ही यह भी सही है कि स्वयं श्रीमती गांधी भय की उस चार-दीवारी के अन्दर सबसे ज्यादा कैद थी। प्रधानमंत्री की कोठी पर, उनके कार्यालय के आसपास, उनके दौरों के समय तथा किसी सार्वजनिक कार्यक्रम में भाग लेते समय पुलिस अधिकारियों एव सुरक्षा दल के लोगो का जो मेला लगता था उससे एक जगह जहां भय की सृष्टि होती थी वहां दूसरी ओर घृणा का संचार भी होता था। आपात्काल की घोषणा के बाद 15 अगस्त या 26 जनवरी या 2 अक्तूबर या ससद भवन या 1, सफदरजंग रोड या अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के कार्यालय—जहा कही भी प्रधानमत्री जाती थी, रहती थीं, वहां लगता था जैसे एक छोटी-मोटी मोर्चा-बन्दी ही हो गई है। उनके पास तक कोई साधारण व्यक्ति पहुंच नही पाता था। और अच्छे से-अच्छे लोगों को भी जाने में भय लगता था। एक ओर इन्दिराजी जनता से दूर होती जा रही थी और दूसरी ओर जनता इन्दिरा गांधी से दूर भागती चली जा रही थी।

इस सम्बन्ध में एक दिन इन्दिराजी ने स्वय मुझे बताया कि वे जब किसी जनसभा में भाग लेने जाती हैं तो बेरियर बांधकर लोगों को इतनी दूर बैठाया जाता है कि वे मंच के ऊपर से उन्हें ठीक से देख भी नही पाती हैं और न तो उनके चेहरे का मनोभाव पढ़ पाती हैं।

कौन है इसके लिए दोषी ? सुरक्षा अधिकारी, आपात्काल या प्रधामंत्री का अपना भय ? और भय का संचार होता क्यों है—ये सारे प्रश्न राजनीतिक ही नही हैं।

मेरा यह निश्चित रूप से मानना है कि बिगडती परिस्थितयों का सम्बन्ध केवल इलाहाबाद हाई कोर्ट के फैसले से नही है वरन् 1972 के अन्त और 1973 के प्रारम्भ से इसकी भूमिका बधनी शुरू हो गई थी। लोगों के बीच रोष, असंतोष, कीमतों मे वृद्धि, प्रशासन मे पक्षपात, राज्यो के मंत्रिमडलों में अधिकाश निकृष्ट व्यक्तियो का समावेश और नैतिक मूल्यो का अवमूल्यन कहा जा सकता है। 1972 में अधिकाश राज्यो के विधानसभाओ के चुनाव सम्पन्न हुए। बगला देश की मुक्ति का तात्कालिक लाभ कांग्रेस को मिला और इन्दिराजी की आंधी करीब-करीब वैसी ही बढी जिस तरह 1971 के लोकसभा चुनाव में। लेकिन उसके बाद मन्त्रिमडलो का जो गठन हुआ और मुख्यमन्त्रियों का जिस ढग से मनोयन हुआ, यह -स्तरीय टिकट का बहुत बड़ा नमूना था। मुख्य रूप से उन दिनों इन्दिराजी के सलाहकार पण्डित उमाशंकर दीक्षित, स्व० ललितनारायण मिश्र और श्री यशपाल कपूर थे। दीक्षितजी का अपना

कोई बहुत व्यापक दृष्टिकोण न था, अतः सीमित दायरे में वे करीब-करीब उन बातों का पालन करवाने की कोशिश करते थे जिन्हें इन्दिराजी चाहती थीं लेकिन दूसरी ओर स्व० श्री ललितनारायण मिश्र और श्री यशपाल कपूर के हथकण्डे विचित्र थे।

बिहार में मंत्रिमण्डल का निर्माण हो रहा था। रात में दिल्ली में यह तय हुआ कि श्रीमती रामदुलारी सिन्हा मुख्यमन्त्री होंगी। सुबह श्री गुलजारीलाल नन्दा पर्यवेक्षक के रूप में दिल्ली से पटना के लिए रवाना हुए। श्री ललितनारायण मिश्र भी उनके साथ थे। दिल्ली से पटना जाते-जाते भी स्वर्गीय ललितनारायण मिश्र ने तख्ता पलट दिया। रामदुलारीजी की जगह पर श्री केदार पाण्डेय आ टपके। ललित बाबू ने प्रधानमन्त्री से इसकी स्वीकृति ले ली। फिर मन्त्रिमण्डल का निर्माण हुआ। दिल्ली से जो सूची गई उसमें श्री हरिनाथ मिश्र का भी नाम था। राजभवन में शपथ-ग्रहण के लिए जो कुर्सी लगी उसमें हरिनाथ मिश्र जाकर बैठ गये। लेकिन श्री यशपाल कपूर द्वारा दिल्ली से उसी समय राज्यपाल को फोन किया कि हरिनाथ मिश्र की जगह ललित बाबू के छोटे भाई जगन्नाथ मिश्र को शपथ-ग्रहण करवाया जाये। भरी सभा में शपथ-ग्रहण हेतु बैठे हुए हरिनाथ मिश्र को उठवा दिया गया। इसी भांति बिहार में कांग्रेस विभाजन के बाद नई कांग्रेस के सबसे सशक्त नेता श्री रामलखन सिंह यादव थे, उन्हें मन्त्रिमण्डल से बराबर दूर रखा गया कि कहीं और न ताकतवर हो जायें।

श्री केदार पाण्डेय एक अच्छे और व्यावहारिक मुख्यमन्त्री साबित हुए, लेकिन उनकी सबसे बड़ी गलती यह थी कि स्व० ललित बाबू के इशारे पर वे काम न कर पा रहे थे। नतीजा यह हुआ कि दो साल के अन्दर ही उन्हें जलील होकर हटना पड़ा अथवा हटाया गया और श्री अब्दुल गफ्फूर को उनकी जगह पर ललित बाबू ने मुख्यमन्त्री बनवाया। पाण्डेयजी वाली ही गल्ती गफ्फूर साहब ने और भी बुलन्दी से शुरू की। अपने अनुसार ईमानदारी और जिन्दादिली से वे बिना किसी की सलाह लिए आगे बढ़े। भला ललित बाबू को यह सहा कैसे होता? नतीजा यह हुआ कि उनका भी पाँव खींचा जाने लगा। परिणति हुई, ललित बाबू की मृत्यु के बाद गफ्फूर साहब का जाना और डा० जगन्नाथ मिश्र का मुख्यमंत्री के पद पर आसीन होना।

यह सब क्या यों ही हो रहा था? मैं यह नहीं मानता। सारी की सारी बातें इन्दिराजी की मर्जी से या उनके इशारे से होती थीं। प्रायः वह कहा करती थीं कि मैं तो कुछ नहीं जानती लेकिन हम सब यह जानते थे कि वह

जो जानती है वह और कोई नहीं जानता है। एक बार उन्होंने मुझ से कहा था कि मुख्यमन्त्री कोई गुड़ियां नहीं हैं जिन्हें उठाया और बैठाया जाये लेकिन दूसरी ओर स्वयं वह यही कर रही थी।

उत्तर प्रदेश में, राजस्थान में, मध्य प्रदेश में, बिहार में, गुजरात में, महाराष्ट्र में, उड़ीसा में—हर जगह वही हो रहा था। केन्द्र द्वारा बड़े ही घिनौने ढंग से मुख्यमन्त्रियों को बैठाना-उठाना, बनाना-बिगाड़ना और इसकी चरम परिणति आपातकाल के बाद संजय गांधी के आने के बाद हुई। यदि किसी मुख्यमन्त्री ने संजय गांधी का सर्टिफिकेट नहीं लिया तो वह चपरासी के लिए भी अयोग्य समझा गया। और यदि अयोग्य से अयोग्य व्यक्ति है और उसने आगे बढ़कर श्री संजय गांधी के जूते के फीते बांध दिए तो उसकी गद्दी बरकरार है। मुख्यमन्त्रियों में आपाधापी लगी थी। कौन किस तरह का स्वागत श्री संजय गांधी का करता है और उसी पर निर्भर करता था उसका रहना या हटना।

बिहार के मुख्यमन्त्री श्री जगन्नाथ मिश्र ने इसमें बाजी मार ली। बिहार में जो स्वागत-सत्कार उन्होंने संजयजी का और मेनकाजी का किया उसका फल यह हुआ कि श्री संजय गांधी ने उन्हें दस साल का सर्टिफिकेट दे दिया। और दूसरी ओर बंगाल के मुख्यमन्त्री श्री सिद्धार्थशंकर राय हवाई अड्डे पर स्वागत के लिए न उपस्थित हुए तो अन्त-अन्त तक उन्हें नाकों चने चबाने पड़े।

क्या ये सब बातें इन्दिराजी से अलोप थी या क्या आपातकाल के पहले और बाद की परिस्थितियों पर इनका असर या प्रभाव नहीं पड़ रहा था?

1973 और 1974 में दल का और सरकार का दायरा संकुचित और सिमटता-सा मालूम देता था। जो भी बातें होती थीं, उनसे साफ पता चलता था कि ये सब संस्था के मूल्यों के अनुसार न होकर जोर, दबाव या अप्रत्यक्ष प्रभावों के कारण हो रही हैं। कांग्रेस की अपनी परम्परा और कार्य की प्रणाली रही है। सबों का उल्लंघन हो रहा था। किसी प्रान्त के मंत्रिमण्डल का गठन हो, उसकी सूची पालियामेण्ट्री बोर्ड में नहीं लाई जाती थी, जैसी कि पहले पालियामेण्ट्री बोर्ड की स्वीकृति आवश्यक थी। प्रधानमंत्री या फिर कांग्रेस अध्यक्ष सूची देख लेते थे और कभी दीक्षितजी, कभी ललित बाबू, कभी यशपाल कपूर, कभी धवन आदि के हेर-फेर जिसे अंग्रेजी में 'मेनिपुलेशन' कहते हैं, उसके अनुसार एक-दो नाम हट जाते थे या जुड़ जाते थे। बाद में श्री संजय गांधी का प्रभाव भी इसमें व्यापक हो गया।

इसी प्रकार राज्यसभा और प्रान्तों के विधानपरिषदों की सूची भी तय की जाती थी। बैठक की कोई आवश्यकता नही समझी जाती थी। जब कभी जगजीवन बाबू या चव्हाणजी से उनके प्रान्तों के संबंध में अनौपचारिक पूछताछ कर ली जाती थी और उनके अनुसार एक-दो नाम जोड़ लिए जाते थे। यही कांग्रेस संगठन का ढाचा बनता जा रहा था, जहां लोकतंत्रीय प्रणाली की उपेक्षा ही नही हो रही थी, सारा काम एकतत्रीय पद्धति से चलाया जा रहा था। कोई बोलना भी चाहता हो तो बोल नही सकता था, आह भरकर रह जाता था और उस आह का नतीजा हो रहा था—कांग्रेस संस्था दुर्बल होती चली जा रही थी।

सरकार की हालत तो और भी चिन्तनीय थी। नाम मात्र का कैबिनेट का दायित्व रह गया था। होता था केवल प्रधानमत्री की मर्जी से। और कैबिनेट का कोई भी सदस्य बोलने की हिम्मत नही करता था। कांग्रेसी संसद सदस्यों की भी नीयति यही थी। अपने दिल की बात कोई रख नही पाता था—सभी बातों में हां में हा। प्रधानमंत्री ने कह दिया, वह आखिरी वाक्य हो गया। भला हो या बुरा, बस सिर झुकाकर मानकर चलो और यह सोचकर चलो कि 'किंग कैन डू नो रांग'। भारत में इस से पहले दो प्रधान-मत्री और हो चुके थे, पं० जवाहरलाल नेहरू और लालबहादुर शास्त्री, लेकिन किसी के समय इतनी व्यक्तिगत इच्छाओं का पालन नही हुआ था।

जब कभी यह सवाल उठता था कि चुनाव हों या न हों, 99 प्रतिशत सदस्य यही कहते थे—इसका फैसला तो इन्दिराजी ही कर सकती हैं। सामान्य रूप से यह समझा जाता था कि समय की जितनी बड़ी पहचान इन्दिराजी को है, वैसी और किसी को भी नही और वह जो समय चुन बैठें, उसका मुकाबला नही हो सकता है। लेकिन विगत दो वर्षों में बातें ठीक विपरीत होती जा रही थी। प्रधानमंत्री द्वारा जो भी कदम उठाये जा रहे थे, वे ठीक नही पड़ रहे थे और उनका असर बिल्कुल उल्टा ही पड़ रहा था, कांग्रेस संगठन के लिए और उसी क्रम में उनका जो सब से बड़ा [illegible] निर्णय था, वह था आम-चुनावों का।

ऐसा क्यो हो रहा था कि इन्दिराजी के समान [illegible] सम्पन्न और राजनीति में निष्णात व्यक्तित्व [illegible] की ओर तेजी के साथ चला जा रहा था। कहने वाले जो [illegible] कहते हैं, वे यह कहते हैं—'विनाश काले विपरीत बुद्धि' और [illegible] की निम्नलिखित पंक्तियों को भी दुहराते हैं—

जब नाश मनुज का आता है,
तो सारा विवेक मर जाता है।

लेकिन मैं केवल इसे नही मानता। मैं यह समझता हूं कि निष्ठा की कमी और व्यक्तिगत स्वार्थ की जब बहुलता हो जाती है तो उसका परिणाम ही कुछ ऐसा निकलता है। श्रीमती गांधी इन दोनों बातों में बुरी तरह से जकड़ गई थी। मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि यदि वे इलाहाबाद हाई कोर्ट के फैसले के बाद त्यागपत्र दे देतीं अथवा उसके बाद आपातकाल की घोषणा न करती अथवा आपातकाल की घोषणा हो भी जाती तो प्रेस-सेंसरशिप लागू नही करतीं और यदि ये सारी बातें उन्होने कर दी थी, फिर भी संजय गांधी को आगे न लातीं, तो स्थिति ही कुछ और होती। इन्दिराजी को स्वयं और पूरी कांग्रेस पार्टी को जितना जलील होना पडा है, उतना न होना पडता और उत्तर भारत में कांग्रेस की बुनियाद इस प्रकार न समाप्त होती।

आपातकाल के पूर्व और पश्चात बहुत सारी घटनाएं ऐसी होती रही हैं, जो हमें चौंकाती भी हैं तथा उससे यह भी पता चलता है कि इनकी भूमिका एक लम्बे अर्से से तैयार हो रही थी। ये घटनाएं राजनीतिक भी थीं, नैतिक भी थी और सांवैधानिक भी थी। देश के एक महान् बुद्धिजीवी और विधिवेत्ता डा० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी ने इस संबंध में 'धर्मयुग' के एक लेख में 12 ऐसे उल्लेख्य घटनाचक्र बताए है, जिन्होंने आपातकाल के पूर्व और पश्चात इतिहास को प्रभावित किया—

1. 1971 में श्रीमती गांधी की अभूतपूर्व विजय और उसकी पृष्ठभूमि।

2. 1973 में सर्वोच्च न्यायालय के तीन वरिष्ठतम न्यायमूर्तियों की उपेक्षा करते हुए श्री ए० एन० राय की भारत के मुख्य न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति।

3. 25 जून 1975 के दिन आंतरिक आपात्कालीन स्थिति की घोषणा।

4. सविधान के अनुच्छेद 359 के अन्तर्गत अनुच्छेद 14, 19, एवं 21 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए सब न्यायिक पर्यविलोकन के अधिकार का निलम्बन तथा न्यायिक कार्रवाइयों का निलम्बन।

5. निवारक निरोध या 'प्रिवेंटिव डिटेंशन' का देशव्यापी और दुराशयपूर्ण प्रयोग एवं अपर जिला मजिस्ट्रेट, जबलपुर बनाम शिवकांत शुक्ल तथा अन्य समान मामलों में दिया गया सर्वोच्च न्यायालय का वह निर्णय, जिसमें पाच जजों

के खंड पीठ ने चार बहुमत से यह अभिनिर्धारित कर दिया कि आपात् की उद्घोषणा के प्रवर्तन के दौरान में बन्दी प्रत्यक्षीकरण की कार्रवाइयों में न्यायालयों के समग्र अधिकार और कर्त्तव्य अवरुद्ध हो जाते हैं और इस दौरान सरकार कुछ भी करे, किसी को गलती से या दुराशय से निवारक कारावास में बन्द करे, तो न्यायालयों को इस विषय में किसी भी प्रकार की सुनवाई या हस्तक्षेप का अधिकार नही रहता।

6. न्यायिक नियुक्तियों में हस्तक्षेप, उच्च न्यायालयों के जजो का स्थानांतरण एवं न्यायपालिका के विरुद्ध आलोचनात्मक और अपमानजनक वक्तव्य।

7. प्रेस की स्वाधीनता पर एव अभिव्यक्ति-स्वतन्त्रता पर किये गये आघात, विज्ञापन देने एवं न देने के अस्त्र का पक्षपातपूर्ण और मनमाना प्रयोग, विशेषतया प्रेस एव फिल्म सेंसरशिप और उसके भयावह तौर-तरीके।

8. शातिपूर्वक सम्मेलन एव प्रदर्शन के अधिकार का अन्त।

9. उद्योगपतियों, स्वतन्त्र व्यवसायियो, व्यापारियो एवं अन्य विरोधियो या सभावित विरोधियो के खिलाफ छापे, आयकर और दूसरे करों या आरोपित अपराधों के झूठे-सच्चे मुकदमें इत्यादि।

10. संसदीय शक्ति का उत्तरोत्तर क्षय, कार्यपालिका शक्ति का विस्तार, मन्त्रिमण्डल के प्रभाव का पतन एवं प्रधानमन्त्री के सचिवालय एव उनके निजी सहायको और परिवार के सदस्यों के प्रभाव और अधिकार-क्षेत्र के आयास का अमर्यादित विस्तार।

11. सांविधानिक सशोधनों द्वारा एवं विविध नये कानूनो और नयी कानूनी प्रक्रियाओ द्वारा श्रीमती इन्दिरा गाधी के चुनाव की वैधता की सुरक्षा, नागरिक और वैयक्तिक अधिकारो को कम करना और कमजोर बनाना एवं न्यायपालिका के क्षेत्राधिकार को सीमित और सकुचित करते हुए कार्यपालिका को अधिक सशक्त और कम जिम्मेवार बनाने के लिए उठाये गये कदम।

12. सरकारी सेवाओ एवं अफसरो तथा कर्मचारियों के मनोबल को दुर्बल करने के लिए एव उनकी निष्पक्षता तथा स्वतन्त्रता को समाप्त करने के लिए अनिवार्य सेवानिवृति का प्रयोग एवं अन्य राजनीतिक और वैधिक कदम तथा राजनीतिक प्रयोजनो के लिए सरकारी कर्मचारियों और साधनो का दुरुपयोग।

वे मुद्दे क्या थे, जिन पर जे.पी. के आन्दोलन की बुनियाद पड़ी थी— भ्रष्टाचार, महंगाई, बेरोजगारी और शिक्षा के आमूल परिवर्तन। कोई भी

व्यक्ति यह नहीं कहेगा कि ये गलत बातें थी और कांग्रेस की सरकार का ध्यान भी इस ओर था। लेकिन स्थिति बिगड़ती गई, दूरियां बढ़ती गई। विरोधी दलों ने संसद मे तथा उसके बाहर भी अनेक पैंतरे बांधे। कई कारगर, कई बेकार। पहला कशमकश शुरू हुआ पांडीचेरी लाइसेंस कांड के मुद्दे पर, जिसे 'तुलमोहन राम कांड' भी कहा जाता है। इसकी शुरुआत कांग्रेस के युवातुर्क एम० पी० श्री कृष्णकान्त ने राज्यसभा मे की और बाद में विरोधी दलों ने इसे अपना सबसे बड़ा अस्त्र बनाया। 1974 में जब इसकी गूंज संसद में और उसके बाद देश में हुई, तो पहला विवाद इसे लेकर ही खड़ा हुआ और संख्या मे कम होते हुए भी विपक्ष की जो भूमिका संसद में हुई, उससे सरकार थर्रा गई। उन दिनों लोकसभा में कांग्रेस पार्टी का जो हाल था, उसे भूलना कठिन है। करीब-करीब हर दिन हम लोगों को संसद शुरू होने के पहले ही बुलाया जाता था, विचार-विमर्श किया जाता था, कुछ खुशामद भी की जाती थी कि हमारे जैसे लोग वहां सक्रिय रहें और विपक्ष की चुनौतियों का जवाब दें और मुकाबला करें। तत्कालीन विदेश व्यापार मंत्री श्री ललितनारायण मिश्र का हाल देखने योग्य था। सवेरे-सवेरे उनकी ओर से अनेक सदस्यों को फोन जाता था कि आज तो आपको ही सभालना है, उसके बाद रात के 'डिनर' के लिए अनेक सदस्यों को निमंत्रण जाता था तथा 'डिनर' के बाद अनेक लोगों को 'विदाई' भी दी जाती थी। विपक्ष द्वारा उनका नाम भी बदल दिया गया था—'नगदनारायण मिश्र' और लोकसभा या राज्यसभा में जो भी सदस्य उनके बचाव के लिए खड़ा होता था, उसे भी यह ताना सुनने को मिलता था —कहिए, लिफाफा पहुंच गया क्या ?

संसद की कार्रवाई अखबारों में सही-सही न चली जाये, इसके लिए भी ललित बाबू काफी सक्रिय रहते थे और करीब-करीब रोज पत्रकारों की खुशामद भी उन्हें करनी पड़ती थी। पैसों की उदारता उनमें काफी थी, क्योंकि वे किसी पुराने जमाने के कर्ण के समान दोनों हाथों से उसे लुटाते थे और इसका फायदा पक्ष-विपक्ष बहुत सारे लोग उठाते थे। लेकिन उनके पैसों में यश नहीं था, उससे जितना लाभ उन्हें या जिसे वे देते थे, उन्हें, उतना नहीं हो पाता था, उसका कारण लोग यह कहते थे कि यह हक की कमाई नहीं है। लेकिन यह नहीं है कि उनमे उदारता थी, हालांकि उसके साथ-साथ उनके अन्दर इतनी संकीर्णता भी भरी हुई थी कि किसी का भी वे नुकसान छोटी-छोटी बातों पर भी किया करते थे, उतना शायद ही भारत की वर्तमान राजनीति मे कोई दूसरा कर पाता हो।

श्रौर उन्ही श्रपने विदेश-व्यापार मंत्री की रक्षा करने के लिए प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी बेचैन ही नही, हर कीमत पर सक्रिय थीं। श्रखबारों में श्राये-गये दिन इस पर टिप्पणियां श्रा रही थीं कि सरकार को इसकी जांच के लिए एक बड़ी कमेटी बनानी चाहिए श्रौर स्वयं हम लोगों ने, जिसमें कांग्रेस के 58 संसद सदस्य थे, लिखित रूप में प्रधानमंत्री को एक ज्ञापन दिया कि पूरे काड की जांच के लिए एक सर्वदलीय संसदीय समिति का गठन कर दें, लेकिन वह कागज शायद रद्दी की टोकरी की शोभा बढ़ाने लगा। सदस्यों से हस्ताक्षर कराने वालो में कृष्णकांतजी श्रौर मैं तथा हरिकिशोरजी भी श्रागे थे श्रौर उस पर चन्द्रशेखरजी, रामधन, द्वारिकानाथ तिवारी, हनुमन्तैया, श्रलगेसन जैसे सदस्यों का भी हस्ताक्षर था, लेकिन इन्दिराजी को उनकी कोई कद्र नहीं थी श्रौर यह छोटा घाव दिन-प्रतिदिन बड़ा रूप लेता चला जा रहा था।

मुझे श्रच्छी तरह याद है लोकसभा में इस पर प्रतिदिन जब हंगामे हो रहे थे श्रौर विपक्ष का यह कहना था कि इस सम्बंध की पूरी फाइल सदन की मेज पर रखी जाये श्रौर उसी बीच श्री मोरारजी देसाई ने यह धमकी दी कि यदि फाइल नही दिखाई जाती है, तो वे सदन मे ही धरना देंगे, तो तत्कालीन लोकसभा श्रध्यक्ष श्री गुरदयाल सिंह ढिल्लो को इस सम्बंध में प्रभावित करने की बहुत कोशिश की गई श्रौर उन्हें यहां तक कहा गया कि यदि ऐसी बात हो तो वे मार्शल से श्री मोरारजी देसाई तथा श्रन्य सदस्यो को बाहर निकलवा दें। श्री ढिल्लों इसके लिए तैयार नहीं हुए श्रौर उन्हें श्रपने कामों में किसी का भी हस्तक्षेप करना श्रच्छा नही लगा। नतीजा यह हुश्रा कि कोई सदस्य हटाये जाये, या नही यह विवाद चलता ही रहा श्रौर श्री ढिल्लों को ही श्रध्यक्ष पद से हटा दिया गया।

शायद दुनिया के जनतंत्रीय पद्धति में यह एक श्रजीब उदाहरण था कि श्रपनी पार्टी द्वारा ही श्रपनी पार्टी के ही श्रध्यक्ष को कार्यकाल के बीच से ही हटा दिया जाये। यों भी जब कभी उन दिनो इन्दिराजी से हम लोग मिलते थे, तो वे श्री ढिल्लों पर इतनी नाराज थीं कि कहना शुरू कर देती थी कि ये तो विरोधी दलों से मिले हुए है तथा इनमें किसी प्रकार कंट्रोल करने की क्षमता नहीं है श्रौर यह कि लोकसभा में कड़ाई नही की जाती है, इसीलिए हम लोग जलील हो रहे हैं। बात का बतंगड बनता चला जा रहा था। एक श्रोर विपक्ष श्रड़ा था कि इस मामले को हम किसी भी कीमत पर नही छोड़ेंगे, दूसरी श्रोर इन्दिराजी श्रड़ी हुई थी कि चाहे जो हो इससे मैं नही झुकूंगी।

और प्रतिदिन कांग्रेस दल एवं सरकार की नैतिकता किसी ग्रहण लगे चन्द्र के समान जनता के सामने उपस्थित हो रही थी। आम जनता यह सोच रही थी कि जरूर कही न कही दाल मे काला है, इसीलिए सरकार इस सम्बंध मे सारी बातें सामने रखने से हिचक रही है और नेता यह सोच रहे थे कि इस प्रकार के चिल्ल-पों से डरकर कोई भी सरकार नही चल सकती है। नतीजा क्या हो रहा था ? दल की प्रतिष्ठा और सरकार की निष्ठा दोनों समाप्त हो रही थी। विरोधी दल के लोग एवं कांग्रेस के भी बहुत सारे सदस्य इस बात पर जोर दे रहे थे कि काफी बदनामी बढ़ रही है, अत: श्री ललितनारायण मिश्र को हटाया जाये, लेकिन प्रधानमत्री ने उन्हें विदेश-व्यापार मंत्री से हटाया जरूर, परन्तु राज्यमत्री से कैबिनेट स्तर के मत्री का दर्जा देकर और फिर कांग्रेस कार्यसमिति की सदस्यता ऊपर से।

मुझे यही रह-रहकर उन स्वामी की बातें याद आने लगती है कि बिल्कुल ठीक कहा था, उन्होंने। श्री ललितनारायण मिश्र का बाल बाका भी होना कठिन था, कारण उन्होंने हर ओर से इन्दिराजी को अपनी मुट्ठी में कर रखा था, उनके सबसे बडे पैरवीकार उस दरबार में श्री संजय गाधी थे और बदले में श्री संजय गांधी की मारुति के निर्माण का बहुत बडा श्रेय श्री ललितनारायण मिश्र को ही है।

जनतन्त्र समझौते से चलता है, जिद्द से नही। प्रधानमंत्री ने उन दिनों जो भी किया था, वह समझौता नही था, उनकी जिद्द थी। उनका अपना विश्वास कहीं कैद हो गया था और कांग्रेस को वे अपनी मुट्ठियों मे बन्द एक ऐसी सस्था समझ रही थी, जिसका हर सदस्य बौना या हिजड़ा था और उसे उनकी मर्जी के खिलाफ कुछ भी कहने-सुनने का हक नही था। जो इन्दिराजी कह दें, उसे वह सिर झुकाकर मान लें, आत्मसात कर ले—यही उनका अन्तिम निर्णय था। वे भूलती जा रही थी कि जिस गद्दी पर वे बैठी है, वह एक विरासत है देश के इतिहास और जागृति का, वह जो कर रही हैं—वही सब कुछ नहीं हैं।

बाते छोटी हों या बड़ी, लेकिन उनका प्रभाव जन-मानस पर क्या पड रहा था, कभी इसकी परवाह शायद प्रधानमंत्री नही कर रही थी। लायसेंस कांड की गूंज चल रही थी कि तब तक 'कालपात्र' का मामला सामने आ गया। कहा जाने लगा कि जो कालपात्र इतिहास की धरोहर के रूप मे गाड़ा गया है, उसमें महात्मा गांधी, राजेन्द्र बाबू, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का नाम नही है और जो भी उसमें प्रशस्ती है श्रीमती इन्दिरा गाधी की ही।

तत्कालीन शिक्षामंत्री श्री नूरुल हसन भी कैबिनेट के एक नमूना ही थे। जो भी उनके कार्य होते थे, उससे सरकार की इज्जत गिर रही थी और उनका कार्य एकपक्षीय हो रहा था। बुद्धिजीवियों की शिकायत बढ़ रही थी, जनता में भ्रम फैल रहा था, सरकार उन तथ्यों को दबाने का जितना ही प्रयास कर रही थी, उससे उसकी साख उतनी ही समाप्त होती जा रही थी। इन्दिराजी दल-दल में फसती चली जा रही थी और बाद में देश में आपातकाल की घोषणा की गई, उसकी पृष्ठभूमि तैयार होती जा रही थी और शासनतंत्र जन-भावना से दूर शक्ति के द्वारा उस पर काबू करने का निरर्थक प्रयास कर रहा था, जो अन्ततोगत्वा ताश की दीवार के समान ढह गया और आज सब के सब उस जमाने के योद्धा मलबे के नीचे दबे पड़े हैं।

इमर्जेन्सी कोई एक दिन में ही नहीं आ गई। उसकी भूमिका जैसा मैं कह चुका हूं—73-74 से ही तैयार हो रही थी और उसकी चरम स्थिति 26 जून 1975 को हुई। यदि हम गौर से देखें तो निम्नलिखित मुद्दे ऐसे थे, जिनके सम्बन्ध में जनता का भ्रम बढ़ता चला जा रहा था और सरकार कठघरे में कैद होती चली जा रही थी और अन्तिम परिणति उसकी हुई आपातकाल की घोषणा, प्रेस सेंसरशिप, एक लाख सैंतालीस हजार राजनीतिक बन्दी, संजय गांधी का उदय, सत्ता का केन्द्रीकरण और मनमाने ढंग का प्रशासन।

सबसे पहला प्रकरण है 'लायसेंस काण्ड', दूसरा है 'कालपात्र', तीसरा है मनमाने ढंग से राज्यों के मंत्रिमण्डलों का निर्माण और मुख्यमंत्रियों की नियुक्ति, चौथा है केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में दरबारी किस्म के लोगों की भर्ती, पांचवा है प्रधानमन्त्री का किसी पर भी विश्वास का न होना, छठा है सी० बी० आई० और 'रॉ' के अनुसार शासन चलाने की योजना, सातवां है जयप्रकाशजी के आन्दोलन को गम्भीरता से न लेना और उनकी उपेक्षा, आठवां है बदनाम व्यक्तियों का प्रश्रय, नौवां है नसबन्दी में भयानक रूप से त्रास, दसवां है आत्म प्रचार की भावना और ग्यारहवां है इलाहाबाद हाई कोर्ट के फैसले के बाद भी श्रीमती इन्दिरा गांधी का कुर्सी पर बने रहने का मोह।

और कांग्रेस-पार्टी इन सभी मामलों में, जो में घुन के समान पिसती रही थी। किसी की कोई सुनवाई थी नहीं, एक भय का और संत्रास का वातावरण कायम था। लोगों की निष्ठाएं हिल रही थी, हम सब जय-जयकार में मशगूल थे, शंकरदेव के समान गांधीवादी संसद सदस्य भी हर महीने इन्दिराजी की प्रशस्ती में एक किताब निकाल रहा था और मेरे समान बुद्धिजीवी भी उनके

ऊपर लेखों का अम्बार लगाये हुए थे। घाव रिसता चला जा रहा था, पीप और मवाद उसमें भरता जा रहा था और वह सैप्टिक का रूप ग्रहण कर रहा था और उसका अन्त इस रूप में हुआ कि दुनिया का कोई भी डाक्टर या वैद्य इलाज नहीं कर सकता था—ला-इलाज।

'सच्चा लोकतन्त्र या जनसाधारण का स्वराज्य असत्य और हिंसापूर्ण उपायों से कभी नहीं आ सकता। इसका सीधा-सा कारण यह है कि इनको काम में लेने का स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि विरोधियों का दमन या विनाश करके सारा विरोध हटा दिया जायेगा। इससे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पनप नहीं सकती। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता विशुद्ध अहिंसा के शासन में ही पूरी तरह काम कर सकती है।'

— महात्मा गांधी — 'हरिजन' — 27.5.1939

आपात्काल किस के लिए, किस लिए और किस के द्वारा इस परिप्रक्ष्य के अन्तर्गत हम बापू के उपर्युक्त अंशों को तोलकर देखें। आखिर देश की बुनियाद क्या थी? आजादी की लड़ाई किस लिए लड़ी गई? उन उद्देश्यों की पूर्ति की जिम्मेदारी किन की थी? कांग्रेस के मूलभूत आदर्श क्या थे? किन्होंने आजादी की लड़ाई में अपने प्राणों की आहुति चढ़ाई थी? ये सारे व्यामोह भरे प्रश्न उत्तरों की अपेक्षा रखते हैं।

नतीजा क्या निकला? जनता ने समझा कि कांग्रेस गांधीवाद के रास्ते से भाग रही है, उसका विकल्प कोई ढूंढो और नतीजा यह है कि जनता पार्टी को जो भी समर्थन या ऐतिहासिक जयनाद मिला—वह दो कारणों से, एक यह कि इन्दिराजी के प्रति लोगों में बेहद नाराजगी थी और दूसरी बात यह कि जनता पार्टी के नेताओं ने, चाहे उनके घटक-दल जो भी रहे हों, गांधीजी का नाम ले-लेकर जनता को यह विश्वास दिलाने की भरपूर कोशिश की कि हम गांधी के बताए रास्ते पर चलेंगे और जब वे जीतकर आये, तो उन्होंने राजघाट पर कसमें भी खाईं।

विगत चुनावों के रिजल्ट आये, वे कांग्रेस की हार के रिजल्ट न थे, इन्दिराजी के प्रति रोष के प्रतीक थे। कांग्रेस के जो व्यक्ति इन्दिरा गांधी का साथ छोड़कर चले गये, उनमें दो दिनों पहले जाने वाले जगजीवन बाबू हों या अमृत नाहटा या ऐसे लोग जो कांग्रेस के थे, लेकिन जिन्हें इन्दिराजी ने दंडित किया जैसे चन्द्रशेखर, कृष्णकांत, मोहन धारिया, प्रो० शेर सिंह आदि सभी को जनता ने अपना विश्वास दिया और अधिक से अधिक वोटों से उन्हें

विजयी बनाया। वे कांग्रेसी थे और आज भी हैं, अतः कांग्रेस की हार को किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत हार कहें, तो ज्यादा ठीक बात होगी। कांग्रेस मन्त्रिमण्डल के ऐसे सदस्य भी जो निरीह थे, वे भी जीतकर आ गये। और तो और वर्तमान केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की ओर हम देखें तो अभी भी कांग्रेस का ही नक्शा उसमें साफ दिखलाई देगा, मूल रूप से कांग्रेस विरोधी तस्वीरें अभी भी वहां अल्पमत में हैं, भविष्य में राम जाने। और दुनिया इस बात को भी आज महसूस करती है कि जहा तक प्रधानमंत्री श्री मोरारजी भाई देसाई की बात है—वे देश के किसी नेता से अधिक गांधीवादी हैं।

अतः देश की जनता ने गांधीवाद के पक्ष में ही वोट दिया, उनके विपक्ष में नही। और इस प्रकार पहली बार यह बात दुनिया भर में साबित हो गई कि भारत की गरीब-नरीह-अशिक्षित जनता जितनी गहराई से लोकतन्त्र की मर्यादा को समझती है, शायद कोई इस बात को इस चुनाव के पहले मानने के लिए तैयार नही था। पिछला चुनाव केवल एक मुद्दे पर लड़ा गया—'लोकतंत्र बनाम तानाशाही'। न तो आर्थिक मुद्दे उठाये गये, न तो राजनीति के अन्य पहलुओं को उभारा गया, न किसी प्रकार के सुधारो की व्यवस्था की गई और न तो बहुत कुछ सब्ज-बाग दिखलाया गया। और जनता ने जो फैसला दिया, उससे दुनिया इस नतीजे पर पहुंची कि भारत का जनतंत्र सच्चा जनतन्त्र है और इसकी बुनियाद वास्तव में बहुत गहराई के साथ राष्ट्र निर्माताओं ने डाली है।

दो बातें मुझे यहां रह-रहकर याद आती हैं। एक मेरे बहुत निकट के मित्र या भाई जी० आर० कुलकर्णी विगत पांच वर्षों से लगातार मुझ से यह कहते आ रहे थे कि आप देखियेगा मोरारजी भाई किसी न किसी दिन इस देश के प्रधानमंत्री बनकर रहेंगे। मुझे रत्ती भर भी विश्वास नही होता था कि उनकी यह भविष्यवाणी सही निकलेगी। लेकिन वे ऐसे कि 1972-73 से लगातार मुझे ये बाते कहें और यह भी साथ-साथ कहें कि जब तक मोरारजी भाई प्रधानमंत्री न हो जायेंगे, मरेंगे नही, आप देख लीजियेगा। यह भविष्यवाणी न तो किसी ज्योतिषी की थी और न किसी पोथी-पत्रा वाले की। वरन् एक बुद्धिजीवि की बात थी, जिसे मेरे समान राजनीतिक मानने के लिए कैसे तैयार होता ? लेकिन जब मोरारजी भाई सच में प्रधानमंत्री हो गये, तब मुझे उनकी पैनी दृष्टि पर नतमस्तक होना पड़ा।

दूसरी बात यहा यह याद आ रही है कि गुजरात के एक पत्रकार हैं श्री चन्द्रकान्त शाह। जब भी वे सैन्ट्रल हाल में मिलते थे, प्रायः मुझ से यह कहा करते थे कि देख लीजियेगा, देश की जनता कभी भी इन अत्याचारों को सहन

नहीं करेगी और जब कभी भी चुनाव होंगे, आप लोगों की करारी हार होगी। इस संभावना को सत्य मानने से मैंने सदा इन्कार किया, लेकिन नतीजे हमारे सामने हैं।

यह सब बातें या स्थितियां किसी कल्पना लोक की नहीं हैं, सच्चाई की तस्वीरें हैं और स्पष्ट हैं। यह सारी परिस्थिति आपातकाल की और उस दौरान की गई ज्यादतियों की अनकही कहानी है। आपातकाल के दौरान ऐसा लगा मानो सब कुछ शान्त हो गया है, जनता ने 20 सूत्री कार्यक्रम को अंगीकार कर राहत की सांस ले ली है, जेलों में बन्द राजनीतिक नेता मिट्टी के लोंधे हैं, जिनके लिए बाहर कोई आंसू बहाने वाला नहीं है और सारी स्थिति-परिस्थिति इन्दिराजी या संजयजी या बंसीलालजी या ओम मेहता या कॉवजी या डी० सेनजी या विद्याचरणजी या धवनजी या बरुआजी या यूनुसजी के हाथ में है। बात सही थी। सब कुछ हाथ में था, लेकिन जनता हाथ के बाहर हो रही थी और इस सत्य को कहने वाला, या सुनने वाला, या समझने वाला वहां कोई नहीं था।

यदि शान्तिपूर्वक और बिना किसी द्वेष के हम आपात्कालीन स्थितियों पर विचार करें तो यह जरूर मानना पड़ेगा कि इस काल में काम की रफ्तार बढ़ी, अनुशासन का माहौल बना, शांति व्यवस्था कायम हुई, लोगों के अन्दर भय का संचार हुआ और गुंडागर्दी में कमी आई और देश का मुद्रा कोष भी बढ़ा, मूल्यों में स्थिरता आई। इन सभी उपलब्धियों के लिये तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी धन्यवाद की पात्र हैं। लेकिन यदि यह पूछा जाये कि एकमात्र उपलब्धि क्या है, तो हर आदमी यही कहता है—संजय गांधी।

आर्थिक कार्यक्रमों को, राजनीतिक माहौल को, प्रचार-प्रसार को यदि किसी ने ढंक लिया था, तो संजय गांधी ने। इन्दिराजी ने 20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रमों की घोषणा की और उसके बाद ही तुरंत संजय गांधी ने 5 सूत्री कार्यक्रम रख दिये। सरकारी आदेश हुआ, इन पांचों कार्यक्रमों को भी जोड़ लिया जाये। ये पांचों कार्यक्रम अच्छे थे, लेकिन इनका उद्देश्य क्या था? क्या श्रीमती इन्दिरा गांधी स्वयं 25 सूत्री कार्यक्रम नहीं प्रस्तुत कर सकती थी? लेकिन नहीं, हर जगह इन्दिराजी के साथ-साथ श्री संजय गांधी की भी तस्वीर लगाई गई, एक वाजिब हिस्सेदार के रूप में और कहा गया 20+5 जोड़ 25।

प्रत्यक्ष रूप में जय-जयकार करने वाली जनता अप्रत्यक्ष रूप में भड़क रही थी और लोग बगलें झांककर यह कहते थे कि यह तो 'मां और बेटे' का राज्य हो गया। प्रचार साधनों का दुरुपयोग इस भांति हो रहा था कि आकाशवाणी

या टी० वी० या सेंसर के बाद समाचार-पत्र श्रीमती इन्दिरा गांधी और श्री संजय गाधी से ही भरे रहते थे। इन्दिराजी प्रधानमन्त्री थी, वरिष्ठ नेता थी, अतः कोई बुरा नहीं मानता था, लेकिन सजय गाधी क्या थे, जो हर जगह छाये हुए थे और उनकी आलोचना विरोधी दलो की जहां थी, वह तो थी ही, कांग्रेस के नेताओं, युवातुर्कों, सासदों और आस्था रखने वाले लोगों को कम तकलीफ नहीं थी।

आज सबसे बडी बात क्या है ? हर व्यक्ति खुली सांस ले रहा है, खुले विचार प्रस्तुत कर रहा है और आजादी और निर्भयता का वास्तविक अनुभव कर रहा है। इन्दिराजी के शासन के अन्तिम दिनो मे ये सारी चीजें समाप्त हो गई थी। भय व्याप्त था, ईमानदारी गायब थी, मूल्यों का नाम लेना पाप था, गांधी कहीं विदा हो गये थे और कब क्या हो जायेगा, किस की इज्जत धूल में मिल जायेगी, कौन कहां जलील कर दिया जायेगा इसका भरोसा किसी को नही था।

उस समय मेरी बातें प्राय. डा० कर्ण सिंह, राजबहादुर, के० सी० पन्त, चन्द्रजीत यादव, पी० वी० नरसिंह राव, प्रकाशवीर शास्त्री, गुरदयाल सिंह ढिल्लो आदि से होती रहती थी और सब के सब सिसक रहे थे। लगता था कि हर किसी के सर पर एक दुधारी तलवार लटक रही है और पता नहीं वह कब गिर पड़े और गर्दन धड से अलग हो जाये और कोई वीर ऐसा नहीं था, जो आगे बढकर अपनी गर्दन को उस धार के नीचे रख देता। जो बेचारे थे भी वे तिहाड़ मे थे, पटियाला में थे, सोहना मे थे, फुलवारीशरीफ में थे, ग्वालियर मे थे या ऐसे ही अन्य जगहों में थे और सीकचों में कैद थे।

'मीसा' और 'डी० आई० आर०' सबसे बड़े पाये थे आपात्काल के, जिन पर इन्दिराजी ने या उनके विश्वस्त लोगों ने विशाल महल खड़ा किया था और उसके अन्तर्गत साधु, संन्यासी, तस्कर, विद्यार्थी, डकैत, सर्वोदय कार्यकर्ता, राजनीतिक बंदी, गाधीवादी प्रतिष्ठानों के लोग, आर० एस० एस० के स्वयंसेवक, बागी कांग्रेसी, जमाते इस्लामी के लोग—सब के सब जेलों मे बंद किए गए थे। सबो ने जेलों में जाकर एक बात पर सहमति कर ली थी कि जब कभी हम बाहर हुए, इस सरकार को या श्रीमती गांधी को समाप्त करेंगे और जो जेलों से आये वे भी या जो जेलों में रह गये जैसे कि श्री जार्ज फर्नांडीस या श्री ए० के० राय जैसे लोग भी, विजय पताका फहराने में किसी से पीछे नहीं रहे और देखते-देखते सरकार कहां गई, इन्दिरा गांधी कहां गई, संजय गांधी कहा गये—किसी को कुछ पता नहीं चल सका।

आखिर ऐसा क्यों हुआ ? मैंने एक दिन डा० कर्ण सिंह से जानना चाहा—उत्तर भारत में हर जगह, क्या रायबरेली और क्या अमेठी हम इस बुरी तरह कैसे हार गये ?

डा० कर्ण सिंह का उत्तर बिल्कुल राजनीतिक नहीं था—हमने नैतिक मूल्यों को छोड़ दिया था, हमें उसी की सजा मिली।

और मैं भी इस बात को मानता हूं।

इमर्जेन्सी लागू की गई थी, क्यों ? इन्दिराजी या संजयजी या गद्दी की रक्षा के लिए। और फल क्या निकला ? इन्दिराजी भी गईं, संजयजी भी गये और गद्दी भी गई।

अब आप खुद निर्णय करें कि क्या सच है और क्या झूठ। केवल अध्यात्म में ही नहीं, राजनीति में भी ऐसा ही होता है, सच झूठ हो जाता है और झूठ सच। जिन्होंने इस आपातकाल को सच माना था वे झूठे साबित हुए और जिन्होंने इसे झूठ समझा था, सच्चाई उनके साथ आ मिली।

यही है सच ! और यही है झूठ !

इन्दिरा गांधी – प्रश्नों के दायरे में

● प्रभा, यदि तुम यहां आ रही हो तो बिहार खादी भंडार से मुझ को खादी की सस्ती साड़ियां अच्छे किनारे की दिखाने के लिए ला सको तो लेती आना। मुझे इन्दु के लिए चाहिएं। वह शान्ति निकेतन में साड़ियां ही पहनेगी। मैं मंहगी तो पसन्द नहीं करती कि पहने। 5-7 तारीख तक आ सकें, तो अच्छा होगा, इन्दु पसन्द कर लेगी।

—इन्दिराजी की मां श्रीमती कमला नेहरू द्वारा जयप्रकाशजी की पत्नी श्रीमती प्रभावतीजी को 31 अप्रैल, 1934 को लिखे गये एक पत्र का अंश।

●● हर चुनाव एक अवसर है, राष्ट्र के जीवन से भ्रम को दूर करने का। चलिए, हम फिर से जनता की शक्ति में विश्वास करें और दिखलायें कि भारत का रास्ता समझौते, शान्ति और प्रगति का है।

—श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा राष्ट्र के नाम 18 जनवरी, 1977 को चुनाव घोषणा का प्रसारण।

●●● श्री जयप्रकाश नारायण से बातचीत करने के बाद जैसे ही श्रीमती इन्दिरा गांधी उनके कमरे से बाहर आईं, जयप्रकाशजी भी उनके पीछे-पीछे आये और मुस्कराते हुए बोले—सीढ़ियों तक मैं चल सकता हूं, लेकिन नीचे नहीं उतर सकता। श्रीमती गांधी ने 'चाचाजी, नमस्कार!' कहके उनसे विदा ली। उनके चले जाने के बाद जयप्रकाशजी ने संवाददाताओं की ओर मुड़कर कहा—राजनीतिक मतभेदों के बावजूद उससे (इन्दिरा गांधी से) मेरे व्यक्तिगत संबंधों में कोई कमी नहीं आई है।

—पटना, 14 अगस्त, 1977—एक समाचार

चित्र लेना श्रौर चित्रों श्रौर निगेटिवों को संभालकर रखना दोनों में बड़ा फर्क होता है, शायद यही अन्तर इन्दिरा गांधी को देखने श्रौर देखकर समझने में है। खासकर ऐसे समय में जब इन्दिराजी के संबंध में आज विवादों का पहाड़ उठ खड़ा हुआ है श्रौर तरह-तरह के प्रश्न उत्तरों की प्रतीक्षा में किसी फन फैलाये काले नाग के समान आंखों के सामने खड़े हैं। इन्दिरा गांधी के शासन से हटते ही श्रौर इमर्जेन्सी की काली चादर फटते ही समसामयिक साहित्य का आज ढेर लग गया है, विशेषकर बहुचर्चित पुस्तकें अंग्रेजी में हैं श्रौर उनका मुख्यतया सम्बन्ध तीन बातों से है—आपात्काल में हुई ज्यादतियां, संजय गांधी की भूमिका श्रौर श्रीमती गांधी का विवादास्पद स्वरूप।

इस संबंध में जो बहुचर्चित पुस्तकें हमारे सामने आई हैं, उनमें श्री कुलदीप नैयर की पुस्तक 'जजमेंट' सबसे पहली है श्रौर जनार्दन ठाकुर की पुस्तक 'श्रॉल द प्राइम मिनिस्टर्स मेन' सबसे नई। लेकिन जब तक मेरी यह बात प्रकाशित होगी तब तक न जाने कितनी श्रौर नई पुस्तकें सेल्फों की शोभा बढ़ाने लगेंगी श्रौर कितने अन्य सारे प्रश्न हमारे सामने आ उपस्थित हो जायेंगे।

कुछ दिनों पहले मैं इन्दिराजी से मिला, तो मैंने पहला सवाल यह किया कि आपके संबंध में इधर बहुत सारी पुस्तकें निकल रही हैं, संभवतः हर सप्ताह एक नई पुस्तक श्रौर उनमें एक से अनेक बातें रहती हैं। क्या आप उन्हें पढ़ती हैं, यदि हां तो आपके अपने विचार इस संबंध में क्या हैं?

—पुस्तकें ही क्यों, पर्चे श्रौर अखबारों में रोज कोई न कोई नई खबरें भी रहती हैं। श्रौर बहुत सारी तो ऐसी होती हैं, जो जब छपती हैं तब मुझे पता चलता है।—उन्होंने स्थिरता के साथ उत्तर दिया। इसमें मूल प्रश्न बारीकी के साथ उन्होंने टाल दिया। मैं अच्छी तरह अपने अनुभवों से इस बात को जानता हूं कि जब कभी उन्हें मूल प्रश्न के उत्तर देने की इच्छा नहीं होती है, तो वह किसी अन्य बात से उसे ढक देने का सफल प्रयास करती हैं।

—लेकिन मैं समझता हूं कि किसी को बैठकर इन पुस्तकों के ऐसे विवादग्रस्त अंशों को आपसे पूछकर खंडन करना चाहिए, जो निराधार हैं।—मैंने कहा जरूर, लेकिन उनकी श्रोर से फिर इस संबंध में कोई समुचित उत्तर नहीं मिला।

इसमें दो राय हो ही नहीं सकती कि इन्दिरा गांधी इस पीढ़ी की एक सशक्त महिला हैं श्रौर भारत को उन्होंने जो ऐतिहासिक गौरव दिया, वह दशाब्दियों

में कभी-कभी किसी देश को किसी के नेतृत्व में मिल पाता है। उनके पास सफलता के लिए चारों आवश्यक बातें थी—व्यक्तित्व, वक्तृत्व, कर्तत्व और नेतृत्व। दूसरी ओर विरासत में एक ऐसा पारिवारिक संस्कार उन्हें मिला, जो देश के लिए ऐतिहासिक धरोहर के समान कहा जा सकता है।

1964 में जब जवाहरलाल नेहरू की असामयिक मृत्यु हुई तो देश के सामने कोई भी ऐसा नाम नही था, जिसे वह जवाहरलालजी का उत्तराधिकारी माने। अतः लालबहादुर शास्त्री का चयन जिन नेताओं अथवा तत्वों ने प्रधानमंत्री के रूप मे किया था उनके सामने यह दृष्टिकोण जरूर था कि किसी प्रभावशाली व्यक्तित्व के हाथो में सत्ता न जाये जो स्वयं अपनी मर्जी का बादशाह हो। मोरारजी भाई की ख्याति कुछ ऐसी ही थी, जिसके कारण कामराजजी अथवा सिंडिकेट के नेताओ को लालबहादुरजी के पक्ष में फैसला लेना पड़ा। लेकिन शास्त्रीजी के निधन के बाद इन्दिराजी का प्रधानमंत्री के रूप में चयन कतिपय मौलिक प्रश्नों को उभारता है। जवाहरलालजी के बाद शास्त्रीजी आये और इस प्रकार वंश-परम्परा का सवाल ही नही पैदा हुआ। यहां तक कि शास्त्रीजी ने जब इन्दिराजी को अपने मंत्रिमंडल में शामिल होने का न्यौता दिया तो वे जल्द राजी ही नहीं हुई। अंत मे शास्त्रीजी ने एक दिन उन्हें अपना निर्णय जाकर थोप दिया कि आपको मेरे मंत्रिमडल मे रहना ही है, क्योंकि मुझे पंडितजी की एक यादगार चाहिए। और बिना इन्दिराजी के 'हा' या 'न' कहे उन्होने पत्रकारों को यह सूचना दे दी कि इन्दिरा मंत्रिमंडल में शामिल हो रही है।

—मैंने पंडितजी की मृत्यु के बाद सोचा भी नहीं था कि राजनीति में रहना है। शास्त्रीजी ने मुझे बाध्य कर दिया और मेरे बार-बार यह कहने के बावजूद भी कि अभी थोड़े दिन रुक जायें, मुझे सोचने का मौका दें; उन्होंने मेरा नाम एक दिन प्रेस को कह दिया, जिसे मैंने भी अखबारों मे देखा।—ये बातें मुझे इन्दिराजी ने एक दिन बताईं।

सवाल आज संजय गाधी को लेकर जरूर पैदा होता है, लेकिन उस दिन इन्दिराजी को लेकर यह सवाल बिल्कुल पैदा नहीं हुआ था कि जवाहरलालजी की बेटी को क्यों प्रधानमंत्री बनाया जा रहा है या वंश-परम्परा की कील भारतीय जनतंत्र मे क्यों गाड़ी जा रही है? उत्तर स्पष्ट है कि इसकी पहल न तो पंडितजी ने की थी और न इन्दिराजी की ओर से हुई, बल्कि सिंडिकेट तथा अन्य नेताओं ने चक्रव्यूह की रचना की और उन दिनों जगजीवन बाबू ने यह कहकर साथ दिया कि मोरारजी भाई पूंजीपतियों और बड़े लोगों के साथी

हैं, अतः मेरा और उनका साथ तो हो ही नही सकता, कारण मेरा वर्ग या साथ तो गरीबों का है।

इन्दिराजी प्रधानमंत्री बनी और एक सफल प्रधानमंत्री सिद्ध हुईं। देश की लाखों जनता उन्हे देखने और सुनने आती थी, भरोसा करती थी, प्रेरणा लेती थी और चाहे कितनी भी गल्तियां वे क्यों न कर जायें, उनका ही साथ देती थी। 1969 के कांग्रेस-विभाजन का एक ही मुद्दा था--श्री नीलम संजीव रेड्डी का राष्ट्रपति पद के लिए इन्दिराजी की मर्जी के खिलाफ चयन और इन्दिराजी ने कांग्रेस-दल के नेता के रूप में उनका मनोनयन-पत्र भरा, लेकिन फिर आत्मा की आवाज के नाम पर उनकी खिलाफत की और कांग्रेसजनों में से एक बड़े भाग ने उनका साथ दिया, श्री वी० वी० गिरी स्वतन्त्र उम्मीदवार होते हुए भी कांग्रेसी उम्मीदवार श्री रेड्डी को हराकर विजयी घोषित हुए और इस विजय का सेहरा श्रीमती इन्दिरा गांधी को मिला, जिन्होंने अपने दल के घोषित उम्मीदवार को हराया, लेकिन इसके बावजूद भी कांग्रेस दल के बहुमत ने और देश की जनता ने इन्दिराजी का साथ दिया। जो ताकत उन्हें मिली, उसके बल पर उन्होने 1971 का चुनाव जीता, बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया, प्रीवि-पर्सेस का उन्मूलन हुआ और देश की जनता को इन्दिराजी ने एक नारा दिया--'गरीबी हटाओ' का। बंगला देश का युद्ध हुआ, भारत की ऐतिहासिक विजय हुई, आर्यभट्ट छोड़ा गया, सिक्किम का विलयन हुआ, अणु का विकास हुआ, मुद्रा-स्फीति पर काबू पाई गई, आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों को बाधा गया, विदेशी मुद्रा कोष में वृद्धि हुई--और जनता ने मिश्रित प्रतिक्रियाओं के साथ इन कदमों का स्वागत किया। दिल्ली के स्कूटर वाले, टैक्सी वाले, आम जन, दिल्ली-दर्शन के लिए आई हुई भीड़--सब इन्दिराजी के सफदरजंग स्थित कोठी पर हर मौके पर जुटती रही और नारे लगते रहे--इन्दिरा गांधी मत घबराना : तेरे पीछे नया जमाना।

और यह सब हो ही रहा था कि आ गया 1975 का 12 जून इलाहाबाद हाई कोर्ट का फैसला। रायबरेली से लोकसभा के लिए निर्वाचित प्रतिनिधि श्रीमती इन्दिरा नेहरू गांधी का निर्वाचन रद्द किया गया, छः वर्षों के लिए चुनाव में भाग न लेने का भी फैसला आया और मुख्य रूप से इसके लिए दो बातें न्यायालय ने मान्य कीं--श्री यशपाल कपूर का सरकारी पद पर होते हुए भी चुनाव-एजेन्ट के रूप में काम करना और सरकारी खर्चे से अपने संसदीय क्षेत्र में चुनाव प्रचार।

सवालों का एक जीवन्त सिलसिला यहीं से शुरू होता है। हाई कोर्ट के

फैसले के बाद एक मिनट के लिए भी पद पर बने रहना श्रीमती गांधी के लिए क्या नैतिक था ? देश की सामान्य जनता ने क्या इस बात को मंजूर किया कि वे हाई कोर्ट के फैसले को अमान्य कर दे ? श्री सिद्धार्थशंकर राय, श्री गोखले, श्री बंसीलाल, श्री बरुआ या श्री संजय गांधी जिस किसी ने भी उन्हे पद नही छोडने की सलाह दी या प्रेरित किया —क्या वे इन्दिरा गांधी के सच मे हितैषी थे ? या स्वयं इन्दिरा गाधी इस कुर्सी से हटना नही चाहती थी ?

मुझे इलाहाबाद हाई कोर्ट के फैसले की सूचना 10 बजकर 20 मिनट पर कृष्णकान्तजी ने दी। मैंने ही उन्हे फोन किया था यह कहने के लिए कि श्री डी० पी० धर की मृत्यु हो गई है, उनके दाह-संस्कार में चलना चाहिए, तैयार रहे। फोन पर उधर से उन्होंने कहा—इससे भी बड़ी बात हो गई, श्रीमती गांधी चुनाव हार गईं। मैं चौका—क्या कहते है ?—हां, मैं बिल्कुल ठीक कहता हू। आप कहा रहते है ?—उन्होंने उधर से जवाब दिया। उनकी आवाज मे खुशी जाहिर हो रही थी। कुछ दिनों से वे इन्दिराजी से नाराज थे और बदले में इन्दिराजी उनसे और भी अधिक खफा थीं। यह नाराजगी का सिलसिला 1973 के अहमदाबाद कांग्रेस से ही शुरू हो गया था, जहा कृष्णकातजी ने युवातुर्कों भाषण देकर एक जलजला पैदा कर दिया था।

मैं लगभग 10.40 मे इन्दिराजी की कोठी पर गया, तो वहां तिल रखने को भी जगह नही थी। मेरे साथ श्रीमती सुमित्रा कुलकर्णी भी थी—गाधीजी की पौत्री और राज्यसभा की माननीया सदस्या, जिन्हें मैने अपनी बहन माना है और उन्होने मुझे भाई के रूप मे अपना लिया है। इन्दिराजी सफेद खादी की साड़ी पहने हुए थी और उदासीनता उनके मुह पर लिपटी नजर आती थी। पता नही उन्होंने मुझे देखा या नहीं, लेकिन वहां बहुत बड़ी मात्रा में मत्रीगण, संसद सदस्य और आम लोग उपस्थित थे और अधिकतर लोग यह कह रहे थे कि आप हमें वचन दीजिये कि आप त्यागपत्र नही देंगी। इन्दिराजी बस यही कह रही थी कि मुझे सोचने का मौका दीजिये और उपस्थित हर वी० आई० पी० इस फिक्र मे था कि हमारी उपस्थिति दर्ज हो जाये और इन्दिराजी हमें देख लें।

मुझे उस दिन जिन व्यक्तियों से बातचीत करने का मौका मिला उनमें श्री कृष्णचन्द्र पंत और श्री चन्द्रजीत यादव भी थे। दोनों से मैंने साफ कहा—इन्दिराजी को अविलम्ब त्यागपत्र देना चाहिए। मैं जब भागा हुआ सेन्ट्रल हाल में पहुँचा तो वहां 80 प्रतिशत से अधिक संसद सदस्यों की एक ही राय

थी कि श्रीमती इन्दिरा गांधी को त्यागपत्र दे देना चाहिए और उसके बाद कांग्रेसजन और जनता की ओर से ही आवाज आयेगी कि ये रहे। शाम को उस दिन अ० भा० कांग्रेस कमेटी की एक आवश्यक बैठक बुलाई गई, जिसमें बड़ी संख्या में संसद सदस्यों ने भाग लिया, उसमें कांग्रेस अध्यक्ष श्री बरुआ के अलावा श्री जगजीवनराम और श्री चव्हाण ने भाषण देते हुए यह कहा कि इन्दिराजी को बीस दिनों के लिए हाई कोर्ट ने ही प्रधानमंत्री के रूप में ठहरने की इजाजत दी है, अत: उनसे त्यागपत्र देने की माग अनुचित है।

श्री बरुआ और श्री चन्द्रजीत यादव ने यह प्रस्ताव रख दिया कि हम सबों को अभी पैदल एक जुलूस की शक्ल में चलकर इन्दिराजी को यहां का फैसला कह देना चाहिए कि उन्हें रहना है। बाद में तय हुआ कि गाड़ी से ही चलें। हम सभी वहां पहुँचे। जो चेहरे सेन्ट्रल हाल में जोरदार बातें कर रहे थे कि इन्दिराजी को 'रिजाइन' करना चाहिए, वे सबसे अधिक आगे बढ-बढकर ऊंचे स्वरों में सफदरजंग रोड पर इन्दिराजी को यह कह रहे थे कि आपने त्यागपत्र दे दिया तो इस देश का क्या होगा, इस पार्टी का क्या होगा, इसलिए आपको 'रिजाइन' की बात सोचनी भी नहीं चाहिए।

और उसके बाद 12 जून से लेकर 26 जून तक का समय भारत के इतिहास का जज्बाती समय रहा। इस संबंध में श्री कुलदीप नैय्यर ने या श्री मनकेकर ने या श्रीमती प्रमिला कल्हण ने क्या लिखा है, इसका हवाला मैं देना नहीं चाहता, मैं तो अपनी बातें यहां कहना चाहता हूँ। 12 जून को तीन घटनाएं हुई, जो कांग्रेस के लिए अथवा श्रीमती इन्दिरा गाधी के लिए भविष्य के प्रति एक प्रकार से चेतावनी थी। प्रातःकाल श्री डी० पी० धर की मृत्यु, उसके बाद इलाहाबाद हाई कोर्ट का फैसला और शाम होते-होते गुजरात में कांग्रेस की हार की खबर।

मैं 12 जून और 13 जून को जगजीवन बाबू से मिला और बहुत सारी बातें हुई। उनके बारे में बिहार से मुझे लगातार विभिन्न प्रकार की पूछताछ हो रही थी। स्वाभाविक रूप से इन्दिराजी यदि प्रधानमंत्री पद से हटती है तो श्री जगजीवनराम का नाम आगे आता, लेकिन दुर्भाग्य यह था कि इसके लिए जगजीवन बाबू के साथ-साथ चव्हाण साहब भी उम्मीदवार या हकदार थे। दोनों में किसी प्रकार की आपसी बातचीत नहीं थी और न तो कोई समझौता था, अत: दोनों कही दूसरा न हो जाये, इसलिए यही पसन्द करते थे कि इन्दिराजी ही रह जायें।

12 को लगभग 12 बजे मैं जगजीवन बाबू से मिला था और मैंने जब

उनसे पूछा कि बाबूजी आगे क्या होगा, तो वे कुछ साफ नही बता पाये। इतना उन्होने जरूर कहा कि देखो क्या होता है? इसके साथ ही उनका यह भी कहना था कि मेरे ऊपर भारी नजर रखी जाती है कि मुझ से कौन-कौन लोग मिलने आते है, क्या-क्या बात होती है और मेरा गहरा संपर्क यदि सरकारी पदाधिकारियों के साथ नही होता, तो मुझे भी तरह-तरह से फंसा दिया जाता।

श्रीमती गाधी के आसपास का वातावरण बड़ा ही संकुचित और तनावपूर्ण नजर आता था। हर आने-जाने वाले पर भारी नजर रखी जाती थी और लगता था कि हर किसी को शक की निगाह से देखा जा रहा है। मुख्य रूप से वहा जो लोग सचालक का काम कर रहे थे उनमें सर्वश्री देवकान्त बरुग्रा, सिद्धार्थशंकर राय, गोखले, बंसीलाल, ओम मेहता, धवन और पी० एन० धर थे, जो बार-बार दिखाई दे जाते थे। कभी गम्भीर मुद्राओं मे, कभी 'नैवर माइन्ड' के मूड में। पता नही अन्दर-अन्दर और कौन लोग थे, जो सचालक कहे जा सकते है। मैंने उन दिनों अपनी नजर से कही भी श्री सजय गाधी को नही देखा था, लेकिन बाजारों मे बड़ी तेजी से यह खबर फैल रही थी कि संजय गाधी ने परिस्थिति की बागडोर अपने हाथो में ले ली है।

श्री सजय गाधी ने परिस्थितियो की बागडोर कैसे अपने हाथ में ले ली, इसकी अपनी कहानी रही होगी, लेकिन आम चर्चा यह थी कि श्रीमती गांधी के आसपास एक ऐसा गिरोह था जो संजय गांधी को आगे बढ़ाकर अपने आपको और भी मजबूत बनाना चाहता था। श्री सीताराम केशरी ने मुझ से एक दिन कहा था कि इलाहाबाद हाई कोर्ट का जिस दिन फैसला आया और जब यह बात चली कि इन्दिराजी राष्ट्रपति के सामने अपना त्यागपत्र देने जा रही है, उस समय श्री केशरी ने संजय गांधी को जाकर कहा—आपके घर में आग लग रही हो आप चुपचाप बैठकर तमाशा देखते रहेंगे। उठिये और आगे बढ़िये।

और कहा जाता है कि सजय गाधी तपाक के साथ उठे थे और कहानी तो यहां तक कही जाती है कि उन्होने आगे बढ़कर अपनी मां के हाथ से त्यागपत्र का पत्र छीन लिया था और उसे फाड़कर रद्दी की टोकरी मे फेंक दिया था और उस दिन से उन्होंने सारी बागडोर अपने हाथ मे ले ली थी।

राम जाने, सच्चाई क्या है, लेकिन इतनी बात सही है कि श्री संजय गांधी के मन मे लिप्सा जगाने वाले या उन पर शान चढाने वाले लोगों में बंसीलाल, धवन, धीरेन्द्र ब्रह्मचारी, यूनुस, सीताराम केशरी और नारंग आदि मुख्य से रहे होंगे। उसके बाद जो गिरोह बना उसमे मुख्य रूप से श्री विद्याचरण

शुक्ल ग्रौर ग्रोम मेहता शामिल हो गये ग्रौर ग्रापातकाल की घोषणा के बाद यदि कोई पत्ता भी हिला तो इन्ही लोगों की मर्जी से ग्रौर जवाबदेही प्रधानमंत्री होने के नाते भले श्रीमती इन्दिरागांधी की रही हो, लेकिन यह भी सही है कि बहुत सारी बातों की जानकारी उन्हें बाद में मिलती होगी ग्रौर वे यह सोचकर चुप रह जाती होंगी कि जो कुछ ये लोग कर रहे हैं, उनके ही हित में या हक में कर रहे हैं।

लेकिन श्री संजय गांधी का उद्‌भव ग्रौर विकास केवल ग्रापातकाल की ही देन नही है, वरन् इसकी भूमिका लम्बे ग्रर्से से ग्रौर बड़े ही सिद्धहस्त तरीके से बाधी जा रही थी, जिसकी चर्चा हम बाद में करेंगे।

यहां हम मुख्य रूप से इन्दिराजी के सम्बन्ध में ही कतिपय प्रश्नों का समाधान ढूढे, जो ग्राज जनमानस में हिलोरे ले रहा है। मेरा ग्रपना मानना यह है कि 1969 के कांग्रेस विभाजन के बाद ग्रौर 1971 के लोकसभा चुनावों मे भारी बहुमत प्राप्त करने के बाद इन्दिराजी ने यह सोच लिया था कि भारत की जनता पर उनका ग्रसीमित ग्रधिकार है ग्रौर उनके हर प्रकार के कामों को या तो वह ग्रांख मूंदकर समर्थन देगी या फिर वह ग्रपने परिश्रम से उसे ग्रपने पक्ष में कर लेंगी। लेकिन उनकी यह भूल 1977 के चुनावों में स्पष्ट रूप से सामने ग्राई। लोकसभा चुनाव में उन्होंने जितना दौरा किया, कांग्रेस उम्मीदवारों को जितना साधन मुहैय्या किया गया तथा कांग्रेस की जो व्यवस्था थी उसे देखते हुए प्रारम्भ में ऐसा लगता था कि विरोधी दलों को शायद ही कोई सीट मिल पायेगी लेकिन ज्यों-ज्यों चुनाव के दिन नजदीक ग्राते गये, जेलों से लोग छोड़े गये, इमर्जेन्सी में ढिलाई ग्राती गई ग्रौर ग्रखबारों को स्वतन्त्रता मिलती गई, त्यों-त्यों यह बात साफ होने लगी कि कांग्रेस को उत्तर भारत मे दस-बीस सीटें मिल जायें तो बड़ी बात हो। लेकिन जो फल सामने ग्राये, वे केवल चौकाने वाले ही न थे, बल्कि पावों के नीचे से धरती खिसकाने वाले थे। रायबरेली से प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की हार दुनिया की एक ऐसी घटना थी, जिसने राजनीति के बड़े-बड़े विद्यार्थियों ग्रौर पत्रकारों को ग्रचम्भे में डाल दिया। दुनिया के इतिहास में पहली बार कोई प्रधानमंत्री ग्रपने पद पर रहते हुए सदस्यता का चुनाव भी हार गया था ग्रौर वह भी दूसरा कोई नही, श्रीमती इन्दिरा गांधी जैसा व्यक्तित्व, जिसने कभी यह कल्पना भी न की होगी। लेकिन भारत की जनता का फैसला था, जिसने सोच-समझकर किया था। उन्हे मात्र इतने से ही संतोष न था कि कांग्रेस को उखाड़ फेंके, बल्कि इन्दिरा गांधी को भी सदस्य तक न रहने दें ग्रौर उत्तर प्रदेश ग्रौर बिहार जैसे सूबे जो कांग्रेस

के गढ़ थे, जिनके ऊपर भारत की राजनीति का फैसला था—उनमें एक भी कांग्रेस का उम्मीदवार विजयी न हुआ।

क्या यह हार कांग्रेसजनों की या किसी उम्मीदवार की हार थी? नहीं, यह हार श्रीमती इन्दिरा गांधी की, केवल उनकी, उनकी अपनी नीतियों की और उन्होंने देश की जनता का विश्वास पूर्ण रूप से खो दिया था और उसका सबसे बड़ा कारण एक ही था कि जहा भारत की 55 या 60 करोड़ जनता ने उन्हें मा के समान देखा था, वहा उन्होने केवल एक संजय गांधी को पुत्र माना था, औरों के लिए उनके दिल में कोई स्थान नही रह गया था।

आखिर इन्दिराजी क्यों और किस प्रकार इस प्रकार के सीमित मायाजाल में फस गई थी। इसके लिए 1969 के कांग्रेस विभाजन से ही देखना पड़ेगा। इन्दिराजी ने बंगलोर कांग्रेस के बाद लड़ाई छेड़ दी थी सिंडीकेटी नेताओं के खिलाफ, लेकिन जिन-जिन लोगों ने उनका साथ दिया था उस लड़ाई में, सबों को उन्होने दरकिनार भी कर दिया था। यह मानना पड़ेगा कि कांग्रेस-विभाजन के बाद युवा-तुर्कों ने ही माहौल खड़ा किया था और संसद के अन्दर तथा बाहर मोरारजी भाई और सिंडीकेट के खिलाफ उन्होने पुरजोर वातावरण बनाया था। लेकिन इन्दिरा गांधी की ओर से उन्हें मिला क्या—अविश्वास, प्रताड़ना, किसी को भी सत्ता के पास नहीं आने देने की इन्दिराजी की अपनी नीति।

श्री अर्जुन अरोड़ा सबसे पहले कांग्रेसी संसद सदस्य थे जिन्होंने यह घोषणा की कि मैं नीलम संजीव रेड्डी को नहीं श्री गिरि को वोट दूगा, कांग्रेस से निष्कासित किए जाने वाले भी वे पहले सदस्य थे, लेकिन उन्ही अर्जुन अरोड़ा को श्रीमती गांधी ने न तो अपने पास सटने दिया और न ही राज्यसभा में सदस्यता की अवधि समाप्त होने पर फिर टिकट ही दी। इसी प्रकार बंगलोर कांग्रेस के बाद जिन-जिन लोगों ने सबसे तेज-तर्रार बनकर श्रीमती इन्दिरा गांधी का साथ दिया, वे सब के सब त्रासित हुए और कोई इधर गिरे, कोई उधर गिरे।

कांग्रेस-विभाजन के समय और उसके बाद श्रीमती गांधी के व्यक्तित्व को स्थापित करने में सबसे बड़ी भूमिका या योगदान निर्विवाद रूप से श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र का और युवा-तुर्कों का रहा। सर्वश्री चन्द्रशेखर, मोहन धारिया, चन्द्रजीत यादव, कृष्णकान्त, रामधन, भागवत झा आजाद, इन्द्रकुमार गुजराल, लक्ष्मी कान्तम्मा, अर्जुन अरोड़ा सब के सब ऐसे नाम थे जो लोगों की जबान पर नाचते रहते थे, लेकिन इनमें से एक-दो को छोड़कर बाकी

लोगों का हश्र क्या हुआ ? सब के सब उपेक्षित हुए, पीड़ित हुए, जलील किए गये, आपस में मिल न जायें इसलिए विभिन्न फोरमों पर लड़ाए जाते रहे और इनका व्यक्तित्व या इनकी ताकत नहीं उभरे इसके लिए श्रीमती गांधी की ओर से भरपूर सावधानी रही।

1974 के प्रारम्भिक दिनों में जबलपुर जाकर मैं पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र से मिला। उन्होंने साफ शब्दों में मुझ से कहा—मैंने तो दिल्ली छोड़ दी है और इन्दिराजी को एक पत्र दे दिया है कि जब कभी आपको मेरी जरूरत हो, बुला लेंगी, मैं आ जाऊंगा। अभी उन्हें मेरी जरूरत नहीं है और जलील होने के लिए दिल्ली में बैठकर मैं क्या करूंगा। मेरा इन्टरव्यू भी श्री यशपाल कपूर ग्रांट करें, यह दिन भी मुझे देखना पड़ा। इसके अतिरिक्त मेरे कुछ अपने साथी भी इस बात की चेष्टा में रहते हैं कि मैं इन्दिराजी के करीब न आऊं, जिससे उनकी चलती-बनती कम न हो, इसीलिए मैंने निर्णय किया कि मैं सबसे अलग रहूंगा। गर्मियों में पंचमढ़ी चला जाता हूं। इन दिनों मैं अपनी पुस्तक लिखने में व्यस्त हूं—'फ्रोम महात्मा गांधी टू इन्दिरा गांधी'।

बाद में मिश्रजी ने इस पुस्तक का नाम बदल दिया। नाम बदलकर मेरी समझ में मिश्रजी ने अच्छा नहीं किया, क्योंकि इसका जितना प्रचार-प्रसार होना चाहिए था, नहीं हो सका और दूसरी बात यह थी कि उन्हीं दिनों बाजार में 'फ्रीडम ऐट मिडनाइट' जैसी सेन्सेशनल पुस्तक के आ जाने से मिश्रजी की पुस्तक की उतनी चर्चा नहीं हो सकी, जिसकी अपेक्षा थी।

मिश्रजी की सबसे बड़ी खूबी मैं यह मानता हूं कि उनकी बुद्धि कुशाग्र और सन्तुलित थी और है तथा घटनाओं को जिस पैनी दृष्टि से वे देखते हैं, वैसी दृष्टि बहुत कम लोगों की है। इसके अतिरिक्त इनकी एक विशेषता और भी हैं कि जितने युवा-तुर्क नेता थे, सबों का विश्वास उनके प्रति रहा। मैंने जब कभी चन्द्रशेखरजी, कृष्णकान्तजी, मोहन धारिया, भागवत झा आजाद आदि से उन दिनों बातें कीं तो उन सबों ने पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र की काफी प्रशंसा की और मिश्रजी ने भी मुझ से इन सबों के सम्बन्ध में खुले तौर से यह कहा था कि ये पार्टी के लिए और इन्दिराजी के लिए बहुत बड़े 'एसेट' हैं, लेकिन इन्दिराजी इन बातों को समझती नहीं है।

जो हो यह साफ था कि मिश्रजी इन्दिराजी के रवैये से असंतुष्ट हो नहीं दुःखी भी थे—क्या वे चाहतीं तो मुझे दिल्ली में रहने के लिए जगह नहीं मिल पाती—उन्होंने मुझे कहा था—लेकिन, मैं बेचारे नीतिराज सिंह चौधरी

के यहां ठहरता हूं, वह भी उनके लिए शामत आ गई है, लोग उन्हे भी शक की निगाह से देखने लगे हैं।

साफ जाहिर है कि श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र जैसे व्यक्ति की यह राय थी, जिन्होंने इन्दिराजी को स्थापित करने में सबसे बड़ा पार्ट अदा किया था, तो औरों की बात क्या कही जाये। मिश्रजी ने मुझ से यह भी कहा था—1971 के लोकसभा चुनावों के बाद उन्होंने मंत्रिमंडल निर्माण के संबंध में मुझ से बातें कीं। मैंने उन्हे यह सलाह दी थी कि डा० कर्ण सिंह को प्रतिरक्षा दें और जब उन्होंने मोहन कुमारमगलम को मत्रिमडल में लेने की बात कही तो मैंने कहा कि अधिक से अधिक उन्हे राज्यमंत्री का स्थान मिलना चाहिए। इस बात को इन्दिराजी ने मोहन कुमारमंगलम् से कह दिया, नतीजा यह हुआ कि सारे कम्युनिस्ट लॉबी के लोग मुझ से बेहद खिलाफ हो गये।

सच मे एक भयानक गुत्थी है, इन्दिरा गांधी के व्यक्तित्व को सुलझे तारों में बांधकर रखना, उसे समझना, सुलझाना और किसी एक निष्कर्ष पर पहुचना। राजनीति साध्य जरूर है, लेकिन साधन के रूप मे इसका उपयोग *किया जाये तो व्यक्तित्व का मानवता पक्ष समाप्त हो जाता है।* पहले और आज की शिराओं को एक में मिलाकर परखने की कोशिश करता हूं, तो पाता हूँ कि इन्दिराजी के व्यक्तित्व पर उनकी राजनीति छाई रही और उस राजनीति को उन्होंने साधन माना और उस ध्येय ने उन्हें मानवीय पक्षों से दूर ला खडा किया। अनजान में जो काम किए जाते है, उनके लिए क्षमा संभव है; लेकिन जानबूझकर कोई काम किया जाये, तो उसका जवाब कुछ भी नही हो सकता। सफाई पर सफाई दी जाये, लेकिन उससे लाभ की जगह हानि होती है और मकड़ी के जाले के समान आदमी उसमें फंसता ही चला जाता है। शायद इन्दिरा गांधी के व्यक्तित्व की शिराएं भी इन्ही तथ्यों में कैद हैं। जिस किसी ने भी उन्हे आदर दिया, उसे कभी न कभी जाकर ठेस लगी और जिस किसी ने उन्हें पूर्ण रूप से अपना विश्वास सौंपा उसे कभी न कभी चलकर आघात लगा। मैं चाहता हूं कि इन तथ्यों को और भी स्पष्ट करूं।

—चन्द्रजीतजी, मैं किसी व्यक्ति को बराबर शक और अविश्वास की दृष्टि से देखती हूं, यही मेरे परख की कसौटी है।—ये बातें इन्दिराजी ने श्री चन्द्रजीत यादव को कही थीं. जो उनके मंत्रिमंडल के एक सदस्य रहे, जो अ० भा० कांग्रेस कमेटी के महामंत्री रहे, जिन्होंने कांग्रेस विभाजन के बाद एक महत्वपूर्ण भूमिका अपनाई और जिनका अपना कर्मठ और बुनियादी सिद्धान्तों

का व्यक्तित्व रहा है। और श्री चन्द्रजीत यादव ने ये बातें मुझे हाल ही में कही हैं।

—मैंने इन्दिरा गांधी को 'गोडेस' (देवी) के रूप में माना, उसी रूप में उन्हें श्रद्धा और विश्वास दिया, लेकिन उन्होंने एक लड़के के कारण मुझे कितना जलील किया, यह सारी दुनिया जानती है।—ये बातें श्री सिद्धार्थशंकर राय ने पटना स्थित मेरे घर पर 1 अगस्त, 1977 को कही। श्री सीताराम केशरी और श्रीमती रामदुलारी सिन्हा भी उस समय उपस्थित थे और सिद्धार्थ बाबू के साथ उनकी पत्नी श्रीमती माया रे भी थी।

—इन्दिराजी काम निकालना जानती है, तुम लोगों का और हम सबों का वे उपयोग कर रही है। जिस दिन काम निकल जायेगा, किसी रस निकाले हुए छिलके के समान फेंक देंगी।—यह बात कई बार श्रीमती सुमित्रा कुलकर्णी ने मुझ से आत्मीयता के साथ कही।

—तुम लोग उनकी पूजा करते रहो, लेकिन याद रखो इतनी बड़ी स्वार्थी औरत दुनिया मे देखने को नही मिलेगी। किसी को भी यह कुछ भी कर सकती है, अपनी गद्दी बरकरार रखने के लिए। तुम लोग रहते हो किस दुनिया में ?—श्री कृष्णकान्त उन दिनो मुझे कहा करते थे, जब मैं उनकी बातों से पूर्णत: असहमति प्रकट करता था।

—क्या तुम कहते हो बात करने के लिए, वे अपनी कुर्सी बचाने के लिए कुछ भी कर सकती हैं, वे डिक्टेटरशिप की ओर जा रही हैं। किसी भी दिन तुम देखोगे कि मैं जेल में हूं।—ये बातें चन्द्रशेखरजी ने मुझ से 23 जून, 1975 को पटना-दिल्ली ट्रेन में कही थी, मैंने इस बात से असहमति प्रकट की थी कि वे कभी भी गिरफ्तार होंगे और इस कथन के ठीक दो दिनों बाद 26 जून की सुबह अन्य लोगों के साथ ही श्री चन्द्रशेखर भी जेल की सीकचों में बंद थे।

—इन्दिरा को क्या हो गया है, मैं तो उसे बेटी के समान मानता रहा हूँ, वह क्यो नही समझती।—ये बातें आन्दोलन के शुरूआत के पहले जे० पी० ने मुझ से कही थी।

—अपने बेटे को गद्दी पर बैठाने के लिए सारी तैयारी हो रही है। यह भी नमुना है कि लोकसभा के टिकटों का बंटवारा भी संजय गांधी के लिस्ट के अनुसार होगा। पाच सौ मे से तीन सौ पचास उम्मीदवारों की सूची बन गई है—बंसीलाल, संजय और धवन ने बना ली है। वही सूची सी० ई० सी० के सामने आ जाएगी, हमारे सभी लोगों को छाट दिया गया है, देखो आगे क्या होता है।—ये बातें जगजीवन बाबू ने 2 फरवरी, 1977 को कांग्रेस छोड़ने के चार-पांच दिनो पहले कही थी।

—शंकर, मेरा खुद का विश्वास अब हिल गया है कि यह क्या हो रहा है ? मैं अब तक यह सोचता था कि 'मैडम' में भारी दूरदर्शिता है, संघर्षों में ही इनका व्यक्तित्व खिलता है, कोई न कोई रास्ता ये निकाल लेंगी, लेकिन लगता है कि अब हम लोग कहीं न कहीं गिरे चले जा रहे हैं और इन्दिरा गांधी ने 'डेमोक्रेसी' के अलावा कोई और रास्ता चुन लिया है। भूल जाओ अब पिछली बातों को। मैं स्वयं नहीं कह सकता कि अब भारत में पुराना युग लौटकर आयेगा कि नहीं ?—आपात्काल के दौरान जब मैं भारी मानसिक संत्रास के बीच से गुजर रहा था, तो प्रायः डा० कर्ण सिंह के पास चला जाता था, उन्होंने एक रात मुझ से उपर्युक्त बातें कही।

—हम लोगों के जीवन का एक भयकर काला पक्ष आ गया है। क्या इसी दिन के लिए गांधीजी ने रामराज्य का सपना देखा था और क्या आजादी की लड़ाई इसी दिन के लिए लड़ी गयी थी ?—छलछलाई आंखों से मोरारजी भाई की खाली कोठी की बगल में अपने लॉन में बैठकर श्री विजय भगवती ने मेरे सामने अपने ये उद्गार प्रकट किए थे।

—यह देश ऐसा है, जिसमें चौदह वर्षों तक राम की खड़ाऊं रखकर भरत ने राज्य किया था। फिर यह चुनाव-फुनाव क्या ? मौज से इन्दिराजी को राज करने दो और तुम लोग भी मौज करो। कोई यहां बोलने वाला नहीं है। सब बकवास है, क्रान्ति-क्रान्ति ! जयप्रकाश जेल में जा रहे थे, तो उन्हें लगता था कि आज दिल्ली में आग लग जायेगी, सारा भारत जलने लगेगा, लेकिन किसी ने चूं-चपट नहीं किया। मैंने हरियाणा को ऐसे ही ठीक नहीं किया था। सबसे बड़ा समाजवाद है—डण्डा। कोई चूं-चां करे, चूतड़ पर दो-चार बेंत लगवा दो, अक्ल ठिकाने आ जायेगी।—रोज इसी प्रकार के भाषण भारत के प्रतिरक्षा मन्त्री चौधरी बंसीलाल के सेन्ट्रल हाल में हो रहे थे और उसमें 'हां' में 'हां' मिलाने वालों की भी कमी नहीं थी।

—अब यह आई हैं मुट्ठी में। एक-एक कर हर आदमी को बेइज्जत होना पड़ा—क्या सिद्धार्थ, क्या रजनी और क्या मैं। अब इन्हें बचाएं बंसीलाल, संजय या धवन। ये बातें 'इन्दिरा इज इण्डिया एण्ड इण्डिया इज इन्दिरा' का नारा देने वाले सदाबहार कांग्रेस अध्यक्ष श्री देवकांत बरुआ ने अपने ड्राइंग रूम में लोकसभा चुनावों के ठीक पहले कही, अपने दो तीन विश्वस्त सहकर्मियों के सामने। उन्हीं में से एक ने मुझे यह बात बताई।

—यह तो कहो कि मैं वहां इंचार्ज था कि जमानत बच गई, नहीं तो सिक्योरिटी भी बचाना मुश्किल था।—लाव से ये बातें मेरे इस प्रश्न के उत्तर

में कि रायबरेली में आपने क्या किया, श्री यशपाल कपूर ने, जो रायबरेली में इन्चार्ज थे, बरुआजी के घर पर लोकसभा रिजल्ट के चौथे या पांचवें दिन कहीं।

—हैदराबाद निजाम जब कभी किसी वजीर की नियुक्ति करता था तो साथ-साथ उसके खिलाफ चार-छः लोगों की ड्यूटी भी दे देता था कि उसके विरोध में प्रचार जारी रखो और जो गलत काम करे उसके भी आंकड़े जमा करते जाओ। अंत में जिस दिन निजाम को वजीर को हटाने की मर्जी होती थी, यही कहकर हटा देता था कि मैं क्या करूं, लोग ही ऐसा कह रहे हैं आपके बारे में, मेरी तो बिल्कुल मर्जी नहीं है कि आप हम से अलग हों, लेकिन लोगों की राय तो मुझे माननी ही पड़ती है।—यह कहानी श्री प्रकाशवीर शास्त्री ने मुझे एक दिन सुनाई और कहा कि ठीक यही स्टाइल इन्दिराजी की थी।

—'इन्दिराजी के प्रति आपकी ममता को समझ सकता हूं। मैं स्वयं उनका बहुत बड़ा प्रशंसक रहा हूं। जे० पी० आन्दोलन के प्रति पूरी सहानुभूति होते हुए भी मैंने इन्दिराजी के व्यक्तित्व के विरुद्ध कभी कोई दुर्भावना मन में न बनाई, न शब्दों में व्यक्त की। उसका कारण कोई भय नहीं, सच्चा आदर था।

'लेकिन सेंसरशिप के मुद्दे पर मैंने उनके निर्णय को कभी उचित नहीं समझा। यह सोचा था कि शायद यह एक अस्थायी कदम है और शीघ्र ही वे पुनः प्रजातांत्रिक ढांचे को सजीव कर देंगी, लेकिन इमर्जेन्सी के तीन-चार महीने बाद से ही सत्ता ने जो रूप लेना शुरू किया उससे मुझे बहुत खेद हुआ। और, इन्दिराजी के प्रति मेरे मन में जो आदर था उसको बहुत बड़ी ठेस लगी। आज भी उनके मन में यदि कोई सच्चा पश्चाताप दीखता तो मुझे बहुत संतोष होता। लेकिन खेद है कि उनके वक्तव्यों में केवल एक राजनीतिक स्वर उभर रहा है। जिस गहरी मानवीय अनुभूति की आशा उनसे की जाती है वह अभी तक तो देखी नहीं।'—18 जुलाई 1977 को एक पत्र में 'धर्मयुग' के सम्पादक और देश के सुप्रसिद्ध बुद्धिजीवी डा० धर्मवीर भारती ने मुझे लिखा।

हम इन बातों में जाना नहीं चाहते कि अभी हाल में जो पुस्तकें निकली हैं और इन्दिराजी के प्रधानमंत्री काल में उनके सम्बन्ध में जो पुस्तकें निकलती रही हैं, उनमें किस ने उनके सम्बंध में क्या लिखा है। मैं तो उन्हीं बातों या तथ्यों में जाना चाहता हूं, जिनकी जानकारी या अनुभूति मुझे स्वयं है। इसलिए क्या कहा कुलदीप नैय्यर ने और उमा वासुदेव ने और प्रमिला कल्हण ने और आर० के० मूर्ति ने और मनकेकर ने और जनार्दन ठाकुर ने—[illegible]

का जिक्र कर न तो पढने वालों का समय बर्बाद करना चाहूँगा, न 'कोट' करके अपना काम हल्का करना चाहूंगा। जिन्हें उन बातों को जानने की आवश्यकता हो, वे उन पुस्तकों के पन्नों की छानबीन करें। मैं विश्वास और आस्थापूर्वक अपनी बातें रखने में ही रूचि रखता हूं।

मुख्य रूप से इन्दिराजी के तीन रूप हमारे सामने हैं—एक तब जब जवाहरलालजी जीवित थे और इन्दिराजी साया के समान उनके साथ रहती थी—परिचारिका से लेकर विश्वस्त सचिव तक, दूसरा रूप उनका उभरकर आता है प्रधानमंत्री का और तीसरे रूप मे वे आती है हमारे सामने प्रधानमंत्री की कुर्सी से हटने के बाद। प्रधानमंत्री के रूप में भी इलाहाबाद हाई कोर्ट के फैसले के पहले की इन्दिरा गाधी और आपातकाल के बाद की इन्दिरा गाधी में भारी अन्तर है। पुरइन के पत्तों के समान जो जल के ऊपर रहते हुए भी अपने को जल में डूबने से बचाये रखते है, इन्दिराजी ने अपने को सहेजने की हर सम्भव कोशिश की, लेकिन क्या इसमें वे सफल हो पाई।

मैं कुछ पीछे की ओर लौटता हूँ। इलाहाबाद हाई कोर्ट का जब फैसला आया, तो 12 से 18 तारीख के बीच कइयो के मुह के अन्दर लार भी टपका। चव्हाणजी से मेरी बातें इस दर्म्यान विस्तार से न हो पाई थी, अत. नही कह सकता कि उनके मन मे कौन-सी बात थी और चव्हाणजी के मन से बात निकाल लेना कोई आसान काम नही है, लेकिन औरों के मन की कुछ या बहुत कुछ बातें मेरे सामने स्पष्ट थी और आज भी तरोताजा रूप में वे बातें नाच रही हैं—किसी दूब की नोंक पर शबनम बूंद के समान।

पिछले पन्नों में मैं लिख चुका हूँ कि 12 जून को जब इलाहाबाद हाई कोर्ट का फैसला आया तो 12 बजे के लगभग मैं बाबू जगजीवनराम से मिला। उनकी बातों से साफ जाहिर था कि यदि इन्दिरा गाधी त्यागपत्र देती हैं, तो उन्हें हर प्रकार से प्रधानमंत्री होना चाहिए, उनका हक है, लेकिन उन्हें शक था कि बरुआ, सिद्धार्थशंकर राय और दूसरे लोग उन्हें प्रधानमंत्री नहीं होने देंगे। समय और परिस्थिति का जायजा उन्होंने अपनी गुरु-गम्भीर और अनुभवी आंखों से कर लिया था, इसलिए हम लोगों के यह कहने के बावजूद भी कि बाबूजी, यही सही मौका है आप आगे आयें, वे तैयार नहीं हुए और मौके की तलाश में रहे। यदि उस दिन उनको भरोसा और विश्वास हो जाता कि कांग्रेस ससदीय दल का बहुमत उनके साथ हो जायेगा, तो उन्हें तैयार होने में एक मिनट को भी देर नही लगती। दूसरी बात यह भी थी कि अपने को किसी प्रकार के खतरे मे डालने को तैयार नहीं थे।

उन दिनों कृष्णकांतजी से मेरी लगभग रोज ही दो-चार घंटे बात-चीत होती थी। कृष्णकांतजी की राय यही थी कि जगजीवन बाबू से उपयुक्त व्यक्ति कोई दूसरा नही मिलेगा, लेकिन प्रश्न यही था कि क्या वे तैयार हो सकेंगे ? कृष्णकांतजी ने ही इसका उत्तर भी दिया—यह आदमी भारी लोभी और कायर है। न तो तैयार होगा और न अपने को खतरे में डालना चाहेगा। और दूसरी बात यह भी है कि बाबूजी का लड़का सुरेश किसी से कम नहीं है। उसका ही राज शुरू हो जायेगा।

लेकिन किसी के लिए भी आगे आने का मौका था 12 से 18 जून के बाद का नही, इसके बीच का। 18 के बाद से इन्दिरा गांधी ने परिस्थितियों पर काबू कर लिया था। रैलियां आयोजित की जा रही थी, पता नहीं स्वाभाविक तौर पर या भाड़े पर, लेकिन चार-छः बार अपने मकान के सामने गोलम्बर पर उनका भाषण होता था, एक तस्वीर सामने रखती थी और देवी मां चण्डी के रूप में इन्दिराजी कमर कसकर तैयार हो रही थीं, आगामी मोर्चे के लिए।

उधर विरोधी दलों अथवा विरोधी नेताओं की सक्रियता भी बढती जा रही थी। राष्ट्रपति भवन के सामने धरना शुरू हो गया था, राष्ट्रपति कश्मीर में थे, विरोधी दलों के नेताओं का कहना था कि राष्ट्रपति आयें और प्रधानमंत्री को कहे कि वे त्यागपत्र दें और नही तो उन्हे बर्खास्त करें। उधर राष्ट्रपति अपनी नियत तिथि के अनुसार भी दिल्ली नही पहुंच सके, भला कौन इस झमेले में पड़ने जाये।

इन्दिराजी की ओर से सुप्रीम कोर्ट में वेकेशन जज के सामने अपील पेश की जा चुकी थी। श्री पालखीवाला, जिनके नाम और सूरत से कांग्रेस के प्रगतिशील तत्वों को और मैं समझता हूं कि स्वयं श्रीमती गांधी को चिढ़ थी, उन्हे ससम्मान बुलाया गया और इन्दिराजी के भाग्य का फैसला उन्हे सौंपा गया। श्री गोखले, श्री सिद्धार्थशंकर राय तथा अन्य भी जो लोग अपने को विधि का पंडित मानते थे सबके सब पालखीवाला की जी-हुजूरी में थे, किसी प्रकार काम निकालना है और जहां तक मुझे याद है श्री पालखीवाला ने भी यही कहा था कि डाक्टर और वकील का पेशा ऐसा है, जिसमें जो भी शरण में आ जाये, हम उसकी रक्षा करेंगे। आपातकाल की घोषणा के बाद श्री पालखीवाला ने अपना विरोध प्रकट करते हुए श्रीमती गांधी की वकालत करने से इन्कार कर दिया।

अटकलें जारी थी। वेकेशन जज श्री कृष्ण अय्यर क्या करेंगे ? उनकी

प्रगतिशील नीतियों से जो कोई परिचित रहा है, उन्हें विश्वास था कि जो भी होगा अच्छा होगा। लेकिन दूसरी ओर ऐसे भी लोग थे जो न्यायमूर्ति अय्यर को नजदीक से जानते थे, उनका विश्वास था कि जस्टिस अय्यर किसी के प्रभाव में आ ही नहीं सकते और दूध का दूध और पानी का पानी—जो एक न्यायाधीश का कर्त्तव्य है, उससे उन्हें कोई डिगा नहीं सकता। न्याय और विधि और मुकदमा और वकील तथा पेशगी और बहस इन बातों में मैं विस्तार से जाना नहीं चाहता, कारण ये ऐसी नाजुक बातें हैं जिनमें थोड़ी भी इधर-उधर की टीका-टिप्पणी हो जाये तो लेने के देने पड़ जाते हैं, लेकिन इतना यहां जरूर कहना चाहता हूं कि जो लोग नजदीक से श्री कृष्ण अय्यर को जानते रहे होंगे, उनमें थोड़ा-बहुत एक मैं भी अपने को मानता हूं। संभवतः 1972 में 'इसक्स' के एक प्रतिनिधिमंडल में, जिसके नेता श्री कृष्ण अय्यर थे, मुझे सोवियत संघ जाने का मौका मिला था और उसके बाद वापस आने पर भी उनसे मेरा सम्पर्क बराबर बना रहा। व्यक्तित्व की जो उदारता, सरलता, स्नेह और मधुरता मैंने उनके अन्दर देखी, बहुत कम लोगों में देखने को मिलती है। ऐसे भी बौद्धिक क्षमता, सूझबूझ, व्यावहारिकता, सांस्कृतिक चेतना, साहित्य-संगीत और कला का ज्ञान—श्री कृष्ण अय्यर के व्यक्तित्व की विशेषताएं हैं। ऐसे आदमी से गलती होना कठिन ही नहीं, असंभव है।

जब सुप्रीम कोर्ट के फैसले की प्रतीक्षा की जा रही थी। उन दिनों जगजीवन बाबू से मेरी इस संबंध में बातें हुई थीं और उन्होंने स्पष्ट कहा था—सुप्रीम कोर्ट से जो भी होगा खरा न्याय होगा, कोई किसी तरह की अन्य आशा करता हो, तो व्यर्थ है।

सुप्रीम कोर्ट वेकेशन जज का फैसला आया और उसमें साफ ढंग से जिन मुद्दों पर फैसले दिए गये उनमें यह कहा गया कि जब तक पूर्ण फैसला नहीं आ जाता है श्रीमती गांधी प्रधानमंत्री बनी रहेंगी, दोनों सदनों की बैठकों में भाग लेती रहेंगी, लेकिन लोकसभा सदस्य के रूप में मतदान में भाग लेने का उनका अधिकार तब तक नहीं रहेगा, जब तक कि पूर्णरूपेण फैसला नहीं चला आता।

और मुझे उन्हीं दिनों सबसे विचित्र स्थिति लगी। लोकसभा में कई महत्वपूर्ण फैसले लिये गये, कई संशोधनों और नियमों की भूमिकाओं का मसविदा तैयार किया गया, कई महत्वपूर्ण मुद्दों पर बहसें हुईं और मतदान हुए और सदन की नेता और देश की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी मतदान में

भाग लेने से वंचित रहीं और जब-जब डिवीजन की मांग के साथ सदन में घंटी बजी, वे या तो बाहर निकल गई या मूक दर्शक के समान बैठी रहीं। जबकि अन्य मौकों पर जब कभी भी डिवीजन की मांग हुई और सदन में घंटी बजती थी, वह दौड़ी हुई अपने कमरे से आती थी और बटन दबाती थी—मतदान के लिए। लेकिन यह बड़ा उपहास था कि एक से एक महत्वपूर्ण सवालों को हल किया जा रहा था, मतदान लिए जा रहे थे और उसमें सदन की नेता या प्रधानमंत्री को मतदान का हक नहीं था और नियम-कानून बनते जा रहे थे, मिटते जा रहे थे, संशोधित हो रहे थे।

मैं स्वयं इस बात में विश्वास करता रहा हूं तथा अपने साथियों से लड़ता-झगड़ता रहा हूं कि इन्दिराजी तानाशाह नहीं हो सकती और उनकी धमनियों में जो रक्त है वह राष्ट्र के लिए पण्डित मोतीलाल नेहरू, पं० जवाहरलाल नेहरू और उनकी मां श्रीमती कमला नेहरू का एक ऐसा अंश है जो जनतन्त्र की हत्या नहीं कर सकता। विगत 6-7 वर्षों में अनगिनत बार उनसे मिलने का मौका मुझे मिला और तरह-तरह की बातें हुईं। उनके मिलने-जुलने की शालीनता, सोहार्दता, बात करने की लाघवता, व्यक्तित्व की बिखरी शिरायें मुझे प्रभावित करती रही। संसद भवन के उनके कार्यालय में, सेक्रेटेरिएट के साउथ ब्लाक में अथवा सफदरजंग या अकबर रोड स्थित उनके मकान या कार्यालय में मिलने गया तो जिस शालीनता के साथ वे मिलीं, हंसकर स्वागत किया और मुस्कुरा कर विदाई दी, इसे मैंने उनके ऊंचे संस्कारों का प्रतिबिम्ब ही माना। मैंने एक दिन इन बातों की चर्चा करते हुए भूतपूर्व संसद सदस्य श्री भागवत झा आजाद से कहा कि जो भी हो इन्दिराजी से मिलकर बड़ी खुशी होती है।

आजादजी ने उत्तर में कहा—तुम कभी जवाहरलाल से नहीं मिले इसलिए ऐसा लगता है। पण्डितजी से जब कोई मिलने जाता था तो स्वयं आगे बढ़कर कार का दरवाजा खोलते थे और विदा करते समय गाड़ी पर बैठा कर स्वयं कार का दरवाजा बन्द करते थे।

मैंने अपनी डायरी के पन्नों में बहुत कुछ उन मुलाकातों की चर्चा की है जो इन्दिराजी से होती रही और जिन-जिन मुद्दों पर बातें हुईं। अतः उन बातों की चर्चा यहां करने की आवश्यकता नहीं समझता।

मैं मानकर चलता हूं कि इन्दिराजी के समान व्यवहारिक और कूटनीति में निष्णात व्यक्तित्व दुनिया में हजार, लाख और करोड़ में एकाध पैदा होते है और अपनी दूरदर्शिता के बल पर उन्होंने दुनिया को यह दिखलाया कि

भारत का नेतृत्व किसी सूरजमुखी का फूल नहीं है, जो खिले और मुर्झा जायं, वरन् मील का पत्थर है, जो सदियों तक एक ही स्थान में गड़ा रहकर रास्ते का ज्ञान कराता है। भारत की गाद्य नीति, विदेश व्यापार नीति, विदेश नीति, रण-नीति, गृह-नीति और प्रशासन पर हर तरह से अपना दबदबा रखने का लाघव इन्दिराजी का अपना था और हर जगह यह बात भी प्रचलित थी कि भारत के किसी कोने में कुछ भी घट जायं, उसकी जानकारी इन्दिराजी को मिनटों के अन्दर हो जाती है। घर में, फोन से, किसी ड्राइंग रूम में, किसी एक-दूसरे से बातचीत करने में बराबर भय महसूस होता था, जरूर टेप हो रहा होगा, कहीं न कहीं से यह बात जरूर उनके कानों तक पहुंच जायेगी—यह चर्चा सामान्य थी।

प्रधानमंत्री के रूप में इन्दिराजी का 11 वर्षों का शासन तीन खंडों में विभक्त किया जा सकता है—पहला 1966 से 1969 तक का, दूसरा 1969 से 1975 तक का और तीसरा 1975 से मार्च 1977 तक का। 1966 से 1971 तक कह लें, इस बीच की इन्दिरा गांधी संघर्षों से जूझने वाली, व्यक्तित्व को संयोजित करने वाली, परिस्थितियों से सन्धि करने वाली, अपनी बुद्धिमत्ता और कूटनीति के बल पर दुश्मनों का मुकाबला करने वाली, एक सशक्त प्रधानमंत्री हमारे सामने आती हैं। 1971 से 1975 तक यानि लोकसभा के चुनाव के बाद से आपात्काल की घोषणा तक की प्रधानमंत्री एक र दावत नेता के रूप में दुनिया के सामने उभरती है, जिनकी बातों में एक हिम्मत है, एक संकल्प है, एक दृढ़ता है और चुनौतियों से सामना करने की ताकत है लेकिन इसके बाद इलाहाबाद हाई कोर्ट के फैसले और आपात्काल की घोषणा के बाद इन्दिराजी का चेहरा धूमिल-सा दुनिया के सामने पेश होता है। भारत में कम, दुनिया के अन्य देशों में इस बात की घोषणा हर वक्त की जाती रही कि भारत में जनतंत्र का जनाजा निकल गया है और इन्दिरा गांधी तानाशाह हो गई हैं और अपने बेटे को वे प्रधानमंत्री की गद्दी पर बैठाना चाहती हैं। इन्दिराजी की ओर से और भारतीय दूतावासों की ओर से इस संबंध में प्रचारों की कमी नहीं रही, लेकिन विशेष तौर से ब्रिटिश और अमेरिकन प्रेस इन बातों का प्रचार जमकर करते रहे और उन्हें इसके लिए एक से अनेक मसाले भी मिलते रहे। भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की जो सशक्तता और उदारता की तस्वीर दुनिया के मुल्कों में थी, वह दागदार हो गई थी और उसे जितना ही अधिक बेदाग दिखलाने की कोशिश भारत सरकार और भारतीय दूतावासों की ओर से की जा रही

थी, सब असफल सिद्ध हो रही थी। उन दिनों जो भारतीय बाहर जाते थे या बाहर से देश लौटते थे, उनसे बातें करने पर ठीक-ठीक पता चलता था कि दुनिया भारत के बारे में और इन्दिराजी के बारे मे क्या सोचती है और उसकी धारणा क्या है और उन बातों को जानकर, सुनकर दुःख भी होता था।

और प्रत्यक्ष रूप में ऐसा लगता था कि इन्दिरा गाधी ने परिस्थितियों पर काबू पा लिया है, लेकिन अन्दर ही अन्दर ज्वालामुखी भड़क रही थी और कभी भी दावानल फूटने ही वाला था। यह ठीक है कि देश का मुद्रा-कोष बढ़ा, कीमतों पर रोक लगाई गई, भूमिहीनों के बीच ज़मीनें बांटी गई, आर्थिक कार्यक्रमों के रूप में 20 सूत्री कार्यक्रमों को अमल में लाने की भरपूर चेष्टा की गई, शान्ति व्यवस्था भी रही, तस्करी पर सफल रोक लगाई गई, स्कूलों-कालेजों में शान्ति रही, औद्योगिक संस्थानों में उत्पादन की दर मे वृद्धि हुई—लेकिन क्या इससे भारतीय जनता को संतोष हो पाया?

हर जगह बड़े-बड़े बोर्ड लगाये गये—'हम सुनहरे कल की ओर बढ़ रहे हैं', '20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रम को सफल करें' 'अनुशासन ही राष्ट्र को आगे बढाता है' तथा साथ-साथ यह भी कि 'अनुशासन, कड़ी मेहनत, दूरदृष्टि और पक्का इरादा,' इसके साथ ही इन्दिराजी की तस्वीर। ट्रकों, बसो, स्कूटरों, टैक्सियों, सार्वजनिक संस्थानों, सरकारी इमारतों, हर जगह ये बोर्ड। पता नहीं इन प्रचार साधनों पर कितने करोड़ रुपयों का व्यय हुआ होगा। और उसके बाद फिर 20 सूत्री कार्यक्रमों के साझीदार के रूप में 5 सूत्री कार्यक्रम का भी जोर चला। लगा जैसे पूरा देश इन सूत्रों में बंध गया है। विनोबाजी ने एक कदम आगे बढ़कर आपात्काल को 'अनुशासन पर्व' की संज्ञा दे दी और सरकार ने इसे खूब भंजाया। इस वातावरण और माहौल में इन्दिराजी जैसी सूझ-बूझ और दूरदृष्टि रखने वाली नेता ने सच में यही समझा कि देश का वातावरण बिल्कुल मेरे पक्ष में हो गया है।

लेकिन वास्तविकता क्या थी? हजारों लोग जेलों में बिना मुकदमा अनिश्चित भविष्य के गर्भ में पड़े हुए थे। राह चलते किसी को भी पुलिस मीसा और डी० आई० आर० के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लेती थी। जेल में वह अपने भाग्य के सहारे जीता-मरता, सड़ता रहता था। 'मीसा और डी० आई० आर० का भय दिखलाकर रिश्वत की लूट हो रही थी। सामान्य जन भयभीत था। किसी की इज्जत पुलिस के हाथ में थी। जो लोग जेलों में बन्द थे, उनमें अधिकतर 20, 22, 25, 35, 40 साल के तरुण और नवजवान थे और

यह पीढ़ी इस प्रकार की होती है, जिसे झुकाना कठिन और असम्भव होता है।

श्रीमती गांधी एक के बाद एक कदम काजल की कोठरी में रखती चली जा रही थी। संसद में 42वां संशोधन पेश किया जा चुका था, दूसरी ओर जितने भी विपक्ष के नेता थे, सभी जेलों में थे और उनकी राय की परवाह किये बिना संशोधन हो रहा था, कार्यकाल बढ़ाये जा रहे थे, संविधान का स्वरूप बदला जा रहा था और उनमें अधिकांश बातें वे थी जिनसे श्रीमती गांधी को स्वयं लाभ हो रहा था तथा संस्था की शाक घट रही थी।

मैं उन दिनों भी सोचता था तो सिहरता था और आज भी सिहर जाता हूं कि इन्दिराजी के समान बुद्धिमान और परिस्थितियों को समझने वाले नेता को क्यो नही भविष्य दिखाई देता था। कांग्रेस के अधिकतर संसद सदस्य जब एक दूसरे से अकेले मे मिलते थे, तो इस बात की चर्चा करते थे कि जो भी हो रहा है, बिल्कुल गलत हो रहा है, लेकिन प्रत्यक्ष मे किसी को खांसने की हिम्मत नही हो पाती थी। उन दिनों संसद सदस्यों की हालत भीगी बिल्ली के समान हो रही थी और ऐसा व्यक्ति सामने नही आ रहा था, जो बिल्ली के गले में घंटी बांधने के लिए तैयार होता।

संजय गांधी का ऐसा रौब पार्टी के ऊपर छाया हुआ था कि हर सदस्य यही जानने की फिराक मे रहता था कि संजय गांधी क्या चाहते है? बड़े-बड़े संसद सदस्य उनसे मिलने के लिए 'क्यू' लगाये रहते थे और संजय गांधी किसी से आधी मिनट, किसी से एक मिनट और किसी से दो मिनट से अधिक बात नही करते थे। भगवान ने उन दिनों मेरी यही सबसे बड़ी लाज रखी कि मैं कभी भी उनसे नही मिला, न कभी कोई विचार-विमर्श करने गया और न तो परिचय का सौभाग्य मिला। मेरे मित्रों को दो बातों से गलतफहमिया होती रही है—एक यह कि मैंने उन दिनों संविधान सभा का समर्थन किया था और दूसरी बात यह थी कि कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा कांग्रेस के आन्तरिक मामले मे दखल देने की आलोचना की थी, अतः भाई लोग यह समझते रहे कि ये दोनों बातें मैंने संभवतः श्री संजय गांधी के इशारे पर की होंगी। लेकिन यहां मैं साफ कहना चाहता हूं कि दोनों बातें ऐसी थी, जिन्हें मैं उपयुक्त समझता था, इसीलिए दोनो का समर्थन किया था और वह भी अपनी मर्जी से, किसी के डिक्टेशन से नहीं।

मैं उन निरीह प्राणियो मे से था, जो यह नही जानते थे या जानने की आवश्यकता नही रखते थे कि श्री संजय गांधी कहां रहते हैं, कहां मिलते हैं,

क्या फोन नम्बर है तथा क्या सोचते-समझते हैं। मैं बराबर यह मानता-समझता था कि इन्दिरा गांधी दल की नेता है, प्रधानमंत्री हैं और उन्हें जब नेता मानता हूं तो उनके अनुसार चलूगा। चलता भी रहा, लेकिन जहां कहीं मन नही मिला या आत्मा को ठेस लगी कहने की कोशिश भी करता रहा। यह जरूर कहूंगा कि उन्होंने बातें मानी हों या नही, लेकिन सुनी जरूर।

इन्दिरा गांधी—प्रश्नों के दायरे में, यह महत्वपूर्ण सवाल है हमारे सामने। विशेष तौर से निम्नलिखित प्रश्न ऐसे है, जिनका हल हर कोई ढूंढना चाहता है और उत्तर के लिए अटकलें लगाता है, लेकिन स्वयं श्रीमती गांधी को छोड़कर शायद ही इन बातों का सही उत्तर कोई दे पाये—

क. इलाहाबाद हाई कोर्ट के फैसले के बाद श्रीमती गांधी ने इस्तीफा क्यों नही दिया ? क्या वे देना चाहती थीं ? क्या किसी ने उन्हें रोका ? किसने और क्यों ? क्या उन्होने अपने विवेक से काम नही लिया ? क्या उन्हें इन बातों का आभास नही था कि भारत की जनता इन बातों को कभी पसन्द नहीं करेगी ?

ख. श्री संजय गांधी को इतना बढावा देने का राज क्या यही था कि उन्हें भारत का भावी प्रधानमंत्री बनाया जाये ? क्या श्री संजय गाधी से श्रीमती गांधी स्वयं भी दबती थी या डरती थी ? क्या यह बात सही है कि कई मौकों पर घर में श्री संजय गांधी ने श्रीमती गांधी यानी अपनी मा को अपमानित किया था, जैसा कि कई विदेशी पत्र-पत्रिकाओं में बातें आती रही ? या श्रीमती गांधी का प्रेम केवल पुत्र प्रेम था, जो मां को हर उचित-अनुचित दिशा की ओर ले जा रहा था ? क्या सच में श्री संजय गांधी में अपनी सूझ-बूझ थी ?

ग. क्या इन्दिराजी ने कभी अपने वरिष्ठ सहयोगियों से गूढ़ विषयों पर विचार-विमर्श किया ? क्या इन्दिराजी का विश्वास अपने वरिष्ठ सहयोगियों पर था ? क्या यह बात सही है कि हर किसी पर नजर रखी जाती थी और 'रॉ' तथा 'सी० बी० आई०' पर ही विश्वास करके श्रीमती गांधी अपना राज-काज चला रही थी ?

घ. क्या आपात्काल की घोषणा का निर्णय उन्होंने किसी की सलाह से किया या स्वयं यह फैसला लिया ? जयप्रकाशजी, मोरारजी भाई, अटलबिहारीजी, श्यामनन्दन मिश्र जैसे बड़े नेताओं और श्री चन्द्रशेखर, मोहन धारिया, रामधन जैसे अपने ही सहयोगियों को गिरफ्तार करने का फैसला क्या श्रीमती गांधी का बिल्कुल अपना था ?

च. मार्च 1977 में लोकसभा के चुनाव का निर्णय किस आधार पर श्रीमती गांधी ने किया ? क्या इसके लिए उन्होंने किसी ज्योतिषी, किसी भविष्यवक्ता, किसी स्वामी से राय ली थी या 'इंटेलिजेन्स' के आधार पर यह निर्णय लिया गया था ? क्या श्रीमती इन्दिरा गांधी को यह अखंड विश्वास था कि चुनाव में सफलता हमें मिलकर रहेगी ?

छ. क्या श्रीमती इन्दिरा गांधी को किसी ने यह सलाह नहीं दी कि चुनावों के पहले सभी राजनीतिक बंदियों को रिहा कर दें, इमर्जेन्सी उठा लें और अखबारों पर से सेंसरशिप भी हटा लें ? क्या उनके मन में ये बातें नहीं आई कि जो लोग 18-19 महीनों बाद छूटकर आयेंगे, उनकी पूजा जनता आरती उतारकर करेगी और साथ भी देगी ?

ज. क्या श्रीमती इन्दिरा गांधी ने यह सोच लिया था कि पुलिस और डंडों के बल पर देश कब्जे में आ जायेगा ? क्या उनके अन्दर यह चेतना कभी न आई कि जिन पद्धतियों के बल पर राज-काज किया जा रहा है, जनता इसे पसन्द नहीं करेगी ? क्या भारतीय जनता के दिल से सम्मान की भावना बिल्कुल मिट गई है ? क्या नजदीक रहने वाले लोगों ने श्रीमती गांधी को गुमराह नहीं किया ? अनजान में वह मकड़ी के जाले में फंसी या जान-बूझकर ? क्या उन्हें यह विश्वास था कि रुपयों और साधनों के बल पर हम चुनाव जीत जायेंगे ?

ये कुछ ऐसे सवाल है, जो जनमानस में हिलोरें लेते रहते है और इनका उत्तर शायद कभी श्रीमती इन्दिरा गांधी स्वयं दें, तभी मिले। यों चर्चाओं में बहुत सारी बातें सामने आती है, जिन्हें सत्य के करीब रखकर हम इन बातों को परख सकते हैं।

जहां तक आपातकाल का सवाल है, जो बातें हमारे सामने आई हैं, उनसे यह जाहिर हुआ है कि श्रीमती गांधी ने इसकी घोषणा के पहले अपने मन्त्रि-मण्डल की भी बैठक नहीं की और न तो अपने वरिष्ठ मन्त्रियों से सलाह ली। यह बिल्कुल सही है; कारण उसके बाद मुझे स्वयं ये बातें श्री जगजीवनराम और डा० कर्ण सिंह ने बताई थीं कि फैसले के बाद उन्हें जानकारी मिली और 26 की प्रातः जब कैबिनेट की जो बैठक बुलाई गई, औपचारिक रूप से उसमें यह कह दिया गया। यह भी चर्चा सुनने में आई कि कैबिनेट में एकमात्र मन्त्री सरदार स्वर्ण सिंह ने पूछने या कहने का साहस किया कि यह इमर्जेन्सी कब तक रहेगी और क्या बिना इमर्जेन्सी लगाये या अरेस्ट किये हम समस्या का समा-

धान नहीं कर सकते थे ? इसका उत्तर सरदार साहब को मन्त्रिमण्डल से हटाकर दिया गया ।

अनेक जगहों में ये बातें आई हैं, खासकर श्री कुलदीप नैय्यर ने 'जजमेंट' में लिखा है कि श्री सिद्धार्थशंकर राय उन लोगों में हैं, जिन्होंने 'इमर्जेन्सी' लगाने की सलाह दी और राष्ट्रपति के पास तक श्रीमती गांधी के साथ गये । इस सम्बन्ध में मेरी बातें श्री सिद्धार्थशंकर राय से हुईं ।

—क्या आपने ही श्रीमती गांधी को 'इमर्जेन्सी' लगाने की सलाह दी थी, जैसा कि 'जजमेंट' तथा अन्य जगहों में कहा जाता है ?—मैंने एक दिन सिद्धार्थ बाबू से पूछा ।

—श्रीमती गांधी ने मुझे जो गोपनीय कागज देखने को दिये, उनसे यह लगता था कि देश में भयानक अराजकता फैलने वाली है और यदि इसे रोका नहीं गया तो कहीं यह 'सिविल वार' का रूप न ले ले । उन्होंने मुझ से यह जानना चाहा था कि ऐसी स्थिति में मैं क्या कर सकती हूं ? मैंने उन्हें बतलाया कि आन्तरिक आपात्काल की घोषणा हो सकती है ।—सिद्धार्थ बाबू ने मेरे सवाल का जवाब दिया ।

—लेकिन सिद्धार्थ दा, आपको यह नहीं लगता कि आपात्काल का दुरुपयोग किया गया और देश तबाह हो गया ?—मैंने उनसे दूसरा सवाल किया ।

—मैंने श्रीमती गांधी को यह नहीं सुझाव दिया था कि किसी को गिरफ्तार किया जाये । बल्कि मैंने बंगाल में पूरे देश में सबसे कम लोगों को 'अरेस्ट' किया और उसमें भी राजनीतिक लोगों को तो और भी गिरफ्तार करने के मैं खिलाफ था । यहां तक कि एक दिन हावड़ा स्टेशन पर उतरने के साथ ही श्री ज्योतिर्मय बसु, एम० पी० गिरफ्तार कर लिये गये और मुझे जब इसकी सूचना मिली तो मैंने फौरन खुद से आदेश देकर छुड़वाया और आदेश में यह भी लिखा कि उन्हें अच्छी गाड़ी पर ले जाकर घर पहुंचा दिया जाये ।—सिद्धार्थ बाबू ने अपनी बातें स्पष्ट कीं ।

सवाल-जवाब अपनी जगह पर है, लेकिन यह सर्वमान्य सत्य है कि इन्दिराजी ने अपने सहयोगियों और वरिष्ठ साथियों पर भी विश्वास नहीं किया था, उसका नतीजा उन्हें भुगतना पड़ा । उन्होंने ऐसे लोगों को बढ़ावा दिया, मंत्रिमंडल में या उसके बाहर, जो द्वितीय या तृतीय श्रेणी के लोग थे और जिनमें यह प्रतिभा नहीं थी कि देश को चला सकते । इसी प्रकार राज्यों का हाल था—शतरंज के मोहरों के समान मुख्यमंत्रियों को हटाया और बैठाया जाता था । किस से क्या गलती हुई, यह किस लिए हटाया जा रहा है, यह नया

आदमी क्यों लाया जा रहा है, किसी को कुछ भी पता नहीं चलता था। यही हाल कांग्रेस संस्था का हो रहा था। अध्यक्ष अपने बल-बूते पर नहीं, मर्जी पर थे।

रामलखनजी बराबर मुझ से इन्दिराजी के सम्बन्ध में एक बात कहा करते थे—उनके पास एक आधार (मेजरमेंट स्टॉक) होता है कि कौन आदमी कितना आगे बढ़े, उससे आगे नहीं, जिससे वह हमारे लिए खतरा न हो जाये, इसलिए जैसे बढ़ने के पहले ही किसी लत्तर को छांट दिया जाता है, उसी तरह इन्दिराजी भी किसी को पूर्ण विकसित होने के पहले ही 'कट' कर देती हैं।

इन्दिराजी का मूल्यांकन करते समय इतनी बात मैं साफगोई के साथ कहना चाहूँगा कि उनके पास जो भारी भीड़ थी, वह चाटुकारों, खुशामदी तत्वों और जी-हुजूरों की। किसी ने साफ बात उनके सामने रखी नहीं और यदि किसी ने रखने की कोशिश की, तो वह कोप-भाजन बना। हर समय, हर काल में राजा-महाराजाओं और बड़े सत्ताधारी लोगों के पास ऐसा ही होता आया है, साथ ही वे कान के बड़े कच्चे होते हैं। इन्दिराजी में भी ये दोनों बातें थी। जो लोग उनके पास न पहुंच पाते थे, उनकी यदि किसी ने शिकायत पहुंचा दी, तो उसी पर वह विश्वास कर लेती थी और वैसा ही अपना निष्कर्ष निकाल लेती थीं। किसी पर यदि वह नाराज होती थीं तो खुश होना तो दूर की बात रही, कैसे उसे हर तरह से दंडित करते रहें, यह प्रतिशोध की भावना उनमें शायद भारत के किसी भी राजनीतिज्ञ से अधिक थी और इसके शिकार एक-दो नहीं, अनेक लोग हुए। यदि किसी के मुंह से हंसी-मजाक में भी इन्दिराजी के बारे मे कोई बात निकल गई और उसकी रिपोर्ट उनके पास पहुंच गई, तो फिर उस आदमी की शामत और उसका भविष्य खतरे मे।

एक बार मैंने इन्दिराजी से यह कहा कि चन्द्रशेखरजी, कृष्णकान्तजी आदि से आपको हर समस्याओं पर बातें करनी चाहिए, तो उन्होंने तुरंत जवाब दिया—ये लोग मेरे बारे में तरह-तरह की बातें करते हैं।

—कृष्णकान्तजी के पास मैं बराबर आता-जाता रहता हूं, उन्हें देखता हूं, और उनके परिवार को देखता हूं तो श्रद्धा हो आती है। उनकी पत्नी घर मे झाड़ू देती हैं, खाना पकाती है, बर्तन साफ करती हैं, और मां कपड़े धोती हैं और भी घर का सारा काम करती रहती हैं। कभी भी मैंने उनके घर में दो-तीन सब्जी बनते नहीं देखा और बच्चों के शरीर पर जो कपड़े होते है, बड़े ही साधारण ढंग के। मेरी समझ में पार्टी मे ऐसे ईमानदार और सच्चे गाधीवादी व्यक्ति की जरूरत है।

—मैंने इन्दिराजी को कहा, लेकिन उनकी आंखें शून्य में तैर रही थीं। इसका कारण यह था कि उन्हें इन नैतिक मूल्यों में कोई विश्वास नहीं था। बल्कि ऐसे लोग जिनके शराब का बिल महीने में तीन-चार हजार रुपयों का होता होगा, जिनके घरों में दो-दो, तीन-तीन एयर कंडीशनर लगे हुए हों, जिनके शरीर पर कभी भूल से भी खादी नहीं पड़ी हो और जिनका जीवन अनैतिकताओं का मिला-जुला पुंज हो, ऐसे लोगों को कांग्रेस में ज्यादा तरजीह देती थीं।

इसी भांति इन्दिराजी को यह गंवारा नहीं था कि कोई ऊंचे या मर्यादित कुल-खानदान का ऐसा व्यक्ति जिसमें निष्ठा हो, वह आगे बढ़ जाये। पता नहीं क्यों इसे वह खतरे के रूप में लेती थीं। गांधीजी की पौत्री श्रीमती सुमित्रा कुलकर्णी, आई० ए० एस० मध्य प्रदेश मे कलक्टर थीं। गांधी परिवार की वे प्रथम सदस्या रही जिन्हें इन्दिराजी ने कलक्टरी से इस्तीफा दिलवाकर राज्यसभा का सदस्य बनाया, लेकिन उसके बाद सत्ता या संस्था मे उन्हें किसी भी ऊंचे पद पर नही बैठने दिया—यह क्यों? बात साफ थी, जहां तक देश को दिखलाना रहता था या उपयोग करना रहता था कि गांधीजी के परिवार को भी मैंने तरजीह दी या गांधी-परिवार भी मेरे साथ है, वहां तक वे अपना काम निकाल लेती थीं, लेकिन उसके बाद किसी को आगे बढ़ने देना वे खतरे से खाली नहीं समझती थीं कि कहीं उसके पांव जम न जायें। यह ओछापन उनके संस्कारों की देन नहीं कहा जा सकता है, कारण मोतीलाल, जवाहरलाल, मां कमला नेहरू—सब के सब इतने उदार, ऊंचे, भावुक, दयावान, करुण और मानवीय थे कि उनका अंश भी इन्दिराजी में न आ पाया था। हां, जहां तक कूटनीति और राजनीति की बात है, उसमें निःसन्देह वे अपने पिता और दादा से भी आगे निकल गई थीं।

श्री श्यामनन्दन मिश्र उन दिनों प्रायः एक जुमला कहा करते थे, जिसे शायद उन्होंने किसी भाषण में लोकसभा में भी कहा था। वह यह कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू और श्रीमती इन्दिरा गांधी में एक ही फर्क है कि पंडितजी जब किसी पर सुबह नाराज होते थे तो शाम तक वे इसी चिन्ता में रहते थे कि बदले में उस आदमी को किस गद्दी पर बैठा दूं और इन्दिराजी जब किसी पर सुबह-सुबह नाराज हो जाती हैं, तो शाम होते-होते उसकी यह नौबत आती है कि वह इस दुनिया में रह पायेगा या नही?

जिद्द की उनमें पराकाष्ठा रही। इस जिद्द को मैं कभी भी संकल्प की संज्ञा नहीं दे सकता। चीन-भारत युद्ध के समय लोकसभा के कतिपय सदस्यों

ने जब जाकर जवाहरलालजी से यह कहा कि श्री कृष्ण मेनन को आप हटा दें, तो नहीं चाहते हुए भी पंडितजी ने श्री मेनन को प्रतिरक्षा मन्त्री पद से हटा दिया। लेकिन दूसरी ओर कितनी बार न जाने कितने संसद सदस्यों, राज्यों के नेताओं, तटस्थ लोगों ने इन्दिराजी से श्री ललितनारायण मिश्र को हटाने के लिए कहा, लेकिन हटाना तो दूर रहा, उन्हें वे राज्यमन्त्री से कैबिनेट मन्त्री, कांग्रेस कार्यसमिति का सदस्य और उनके मन के अनुसार विभागों का आवंटन करती रहीं। जनमत या लोकमत या संस्था के साथियों की राय की कभी उन्होंने कोई परवाह ही नहीं की।

एक पत्रकार मित्र श्री हीरालाल चौबे ने एक दिन मुझ से इस सम्बन्ध में अच्छी बात कही—जब-जब मंत्रिमण्डल का पुनर्गठन होता है, तो लोगों में यह चर्चा जोरों से होती है कि ललित बाबू 'ड्राप' किये जा रहे हैं और मैं अपनी आंखों देखता हूं कि ललित बाबू के ड्राइंग रूम में मंत्रिमण्डल का पुनर्गठन और विभागों का आवटन हो रहा है।

बात बिल्कुल सही थी। ललित बाबू और श्री उमाशंकर दीक्षित में जब पटरी नहीं बैठी, तो ललित बाबू ने श्री दीक्षित से पहले गृह छिनवाया और बाद में वे मंत्रिमण्डल से भी हटा दिये गये। इसी प्रकार श्री के० सी० पन्त भी आगे न बढ़ें, यह ललित बाबू की ही योजना थी, इसीलिए उन्होंने पन्तजी को गृह से हटवाकर ऊर्जा दिलवा दिया और कभी कैबिनेट का दर्जा नहीं मिलने दिया।

यहीं मैं हिल जाता हूं। ललित बाबू आज नहीं हैं, अतः उनके बारे में मैं कुछ भी ऐसी बात लिखना उचित नहीं समझता, जो विवादास्पद हो। लेकिन इतना मैं जरूर कहूंगा कि 1971 के मार्च महीने में जब मैं एम० पी० चुनकर आया, तो ललित बाबू का काफी स्नेह मेरे ऊपर था और मैं भी उनकी काफी इज्जत करता था। कभी वे रात को दस बजे मुझे फोन करके बुलायें, कभी 12 बजे रात में गाड़ी भेज दें और कभी शाम को 6-7 बजे ही बुलावा आ जाये। उनके घर पर मैंने अनेकों बार एक से अनेक चेहरे देखे, जिनकी चर्चा करना उचित नहीं समझता हूं, लेकिन मैं उस 'कम्पनी' में अपने को 'एडजस्ट' नहीं कर सका और 1972 शुरू होते-होते मैं उनके चंगुल से बिल्कुल अलग हो गया। इतना जरूर कह सकता हूं कि ललित बाबू राजनीति के एक मंझे हुए खिलाड़ी थे और श्री बंसीलाल, श्री कपूर, श्री धवन, श्री धीरेन्द्र ब्रह्मचारी आदि उनकी 'कम्पनी' के सदस्य थे। ललित बाबू में यह ताकत थी कि प्रधानमंत्री से जो भी काम वे चाहते थे, करा लेते थे, चाहे वह नैतिक हो या अनैतिक तथा यह भी मैंने अपनी आंखों देखा और कानों सुना था कि

प्रधानमंत्री से यदि कोई उनके विरोध का आदमी मिलने वाला होता था, तो ललित बाबू ऐसी व्यवस्था करते थे कि उसे प्रधानमंत्री हाउस में 'इन्टरव्यू' ही नही मिले या प्रवेश ही नहीं हो।

जो नैतिक मूल्यों का त्याग कर देते है, ऐसे लोग ऊपर से भले जबरदस्त दिखाई दें, लेकिन अन्दर से बड़े कायर और बुजदिल होते हैं। उन्हें सदा यह भय लगा रहता है कि उनकी कलई कही न खुल जाये या वे रंगे हाथों कही पकड़े न जायें या उनके बारे में कही कुछ छप न जाये या 'बड़े दरबार' मे उनकी कोई बात न पहुंच जाये। ज्यादा समय ऐसे लोगों का ऐसे ही ताने-बाने बुनने में बीतता है और वे स्वयं मकड़ी के जाल में फसते चले जाते है।

एक बड़ा-सा प्रश्न मेरे सामने है कि इन्दिरा गाधी ने मानवीय अनुभूतियों को क्या सच में तिलांजलि दे दी थी या नैतिक मूल्यों को छोड़ दिया था ? मैं इस संदर्भ में केवल दो बातें कहना चाहूंगा।

मेरे एक सम्माननीय मित्र है, जिनकी लड़की की शादी बहुत धूमधाम के साथ हुई, भारत सरकार के एक बहुत बड़े अधिकारी के लड़के से। लड़के ने आई० एफ० एस० किया था और लड़की भी हर दृष्टि से सुशील, सुन्दर और संस्कारों वाली थी। लड़की के चाचा उन दिनों ससद सदस्य थे और लड़के के पिता की पहुंच सीधे प्रधानमत्री तक थी। यह भूमिका भाग है, असली कहानी की शुरूआत यह है कि शादी के बाद लड़की और लड़के में अनबन रही, उसका मुख्य कारण यह था कि लड़का किसी और लड़की से प्रेम करता था तथा लड़के के मां और बाप दोनों लड़की को हर तरह से तंग करें कि अपने घर से पैसा और सामान मंगवाओ, दहेज में पूरा सामान हम लोगों को नही मिल सका है आदि-आदि। इसी बीच लड़के की पोस्टिंग विदेश में हो गई और लड़की वालों ने सोचा कि लड़की यदि अपने पति के पास वहा चली जाये, तो दोनों मिल-मिलाकर प्रेम से रह लेंगे, पिछली बातें जहां की तहां रह जायेंगी। और इसी उम्मीद में लड़की के माता-पिता ने उसे पति के पास विदेश भेज दिया।

लड़की जाने के लिए तो चली गई, लेकिन वहां भी उसके पति ने अपने दुर्व्यवहार की आदत नही छोड़ी और एक रात पति जब पीकर किसी पार्टी से आया तो, उसने पत्नी को बांधकर पीटा और दो बजे रात मे विदेश की उस कड़कती ठंड मे, उस पशु तुल्य पति ने अपनी पत्नी को घर से निकाल दिया और लौटकर यदि उसने पांव भी रखा तो जान से मार डालने की धमकी दी।

रात में बेचारी लड़की पास के ही एक भारतीय दूतावास के पदाधिकारी

के घर जाकर रुकी और सवेरे वह राजदूत के पास इस शिकायत को लेकर गई। जिस किसी ने वह घटना सुनी—थू-थू कर उठा। राजदूत इस बात को बढ़ाना नहीं चाहते थे, कारण वे लड़के के पिता का प्रभाव जानते थे और स्वयं को खतरे में डालना नहीं चाहते थे। इसलिए उन्होंने कृपापूर्वक लड़की के लिए भारत का टिकट कटवाकर दिल्ली लौटने की व्यवस्था कर दी। उस दिन दिल्ली से भारतीय दूतावास को किसी काम के लिए फोन गया, तो वहां के किसी पदाधिकारी ने दिल्ली के अधिकारी को इस घटना की सूचना दी और कहा कि लड़की के 'गार्डियन' को दिल्ली में वह खबर कर दे। उधर लड़के ने भी दिल्ली अपने पिता को खबर भेज दी कि लड़की कहीं दिल्ली पहुंचकर कोई गड़बड़ी नहीं करे, अतः एयरपोर्ट में ही पिता उससे कुछ कागजों पर हस्ताक्षर करवा लें, जो बाद में काम दे सकें।

लड़की जब पालम पहुंची तो उसके एक बहुत नजदीक के रिश्तेदार, जो दिल्ली में बहुत बड़े पद पर थे वहां उसे लेने के लिए हाजिर थे। साथ ही लड़के के पिता उर्फ उस लड़की के श्वसुर भी वहां अपने लोगों के साथ उपस्थित थे, उसे अपने घर ले जाने के लिए और उसके बाद उससे अपने अनुसार कागज तैयार करवाने के लिए, जिससे उनके बेटे का भविष्य कहीं खतरे में न पड़ जाये। पालम पर उस रात भारी रस्साकस्सी हुई। लड़की के रिश्तेदार ने कहा कि मैं इसे अपने साथ ले जाऊंगा, उधर लड़के के पिता ने कहा—मेरी यह बहू है, मैं ले जाऊंगा। मामला गर्म हो उठा दोनों ओर से पुलिस-सिपाही, एयरपोर्ट के कतिपय अधिकारी इस मामले में भिड़ गये। अन्त में जीत लड़की के रिश्तेदार की हुई। लड़की उनके साथ चली गई और दूसरे दिन वह अपने चाचा के साथ प्रधानमंत्री से मिलने उनके संसदीय कार्यालय मे एक ज्ञापन के साथ पहुँची। सौभाग्य या दुर्भाग्य से मैं भी उस समय प्रधानमंत्री से मिलने उनके कार्यालय मे गया हुआ था, वहीं मुझे वह लड़की मिली और उसके चाचा, जो संसद सदस्य के साथ-साथ मेरे करीब के मित्र भी हैं, मिल गये और लड़की ने रोते हुए सारी बातें प्रधानमंत्री को सुनाईं और कहा कि आप भी एक औरत हैं, मां है, मैं आपसे न्याय की भीख मागने आई हूं। इन्दिराजी ने उसे न्याय का आश्वासन भी दिया और मुझे यह भी पता चला कि भारतीय राजदूत के पास उन्होंने इस सम्बन्ध में रिपोर्ट के लिए लिख भी दिया और वहां से रिपोर्ट भी आई, जिसमें लड़के की गलती और दुर्व्यवहार एवं उससे भारत के प्रति विदेशियों में भी घृणा भाव की बातें लिखी हुई थी।

लेकिन उसके बाद? अपेक्षा यह की जा रही थी कि इन्दिराजी प्रधानमंत्री,

के साथ-साथ एक नारी भी हैं और नारी-हृदय की सम्पूर्ण भावनाओं के साथ वे इसका सही फैसला करेंगी और उस दुश्चरित्र, अविवेकी और पाशविक अधिकारी को विदेश में अपनी पत्नी के साथ किए इस महान् अपराध के लिए दण्डित करेंगी, लेकिन नहीं, हुआ कुछ और ही। लड़के के पिता का प्रभाव काम आ गया, प्रधानमंत्री को उनसे अनेकों काम लेने होते थे, नैतिक और अनैतिक, इसलिए उनका प्रधानमंत्रीत्व और उनके अन्दर की स्त्री, राजनीति से ऊपर नहीं उठ सकी और नतीजा यह हुआ कि पूरी फाइल दबा दी गई, लड़के के पिता ने जो चाहा वही हुआ और लड़की के पिता और चाचा को भी कई तरह से फंसाने के उपाय किये गये, तंग किया गया।

लेकिन यहीं यह कहानी खत्म नहीं हो जाती है। मैं उस परिवार की तथा लड़की की दयनीय हालत देखकर कांप गया था और द्रवीभूत था, अतः मैंने इस सम्बन्ध में लोकसभा मे प्रधानमंत्री से एक सवाल पूछा। किस्मत की बात, मेरा वह प्रश्न पहले नम्बर पर आ गया। लोकसभा में मेरे प्रश्न के साथ-साथ कितने अनुपूरक भी सामने आते और तब माजरा खुलता। लेकिन नहीं, यह सब सम्भव कहां था? प्रधानमंत्री सचिवालय के एक बड़े पदाधिकारी मेरे पास उपस्थित हुए और उन्होंने कहा कि प्रधानमंत्री ने मुझे आपके पास भेजा है, आपका जो सवाल आ गया है, उसे आप 'विदड्रा' करलें। प्रधानमंत्री कहती हैं कि इससे व्यर्थ में एक झमेला उठ खड़ा होगा।—कहते हुए उन्होंने पहले से ही टाइप किया हुआ एक कागज मेरे सामने रख दिया, जिसमें लोकसभा के महासचिव के नाम लिखा था कि मैं अपना अमुक प्रश्न जो अमुक तिथि को तारांकित सूची में आ रहा है, उसे किन्हीं अप्रत्याशित कारणों से वापस लेता हूं। भला उस समय किस की हिम्मत थी कि प्रधानमंत्री के आदेश का उल्लंघन कर दे। मैंने हस्ताक्षर कर दिए और बाद मे प्रधानमंत्री के अन्य सूत्रों से भी तसदीक किया तो पता चला कि हां, सही में प्रधानमंत्री ने ही यह कहलाया था कि मैं प्रश्न वापस ले लूं। यह 1973 के अंत की कहानी है।

दूसरी कहानी भी सुना दूं। इन्दिराजी के मंत्रिमण्डल के एक वरिष्ठ या कनिष्ठ मन्त्री विदेश गये। जाते समय ही 'एयर इंडिया' के अपर क्लास में 'सर्व' कर रही एक एयर होस्टेस की सुन्दरता पर मोहित हो गये। विदेश मे जब तक वे रहे, तब तक उस महानगर में 'एयर इंडिया' से मेडिकल लीव ग्रान्ट करवाकर उन्होने उस एयर हास्टेस को अपने ही होटल के एक कक्ष मे रखा और भारत लौटने के बाद यह व्यवस्था की कि वह 'एयर इडिया' की नौकरी छोड़ दे और जितने पैसे उसे वहां से मिलते हैं, उससे डेढ़े-दुगने पैसों की

व्यवस्था किसी और कम्पनी द्वारा वे करवा देंगे। लड़की मोह और लोभ में आ गई। कहा जाता है कि उसके लिए दिल्ली के एक बड़े 'फाइव स्टार' होटल में एक सूट रिजर्व किया गया, जहां मन्त्री महोदय की रातें बीतती थी। और इसी बीच बेचारी लड़की गर्भवती हो गई। उसने अपने अनिश्चित भविष्य को निश्चित करने की प्रार्थना अपने मित्र-साथी-अभिभावक मन्त्री से की। वे पहले तो भुलावा देते रहे, लेकिन बाद में उदासीनता दिखलाई—यह कहते हुए कि तुम किसी से शादी कर लो। लड़की इस बात के लिए तैयार नहीं थी। उसने साफ कहा—इस हालत में मुझ से कौन शादी करेगा? क्यों नही आप ही मुझ से शादी कर लेते?

मामला गम्भीर होता गया। महीने आगे की ओर सरकने लगे। मन्त्री महोदय ने आना-जाना कम कर दिया और बाद मे बन्द ही कर दिया। लड़की ने एक दिन हिम्मत दिखाई, वह मन्त्री महोदय के घर पर पहुंच गई। सौभाग्य से मन्त्री महोदय घर पर ही थे। उन्होंने उससे कहा—तुम्हें यहां नही आना चाहिए था। मैं कामों में फंसा था, इसलिए नहीं आ सका। आज आकर तुम्हारी सारी व्यवस्था करूंगा।

लड़की कुछ संकल्प लेकर आई थी, उसने कहा—मैं यहां से जाने के लिए नहीं आई हूं। आपके ही घर मे रहूंगी। मेरी लाज कही नहीं बिक सकती, आपको 'शेयर' करना होगा।

मंत्रीजी ने गिड़गिड़ाकर उसे समझाया और स्वयं होटल तक छोड़ आये। उसके दो-तीन दिनों तक वे फिर गये, लेकिन फिर जाना बन्द कर दिया और उस लड़की को असामाजिक तत्वों से डराया-धमकाया गया कि यदि उसने मंत्री महोदय का नाम ले लिया, तो उसकी जान समाप्त कर दी जायेगी।

लड़की के लिए भयानक संत्रास के क्षण थे। एक ओर कुआ, दूसरी ओर खाई। करे तो क्या करे। तभी उसकी आंखों मे बिजली चमकी—प्रधानमंत्री भी तो एक नारी हैं तथा ये मंत्री महोदय उन्हीं के मंत्रिमण्डल मे हैं। क्यों नही मैं अपनी सारी बात उनसे जाकर कह दूं। शायद कोई रास्ता निकल आये।

प्रधानमंत्री सवेरे साढ़े आठ बजे आम जन से मिलती थी। वह भी एक दिन उसमें जाकर खड़ी हो गई और जब प्रधानमंत्री उसके सामने आईं, तो उसने कहा कि मैं अकेले में आपसे दो मिनटों का समय चाहती हूं। भला यह कैसे सम्भव था कि प्रधानमंत्री हर किसी को अकेले में समय दे पातीं। उन्होंने कहा कि क्या बात है, यही कहिए? उस लड़की ने वहीं पर संक्षेप में रोते हुए

अपनी बात कह दी और रोते हुए इन्दिराजी से कहा–आप स्वयं एक नारी है, जानती हैं कि औरत के लिए इज्जत सबसे बड़ी चीज है, मैं अब क्या करूं ?

प्रधानमंत्री ने उस लड़की को जवाब दिया—मैं इसमें क्या कर सकती हूं। और आपके पास इन बातों के क्या प्रमाण हैं कि 'अमुक' मिनिस्टर का इसमें हाथ है ?

लड़की को अविलम्ब बाहर जाने का आदेश हुआ। लेकिन वह भी एक जीवट की लड़की थी, उसने सोचा कि दिल्ली में हर जगह वह इस बात को पहुंचा देगी और मंत्री महोदय के घर पर जाकर अपनी जान दे देगी। अब उसके लिए और चारा ही क्या था ? मंत्री महोदय को जब इसकी सूचना मिली, तो वे घबराये। अंत में उन्होंने सोचा कि कोई रास्ता निकालना आवश्यक है, नहीं तो मेरी मिनिस्टरी खतरे में पड़ जायेगी। उन्होंने एक-दो अपने विश्वस्त लोगों से बिचवानी करवाकर इस मामले को समाप्त करवाने की प्रार्थना की। कहा जाता है कि अंत में यह फैसला हुआ कि मंत्री महोदय उसे दो लाख रुपये नगद दें और कहीं भी विदेश में कोई नौकरी लगवा दें, जिससे वह वहां जाकर अपनी व्यवस्था कर सके। मंत्री महोदय ने दोनों व्यवस्थाओं के साथ अपना पिण्ड छुड़ाया।

इन दोनो उदाहरणो से एक ही बात उभरती है—क्या प्रधानमंत्री चाहती तो दोनों मामलों में न्याय नही कर सकती थी ? क्या वह न्याय से भागती थीं या अपने सहयोगियों से डरती थी ? क्या उन्होने नैतिक मूल्यों को त्याग दिया था ? इन प्रश्नों का उत्तर मैं पाठकों के ऊपर ही छोड़ता हूं।

दिल्ली, 22 नवम्बर, 1969। स्थान—मावलंकर भवन। कांग्रेस की आहूत बैठक। श्री टी० टी० कृष्णमाचारी द्वारा झंडोत्तोलन। उसके बाद विभाजित कांग्रेस की बैठक का प्रारम्भ।

—जब आज हम सब यहां कांग्रेस की बैठक प्रारम्भ करने के लिए इकट्ठे हुए हैं, बहुगुणा ने मुझे बताया कि मुझे कांग्रेस से निकाल दिया गया है। मेरे दादा पं० मोतीलाल नेहरू ने कांग्रेस की सेवा की, मेरे पिता पं० जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस के एक स्तम्भ रहे, मेरे पूरे परिवार ने कांग्रेस के झंडे के नीचे आजादी की लड़ाई लड़ी और आज मुझ से यह हक भी छीन लिया गया कि मैं कांग्रेस की प्रारम्भिक सदस्य भी रहूं।—कहते हुए इन्दिराजी का गला भर आया, वे आगे नही बोल सकी और उनकी आंखों से आंसू उनके गालों पर गिर पड़े। सारी सभा सन्न थी। किसी को काटे तो खून नहीं। मेरी आंखों में भी आंसू आ

गये और मैं समझता हूं कि बैठक में भाग ले रहे आधे से अधिक लोगों की आंखों में इन्दिराजी की आवाज ने आंसू ला दिये थे। मेरी बगल में बिहार के ही श्री नवलकिशोर सिंहा बैठे थे, उन्होंने मेरे कान में बुदबुदाकर कहा—शंकर-दयालजी, औरतों के आसुओं ने विश्व इतिहास के कई अध्याय बनाए हैं।

और सच में वही हुआ। कांग्रेस ही नहीं, पूरा देश इन्दिराजी के साथ हो गया। जो पीछे छूट गये या जो संगठन कांग्रेस के साथ रहे, उन्होंने अपनी भयानक गलती महसूस की। डा० रामसुभग सिंह और श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा जैसे लोग, जो इन्दिराजी के सबसे बड़े आलोचकों में थे, वे भी कांग्रेस में शामिल हो गये और 1971 के चुनावों के बाद देश की राजनीति का नक्शा बदल गया—जहां देखो 'जगजीवनराम की कांग्रेस' जीत रही है और 'निजलिंगप्पा की कांग्रेस' मात खा रही है।

इन्दिराजी के व्यक्तित्व का जादू था, जो हर किसी के सिर पर चढ़कर बोल उठा, सारे देश ने उन्हें एकमात्र और एकछत्र नेता माना। 4 अप्रैल, 1971 को बंगला देश के संदर्भ में भारत की विजय पर हर्ष प्रकट करते हुए विरोधी दल के एक सशक्त नेता और मुखर संसद सदस्य श्री अटलबिहारी वाजपेयी, जो आज भारत के परराष्ट्र मंत्री हैं, उन्होंने बड़े ही मार्मिक शब्दों में इन्दिराजी के सम्बन्ध में कहा था—आज केवल एक पार्टी है और केवल एक नेता। इन्दिरा गांधी दुर्गा हैं और वे महिषासुर का मर्दन कर दें।

रामधारी सिंह 'दिनकर' जैसे कवि ने बड़े ही उन्मुक्त स्वर में उन दिनों गाया—

> मां, बहुत दिनों के बाद तुमने
> विजय का मुकुट पहना है,
> बेटे तो तुमने बड़े-बड़े पैदा किये थे,
> लेकिन यह मुकुट, एक बेटी का दिया गहना है।

दुनिया के हर राजनेता ने, हर पत्र-पत्रिका ने 1971 में इन्दिरा गांधी के विजय के गीत गाये, जय-जयकार किया, प्रशस्तियां गाईं गईं—लगा कि इतिहास एक बार पुनः समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त के समान इन्दिरा गांधी के पावों पर आकर पुष्प अर्पित कर रहा है। बात सही भी थी, इन्दिराजी ने देश को एक अभिनव गौरव दिया था, सोये या झुके या भूखे भारत में एक नई चेतना जागी थी—इन्दिरा गांधी न तो प्रधानमंत्री थीं और न कांग्रेस दल की नेता—वह देवी या दुर्गा की अवतार थीं और इसीलिए मैंने उस साल बिहार और बंगाल में देखा था कि लोगों ने विजयादशमी के अवसर पर दुर्गा

की जो मूर्तियां बैठाई थीं उनकी बगल में इन्दिराजी की मूर्ति भी उसी श्रद्धा और सम्मान के साथ बैठाई गई थी। लेकिन दुर्गा की प्रतिमा हर साल दशमी के दिन प्रवाहित की जाती है और दूसरे साल फिर नई प्रतिमा बैठाई जाती है। इन्दिराजी की प्रतिमा को भी साथ-साथ लोगों ने कहीं गंगा की पवित्र धारा मे, कहीं किसी दूसरी पवित्र नदी में प्रवाहित किया था, लेकिन दूसरे साल या तीसरे साल मैंने दुर्गा की बगल मे कोई दूसरी मूर्ति नहीं देखी थी। यह क्यों ?

प्रश्नों का जीवन्त सिलसिला शुरू है। क्या प्रकृति का नियम है कि हर व्यक्ति ऊंचाई की सीमा रेखा छूकर फिर नीचे गिरता है ? राजनीति में मैं इसे स्वीकार करने के लिए तैयार नही हूं।

मैं इन्दिराजी की जीवनी प्रस्तुत करने नहीं जा रहा हूं और न तो क्रमबद्ध तरीके से उनसे सम्बन्धित घटनाओं का ब्योरा ही प्रस्तुत करने जा रहा हूं। मेरे मन मे कई प्रश्न थे, जिन्हें मैंने रखने की कोशिश की है। आज स्थितियां भिन्न हैं। कभी दुनिया के सबसे लोकप्रिय व्यक्तियों में इन्दिराजी का नाम आया था और दुनिया के अनेक देशों में इनके नाम का उदाहरण दिया जाता था। प्रधानमंत्री से भी बढ़कर किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व होता है। आखिर महात्मा गांधी तो कभी सत्ता में नही गये, लेकिन बराबर सत्ता का मुकुट उनके चरणों पर झुकता रहा। लेकिन क्या इन्दिराजी ने यह समझ लिया था कि व्यक्ति की ऊंचाई के लिए पद की गरिमा आवश्यक है ? यदि नही, तो फिर प्रधानमंत्री की कुर्सी उन्हे क्यों इतनी प्यारी थी ? और उसके बाद भी वंश-परम्परा का मोह उन्हें क्यों सता रहा था ? क्या यह बात सही है कि कुर्सी के पीछे जितना ही दौड़ा जाये, कुर्सी उतनी ही दूर घसकती जाती है और जितना ही कुर्सी को हम अपने से अलग करें, वह पास आती है ?

इन्दिराजी प्रधानमंत्री नही रहीं, उसके बाद कितनी चर्चाएं सामने आई है। मुख्य रूप से यह कि वे राजनीति में रहें या न रहें। यह चर्चा बेकार है किसी भी व्यक्ति को खुद यह फैसला करने का हक होना चाहिए कि उसे क्या करना है और राजनीति में रहना है, न रहना है। दूसरी चर्चा इस आशय की भी होती रही है कि इन्दिराजी कांग्रेस में रहें या बाहर। कुछ लोगों का जिनमें जयप्रकाशजी का उल्लेख करना आवश्यक है, कहना है कि कांग्रेस उनके नेतृत्व मे आगे नही बढ़ सकती है। इसमें भी मैं कोई तर्क नही समझता, कारण यह फैसला कांग्रेसजनों को करना है कि इन्दिराजी का नेतृत्व रहेगा या नहीं। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि इन्दिराजी को चाहिए कि वे

कुछ दिनों के लिए राजनीति से अलग बैठ जायें, एक-दो साल बाद फिर लोग उन्हें याद करेंगे और बुलायेंगे।

भविष्य को कोई नहीं जानता कि क्या होगा, क्या नहीं, लेकिन इस सच्चाई से हम आंख मूदकर नहीं रह सकते कि आज भी जनता में इन्दिरा गांधी के लिए आकर्षण है और गरीब जनता मे उनके प्रति खिचाव है। तभी तो पिछले दिनो पवनार और बेलछी की यात्राओं में हर जगह उन्हें लोगों की भीड़ देखने-सुनने को जुटी। इन्दिरा गांधी आज विवादो की नेता हैं। वहां जायें, वहा न जायें और उनके आने-जाने को लेकर भी अनेक टिप्पणियां हो रही हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि अपनी हर यात्रा वह किन्ही विवादों के बीच से शुरु करती हैं। बिहार में उन्हें 18 अगस्त को आना था, लेकिन जब उन्हें यह पता चला कि विरोधी दल के नेता श्री यशवन्तराव चव्हाण 16 अगस्त को जा रहे हैं, तब उन्होने अपना कार्यक्रम 13 का ही बना लिया। इसी प्रकार यह कहना भी कठिन है कि उनकी बेलछी यात्रा बेलछी के लिए थी या पटना मे जयप्रकाश बाबू से मिलकर आशीर्वाद ग्रहण करने के लिए।

कहने वालों का यह कहना है कि पहले इन्दिराजी पवनार गईं, बाबा से आशीर्वाद ग्रहण करने, लेकिन वहां के आशीर्वाद से इन्दिराजी को न शक्ति मिली और न शान्ति। तब उन्होने पटना की यात्रा निर्धारित की। सन्त भी वही कारगर आशीर्वाद दे सकता है, जिसमे शक्ति होती है। पवनार के सन्त ने पिछले दिनों अपनी शक्ति खो दी और वे कर्ममुक्त हो गये, लेकिन पटना के कदमकुंआ स्थित सन्त ने कर्म मे रहकर अपनी कुंडलिनी जागृत की और शक्ति का स्रोत इकट्ठा किया, अतः इन्दिराजी को जितनी शान्ति यहां के आशीर्वाद से हुई, पवनार के आशीर्वाद से नहीं।

राजनीतिक अध्येताओं का कहना है कि इन्दिराजी बिना राजनीति रह नही सकती हैं, इसलिए वे यह नही चाहती हैं कि दृश्य से अलोप हो जायें। इसीलिए उनके चरण इस भांति उठते हैं कि जलजला बना रहे। और यह भी मानी हुई बात है कि जनता पार्टी या भारतीय राजनीति के सिर पर इन्दिराजी का अप्रत्यक्ष भय बना रहता है। कही वे फिर आ न जायें ? यह भय लोगों को एक भी बनाता है और एक होने से रोकता भी है।

इन्दिरा गांधी स्वयं ठीक से यह निर्धारित नही कर पा रही हैं कि क्या करें; क्या न करें। एक-एक करके उनके सगी-साथी जिस प्रकार जनता पार्टी द्वारा जलील किए जा रहे हैं या तरह-तरह के मामले-मुकदमों में फंस रहे हैं, उससे उनकी चिन्ता और बढ़ती होगी। साथ ही विगत भूलों के लिए उनके

मन में कितनी प्रायश्चित की भावना है, यह भी कहना कठिन है। उन्होंने भूलें जरूर स्वीकार कीं, लेकिन जनता का कहना है कि उसके लिए उन्हें किसी प्रकार की ग्लानि नही है। उनके जो शब्द इस संबध में आते हैं वे पश्चाताप के न होकर, राजनीति के हैं।

पं० राजेन्द्र मिश्र, कभी बिहार प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे। बिहार में पुराने राजनीतिक महारथियों में उनकी गिनती होती रही और आज भी 84 साल की आयु में भी उनका मस्तिष्क, स्वास्थ्य तथा कर्मठता किसी से कम नही है। राजनीति से दूर रहकर भी राजनीति के संबंध मे समझ-बूझ रखने वाले ऐसे लोग बहुत कम है, अतः मैंने राजेन्द्र मिश्र से पूछा कि पंडित जी आप निःसंकोच और ईमानदारीपूर्वक यह बताएं कि इस संबन्ध में आपके विचार क्या है ?

—क्या पूछते हो, इन्दिराजी के सम्बन्ध में? बिना किसी दावपेच के मैं यह कहूँगा कि उनके मन में अपने द्वारा किए गये किसी भी अनुचित कार्यों के लिए कोई दु ख या ग्लानि नही है। मैं बहुत गौर से अखबारों में यह पढ़ता रहता हूं कि कहीं उनके किसी वक्तव्य या वाक्य में एक भी शब्द यह देखने को मिलेगा कि बंसीलाल, संजय, धवन, कपूर आदि लोगों ने जो कुछ किया गलत किया, लेकिन मुझे तो यह देखने को नहीं मिला। इसका अर्थ यह हुआ कि जो कुछ भी हुआ है या उनके नाम पर किया गया है, उनके लिए वह न तो किसी को दण्ड का भागी समझती है और न स्वयं पश्चाताप की अधिकारिणी मानती हैं।—राजा बाबू ने बहुत ही संतुलित और दुःखी हृदय के साथ ये बातें कहीं।

इन्दिराजी जब अभी हाल में (13 अगस्त, 1977 को) बेलछी गईं, तो लौटकर 14 अगस्त को उनका भाषण बिहार प्रदेश कांग्रेस कमेटी के मुख्यालय सदाकत आश्रम मे हुआ। वहा भी उन्होंने विशद रूप से 5 सूत्री योजनाओं की चर्चा छेड़ी और कहा कि इसमे कौन-सी बात गलत थी ? अब कौन कहे कि जिस रूप में इसे क्रियान्वित करवाने की चेष्टा की गई, वही सबसे बड़ी गलती थी।

मैं स्वय बहुत साफ दिल-दिमाग रखने वाला आदमी हूं। इन्दिराजी के प्रति श्रद्धा भी रखता हूं तथा उनके व्यक्तित्व में जो आकर्षण है, उसे भी मानता हूं। लेकिन क्या देश की जनता को उनमें फिर से वही आस्था हो सकेगी, जो 1969 में या 1971 में थी ? इस सवाल के सामने मुझे कुछ जवाब ही नहीं सूझता है। ठीक है, जहां कही वे जायेगी वहां कांग्रेसजनों की भी बड़ी जमात

उनके स्वागत के लिए जुटेगी और जिस रास्ते वे गुजरेंगी, जनता की पंक्तिवद्ध कतार भी उन्हे मिलेगी, लेकिन क्या उन्हें पहला नेतृत्व मिल सकेगा। और कभी भी सर्वमान्य नेता हो पायेंगी ?

राजनीति के द्वारा वह गुट बना सकती हैं, किसी पद पर पहुंच भी सकती हैं, जनता का गुस्सा भी शान्त हो गया तथा जनता पार्टी से जो आशा थी, उसकी पूर्ति कठिन है, अतः उसका लाभ भी इन्दिराजी को मिलेगा, लेकिन उनके हर कदम के साथ एक प्रश्न भी खड़ा हो जायेगा, लेकिन का। यह भी सही है कि उनका ही एक ऐसा जादुई व्यक्तित्व भी है, जिससे जनता पार्टी के नेता घबराते हैं, बहुत से लोग खौफ खाते हैं, हवा में थरहिट भी आती है—परन्तु यह भी उसके साथ ही सही है कि उनका भय जनता पार्टी को एक भी बनाए हुए है तथा सब के बावजूद जनता पार्टी के लोग इस बात पर सहमत हो जाते हैं कि इन्दिरा को नही आने देना है और वह भय सबों को एक में बांधे रहता है। कई विज्ञ राजनीतिक पंडितों और वरिष्ठ पत्रकारों का कहना है कि इन्दिरा गांधी यदि मौन होकर एक साल के लिए भी राजनीतिक दृश्य से अलग बैठ जातीं, तो अपने संघर्षों मे ही जनता पार्टी टूट जाती।

मैं जानता हूं कि अनेक लोगों ने उन्हें यह सलाह दी कि कुछ दिनों तक आप मौन रहे और देखें कि क्या होता है, लेकिन इन्दिराजी को यह सह्य नहीं हुआ और उन्होंने अपना पुराना ढर्रा शुरू किया। कांग्रेस के जो लोग उनसे मिलने जायें, उनसे वह कहती थीं कि क्या बताऊं, मैं तो कुछ कहना नही चाहती हूं, लेकिन कांग्रेस अध्यक्ष 'फंक्शन' ही नहीं कर रहे हैं और संसदीय दल के जो लोग उनके पास इधर जाते हैं, सबों से यह कहती हैं कि मुझे तो यह शिकायत रोज मिल रही है कि कांग्रेस संसदीय दल कुछ काम ही नहीं कर रहा है, यों ही चव्हाणजी बैठे हुए हैं। पहले भी उन्हे जब किसी के खिलाफ वातावरण बनाना होता था या हटाना होता था तो बातों की शुरूआत ऐसे ही करती थी। मेरी समझ में अब समय कठिन है। कांग्रेस संसदीय दल के नेता श्री चव्हाण और कांग्रेस के अध्यक्ष श्री ब्रह्मानन्द रेड्डी की अवहेलना कर इन्दिराजी का कांग्रेस मे चल पाना अब कठिन ही नहीं, असंभव होगा। और यह भी लोग पसन्द नही करते हैं कि कांग्रेस अध्यक्ष या संसदीय दल के नेता किसी के हाथों का खिलौना हो। पहले ही ऐसी परिस्थितियों का निर्माण हुआ, जिसके कारण संस्था को भारी मुंहकी खानी पड़ी। और श्री ब्रह्मानन्द रेड्डी को भी इन्दिराजी ने ही बनाया, किसी और ने नहीं, फिर उन्हें

इतना जल्द हटाने की साजिश करना या यह कहना कि किसी काम के नहीं है, कांग्रेस अध्यक्ष की गरिमा को ही समाप्त करना है।

14 अगस्त, 1977। पालम हवाई अड्डा। कलकत्ता, रांची, पटना, लखनऊ होकर आने वाला बोइंग जहाज 410, संध्या 5 बजे ज्यों हवाई पट्टी पर रुका कि सबसे पहले एक यात्री अपने कंधे से एयर-इन्डिया का बैग लटकाये उतरा और वह सामने लगी 'इंडियन एयर लाइन्स' की बस पर जाकर बैठ गया। हवाई अधिकारियों ने निवेदन करना चाहा कि आप चाहें तो पैदल ही चली चलें, लेकिन नही, यात्री ने अपना आसन ग्रहण कर लिया था। और जब विमान अधिकारी ने बस ड्राइवर को गाड़ी बढ़ाने के लिए कहा, तो उस यात्री ने बड़ी शालीन आवाज में इसका विरोध किया—क्यों, और लोगों को भी आ जाने दीजिये।

और यात्रीगण आये, बस जब भर गई, तब वह बढाई गई और हल्की मुस्कुराहट के साथ वह यात्री उतरकर आगे बढ़ी, हर किसी ने आश्चर्य के साथ देखा, संभ्रम के साथ देखा, कुछ ने नमस्कार किया, कुछ ने मुह बिचकाये, कुछ ने धीरे शब्दों में यह भी कहा—क्या जमाना है, दो-चार-महीनो में ही क्या से क्या हो गया!

यह यात्री कोई और नही, भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी थीं जो वेलछी से लौटकर आ रही थी और जिनकी वेलछी यात्रा ने एक बार बहुतों को भनभना दिया था। आखिर वह क्यों जा रही हैं, कैसे उन्हें जाने से रोका जाये, कैसे क्या किया जाये? लेकिन इन्दिरा गांधी एक बार संकल्प करती हैं, तो जल्द उससे पीछे नहीं हटती है, यह उनके व्यक्तित्व की विशेषता है। मैं स्वयं उनके काफिले में पटना से चला था वेलछी के लिए और जब वे हरनौत से आगे विहारशरीफ चली गई थीं, तब मैंने इतमिनान की सांस ली थी और वापस लौटकर पटना चला आया था। लेकिन नहीं, इन्दिरा गांधी यदि वेलछी नही जातीं तो वह उनके चरित्र को [illegible] बनाता, वह भारी कठिन मार्ग तय कर, जीप से, ट्रैक्टर से, पैदल, [illegible] से वहां गईं और 12 बजे रात में लौटकर पटना पहुंचीं। जो [illegible] की दुर्गमता जानते हैं, उन्होंने मुंह में उंगली दबा ली—यह यात्रा कोई [illegible] नहीं थी। और वेलछी का नाम अकस्मात पूरे भारत में प्रसिद्ध हो गया।

उसके बाद पटना से दिल्ली तक की हवाई-यात्रा [illegible] था। हवाई जहाज पर 25-30 विदेशी यात्री भी थे, [illegible] का उल्लंघन कर इन्दिराजी की तस्वीरें तावरतोर [illegible]

श्रौर कोई-कोई बिना काम के आगे-पीछे होकर देख आया, भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री कैसी लग रही है। हर किसी को यह गौरव हो रहा था कि वह इन्दिराजी के साथ ही हवाई जहाज से यात्रा कर रहा है। श्रौर इन्दिराजी को यह भान हो रहा था कि वे अब सर्वसाधारण की कोटि मे आ रही हैं, आना ही चाहिए श्रौर जितना जल्द वे इस प्रकार अपने को 'ऐडजस्ट' कर लेंगी, उतना ही अच्छा होगा।

लेकिन इसके पहले भी श्राम बनने की उनकी कोशिश जारी है। प्रधानमंत्री पद से हटने के बाद वे एक दिन 'माडर्न स्कूल' के एक समारोह में गईं श्रौर 1 घण्टा से अधिक बैठीं। कई विदेशी दूतावासों की पार्टी में गईं श्रौर वहा साधारण पूछताछ के बीच भी अपने को खपाया। एक दिन अपने पूरे परिवार के साथ वे किसी पिक्चर हाल में सिनेमा देखने गईं। श्रौर इसी भाति एक दिन वे दिल्ली के मालचा मार्ग पर 'फूजिया' नामक चाइनीज रेस्तरा मे खाना खाने गईं, अपने किसी एक विदेशी मेहमान के साथ। इस सम्बन्ध मे मेरी बातें, उस होटल के मालिक सरदारजी से हुईं।

—यह वही सीट है, जिस पर आप बैठे हैं, वे एक महिला के साथ आईं श्रौर बैठीं तथा आर्डर दिया। पहले तो बैंयरों में ही बहस छिड़ गई कि वे नहीं हैं, कोई कहे कि वही हैं, अन्त में मैंने नजदीक जाकर देखा तो वही थीं।—होटल मालिक ने कहा।

उनके साथ की महिला कौन थीं?—मैंने पूछा।

यह तो मैं नहीं जानता।—वह बोला।

उन्होंने किन-किन चीजों का आदेश दिया?—मैंने पूछा।

क्लियर विजिटेबुल सूप, लेमन चिकेन, नूड्ल्स, चावल तथा आल्मन्ड विजिटेबुल।—होटल मालिक ने कहा।

पूरा बिल कितने का हुआ था?

चालीस रुपये कुछ पैसों का।

इसका भुगतान किसने किया था?—मेरी जिज्ञासा बढ़ रही थी।

साथ वाली महिला ने।—उसने उत्तर दिया।

बैंयरो को कुछ 'टिप' भी मिला?—मैंने फिर पूछा।

हां, दो बैंयरा थे, दोनों को 10-10 रुपये। इसके अलावा गेट पर जो दरबान था, उसे भी 10 रुपये 'टिप' मिले।

क्या अन्य लोगों ने भी उन्हें पहचाना?—मेरा अन्तिम सवाल था।

हां जी, सभी लोग उन्हें घूर-घूरकर देख रहे थे।···होटल मालिक ने

अपने लहजे में कहा। उसे भी यह गौरव हो रहा था कि इन्दिरा गांधी उसके होटल में खाना खाने आईं।

मैं जब इन्दिराजी से इसके बाद मिला तो सीधा-सा सवाल किया कि वे महिला कौन थीं, जिनके साथ आप खाने गई थीं?—उन्होंने पूछा—आपको कैसे मालूम? मैंने उनको सारा मीनू तथा बैयरों के इनाम की बातें कहकर अचंभे मे डाल दिया, लेकिन मेरा असली सवाल उनके जिम्मे था। वे बोली—एक विदेशी महिला थी, उनका नाम जान कर क्या कीजियेगा।

बाद में मुझे यह भी पता चला कि उसी होटल में श्री व्यालार रवि एम० पी० भी खाना खा रहे थे और उन्होंने जब इन्दिराजी को देखा, तो उठकर नमस्कार करने आये, इन्दिराजी ने हंसते-मुस्कुराते हुए उनसे कहा—'क्या अभी भी आप मेरे पीछे पड़े हैं?' (आर यू स्टिल आफ्टर माई ब्लड?)

आम आदमी बनने की ख्वाहिश! किसे नसीब होता है बड़ा आदमी बनना, बहुत कम सौभाग्यशालियों को। और बड़ा कठिन होता है, बड़ा आदमी बनने के बाद 'आम आदमी' बनने की चेष्टा करना। इन्दिराजी का जीवन देश के उन उंगली पर गिने-चुने सौभाग्यशालियों का जीवन है, जिसका बचपन आनन्द भवन मे, तरुणाई शांति निकेतन और 'आक्सफोर्ड' की छांव में, जवानी प्रधानमंत्री पिता की सेवा और शान में, प्रौढ़ावस्था प्रधानमंत्रीत्व में बीता हो। और प्यार-दुलार, जीवन का समर्पित सब कुछ—कमला नेहरू-सी मां की ममता, पिता की एकमात्र संतान—बेटा कह लीजिये तो वही, बेटी कह लीजिये तो वही। और संस्कारों की पाठ मिली—'बेटी के नाम पिता के पत्रों' से, बापू के ऊंचे आदर्शों से, गुरुदेव की शीतल छांह से।

कहां मिला मौका 'आम' बनने का, कार्यकर्त्ता के समान झोला लेकर गांवों की गलियों और खेतों की मेढों पर चलने का। जवाहरलाल के साथ सत्तरह वर्षों तक सखा-सेविका-सलाहकार—हर रूप में वह समर्पिता तनुजा के रूप में काम करते-करते प्रधानमंत्री के हकों-कामों-पद्धतियों-परिवेशों की आपसे आप आदी हो गई होंगी।

—आम आश्रमवासियों के समान इन्दिराजी पवनार में रहीं, जब-जब प्रार्थना के लिए, खाने के लिए, उठने के लिए, घण्टी बजी वे हर कार्यक्रम में ठीक वक्त पर हाजिर होती रहीं। एक बार भी चाय-काफी उन्होंने नहीं ली, 5 बजे शाम को आश्रमवासी भोजन लेते हैं, वे भी उसी समय सबों के साथ

पंक्ति में बैठकर वही आश्रम का सादा खाना लेती रहीं।—सुश्री निर्मला देशपाण्डे ने मुझे श्रीमती गांधी की पवनार-यात्रा के सम्बन्ध में बताया।

पवनार से इन्दिराजी नागपुर आईं प्लेन पकड़ने, वहां उस दिन दिल्ली की फ्लाइट कैंसिल हो गई, तब वे बम्बई गईं, वहां एयरपोर्ट पर काफी देर रुकी और तब दिल्ली आईं।

आम आदमी की कठिनाइयां और मजबूरियां।

लेकिन क्या सभी बातें निर्विकार रूप से उन्हें सह्य होती होंगी? क्या उन्हें वे दिन याद नहीं आते होंगे? क्या आम आदमी की मजबूरियों और कठिनाइयों को देखकर वे यह नहीं सोचती-समझती होंगी कि जीवन में पहले 'आम आदमी' बनने की जरूरत है, तब 'विशेष आदमी'। और भगवान न करें कि कोई 'विशेष-आदमी' होने के बाद 'आम आदमी' की पीड़ा झेले।

श्री डी० पी० यादव, भारत सरकार में 6 वर्षों तक उप-शिक्षा मंत्री रहे। भला आदमी, सीधा-सच्चा-नेक इन्सान, काम में भी दक्ष, कार्यकर्त्ताओं के लिए इज्जत और मित्रों के लिए सहानुभूति। हारने के बाद मंत्री पद से हटे तो एक दिन मैंने पूछा—'डी० पी० सच-सच बताइये, कैसा लगता है अब?'

ईमानदारी से डी० पी० यादव ने जवाब दिया—भाई साहब सच-सच बतायें, संकोच के मारे घर से निकलने का मन नहीं करता है। कहां पी० ए०, पी० एस०, चपरासी सब हाजिर, गाड़ी का दरवाजा तक वे ही खोलें और कहां अब हर काम खुद से करो। मंत्रिमण्डल में आने के बाद आदमी बेकार हो जाता है, टेलीफोन तक लगाने की आदत नहीं रहती है। आप ही लोग ठीक हैं, केवल एम० पी० नहीं रहने का ही दर्द है। जितना बड़ा पद होगा, उससे हटने के बाद कष्ट भी उतना ही अधिक होता है।

बात ठीक है—जितना बड़ा पद—हटने के बाद—उसे उतना ही अधिक कष्ट। तो फिर प्रधानमंत्री को कैसा लगता होगा?—मैं सोच में डूब जाता हूं। न एयर फोर्स का प्लेन, न हेलिकोप्टर, न सुरक्षा-दल, न ठहरने की उचित व्यवस्था, न स्वागत-सत्कार के लिए मंत्रियों की फौज और न ही अधिकारियों-पदाधिकारियों का हजूम।

इसीलिए तो इन्दिराजी जब पटना गईं तो वहां राजकीय-अतिथिशाला

में न रखकर बिहार प्रदेश कांग्रेस कमेटी के मुख्यालय 'सदाकत-आश्रम' के 'गेस्ट-हाउस' में रकीं। साधारण ही नहीं, अति-साधारण।

प्रश्न उठता है—काश, पदों पर रहकर भी 'विशेष' न होकर आदमी 'आम' रहे; तो फिर दिनों के फेर देखने को क्यों मिलें ?

इन्दिरा गांधी सब के बावजूद एक स्त्री हैं, हालांकि कई मौकों पर स्त्री कहलाना उन्हें पसन्द नहीं आया है, लेकिन कई अवसरों पर उन्होंने स्वयं को कहीं 'बहू' और कहीं 'बेटी' और कहीं 'बहन' कहकर लोगों की भावनाओं को जागृत करने की कोशिश की है। वैसे वे मां भी हैं, दादी भी हैं तथा दो-दो बहुओं की सास भी हैं। लेकिन क्या औरतीय कसौटी पर उनके व्यक्तित्व को कसना समीचीन होगा ?

दुनिया के महान दार्शनिकों, बुद्धिजीवियों, शिक्षाशास्त्रियों, राजनेताओं साहित्यकारों और मनोवैज्ञानिकों ने समय-समय पर नारी के उन पक्षों को उद्‌घाटित करने की कोशिश की है, जो हर पहलू पर प्रकाश डालते हैं। सबके बावजूद इन्दिराजी भी एक नारी हैं और जीवन की विविधताओं के बीच उनका वह पक्ष भी बिल्कुल अछूता नहीं कहा जा सकता है। उन्होंने अपने कार्यकाल में नारी जीवन को एक नई महत्ता प्रदान की थी और विश्व की नारी उसमे गौरवान्वित हुई थी। यह दूसरी बात है कि किसी ने यह भी कहा था कि विश्व-नारी वर्ष के आयोजन के ही काल में उनके द्वारा आपात-काल की घोषणा से नारी जाति का एक अलग पक्ष सामने आया था, जो आधुनिक काल में किसी नारी ने किसी जनतंत्र के साये में नहीं किया था।

हम अनुगृहीत हैं 'नवनीत' के, जिनके कारण नारी के संबंध में निम्न-लिखित सूक्तियां एक स्थान पर हमें मौजू समय में मिलीं। प्रश्नों के दायरे के इस संक्रमण-काल में इनका मूल्यांकन हर दृष्टि से समीचीन होगा—

गोट होल्ड लेसिंग—कई मामलों में सौ पुरुषों की अपेक्षा एक स्त्री कहीं अधिक कुशाग्र बुद्धि होती है।

लोप डी वेगा—स्त्री का चरित्र निःसंदेह दो परस्पर विरोधी बातों पर निर्भर है—प्रेम और प्रतिहिंसा पर।

इवान तुर्गनेव—स्त्री न केवल आत्म-बलिदान को समझ सकती है, बल्कि आत्म-बलिदान कर भी सकती है।

वोन्डेल—एक स्त्री हजार पुरुषों से अधिक शक्तिशाली होती है।

सैम्युअल बटलर—डाकू सिर्फ आपकी दौलत चाहते हैं या आपकी जान, स्त्रियां दोनों चीजें चाहती हैं।

जार्जेस कोर्तलीन—स्त्री यह कभी नहीं देखती है कि आप उसके लिए क्या कुछ करते हैं, वह तो सिर्फ यह देखती है कि आप उसके लिए क्या कुछ नहीं कर रहे हैं।

सिग्मंड फ्रायड—एक मनोवैज्ञानिक की दृष्टि से तीस वर्षों तक स्त्री की आत्मा में झांकने पर भी मैं अभी तक जिस प्रश्न का उत्तर नहीं खोज पाया हूं, और अन्य कोई व्यक्ति भी जिसका उत्तर नहीं दे सका है, वह प्रश्न है स्त्री चाहती क्या है ?

इब्सन—स्त्रियों और पुरुषों में दो भिन्न प्रकार के नैतिक नियम हैं, दो भिन्न प्रकार की नैतिक मान्यताएं हैं और वे एक-दूसरे से बिल्कुल विपरीत हैं और वे एक-दूसरे को समझ भी नहीं पाते हैं। फिर भी सामाजिक जीवन में स्त्री की हर बात का निर्णय पुरुषों के नियमों के आधार पर होता है, मानो स्त्री, स्त्री नहीं, पुरुष हो।

आज यद्यपि वे प्रधानमंत्री नहीं हैं, फिर भी एक स्त्री हैं और मां हैं। दुनिया इस बात की अपेक्षा करती है कि इन्दिराजी का कोई दूसरा रूप जो वात्सल्य का, ममता का, अनुराग का, स्नेह का और मातृशक्ति का होगा, वह उभरेगा। मैं प्रधानमंत्री से उनके हटने के बाद भी कई बार मिला हूं और उनके बाद उनके जो कार्यक्रम, वक्तव्य, भाषण, दौरे हो रहे हैं, उन्हें भी गौर से परखने की कोशिश करता हूं, लेकिन मुझे स्वयं यह बात समझ में नहीं आ पाती है कि वे क्या चाहती हैं और क्या करने जा रही हैं। अब भी उनकी मानसिकता किसी अनिश्चय-बोध के पर्दे में ढंकी-सी है।

आज कभी मुझे जो लगती है उसमें भी प्रश्नों का घेरा पैदा हो जाता है। मैं सोचता हूं कि क्या धन्धे की लड़ाई में सफलतापूर्वक लड़ सकेंगी? क्या [illegible] [illegible] क्या [illegible] [illegible] क्या [illegible] [illegible] क्या वे [illegible]

से मुक्त कर पायेंगी, जिनके कारण उनकी सर्वाधिक बदनामी हुई ? क्या वे हृदय से यह महसूस कर पायेंगी कि उनकी अपनी गल्तियों के कारण सत्ता और संस्था की यह दुर्गत हुई ? क्या वे गांधीवाद के उन नैतिक मूल्यों की रक्षा के लिए जुट जायेंगी, जो कांग्रेस की बुनियादी नीतियां रही है ? क्या भविष्य में वे उस उदारता का परिचय दे सकेंगी जो किसी मां से या बहन से या भारतीय परम्परा की नारी से अपेक्षा की जाती है ?

मैं इन बातों की तह मे इसलिए जा रहा हूं कि मै औरों के समान यह मानकर नही चलता कि इन्दिराजी का भविष्य है ही नही। जिसका गौरवमय अतीत रहा हो, उसका भविष्य यदि उससे अधिक सुनहला न हुआ, तब उसे हम सन्तोषजनक नही मान सकते। लेकिन यहां बात ही कुछ और है। इन्दिराजी प्रधानमंत्री रहीं, इन्दिराजी केन्द्रीय सरकार की मंत्री रहीं, इन्दिराजी जवाहरलालजी के साथ निजी सचिव भी रहीं, इन्दिराजी कांग्रेस की अध्यक्षा रही और उसी रूप में उनके गौरवमय अतीत को भविष्य के कंधों पर यदि लाया जाये, तब यह कहा जा सकता है कि उन्होंने उस गौरवमय अतीत की रक्षा की। यदि कांग्रेस में दरार पैदा करके, यदि विभिन्न गलत तरीके अपनाकर, यदि किसी के साथ 'कन्टेस्ट' करके—वह कुछ हो भी जाती है, तो यह उनके संतोष की बात भले हो, इतिहास के संतोष की बात नहीं होगी। क्योकि उनका व्यक्तित्व इन विभिन्न पदों या पहलुओं पर रह चुका है, नई बात क्या हुई—क्या उनका लोकसभा का सदस्य चुना जाना ? या कांग्रेस का अध्यक्ष हो जाना ? या किसी पद पर बैठ जाना ?

मेरे सामने अभी 8 नवम्बर, 1975 और 16 नवम्बर, 1975 के समाचार पत्र रखे है, जिनके हैड-लाइनों को देखता हूं तो बहुत सारी बातें मेरे चिन्तन में आती हैं। 8 नवम्बर, 1975 का पत्र बैनर हैडिंग के साथ कहता है—

'प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी का चुनाव वैध घोषित। उच्चतम न्यायालय का सर्वसम्मत फैसला। हाई कोर्ट का निर्णय और राजनारायण की अपील रद्द। *नई दिल्ली, 7 नवम्बर (प्रे० ट्र०)।* उच्चतम न्यायालय ने आज सर्वसम्मति से प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी का रायबरेली से लोकसभा के लिए चुनाव वैध करार दिया और इलाहाबाद उच्च न्यायालय का वह फैसला रद्द कर दिया जिसमें उन्हें अपदस्थ कर चुनाव के लिए अयोग्य करार दिया

गया था। उच्चतम न्यायालय ने श्री राजनारायण की जवाबी अपील को भी रद्द कर दिया।'

लेकिन इस फैसले के आने के पहले जो कुछ हुआ क्या उसे भारतीय जनता ने अंगीकार किया था? संविधान में संशोधन किए गये। रायबरेली के दूसरे उम्मीदवार श्री राजनारायण जेल में थे, उन्हें अपने मुकदमे की पैरवी के लिए एक दिन भी बाहर नहीं आने दिया गया। मुकदमे के बीच में जितनी भी खाइयां थी, पाटी गई, सत्ता द्वारा और उसके लिए जो भी व्यवस्था की गई, उसमे निष्ठाओं की कमी थी। जनता पर इसका क्या असर पड़ रहा था। यह देखने की कुछ भी कोशिश नहीं की गई। हम सबों ने उच्चतम न्यायालय के फैसले के बाद तालियां बजाईं, मिठाइयां बांटी, प्रधानमंत्री के निवास के सामने भांगड़ा नृत्य हुआ, अ० भा० कांग्रेस कमेटी के दफ्तर में बैठक बुलाकर प्रधानमंत्री को बधाइयां दी गईं, कांग्रेसजनों ने हर कोने से तार भेजकर प्रसन्नता जाहिर की, जेलों में बन्द अन्य राजनीतिक दलों के कैदियों ने, नेताओं ने—अखबारों मे देखा-सुना, आकाशवाणी से स्पेशल बुलेटिन प्रसारित की गई—लेकिन यह भी देखना आवश्यक है कि जनता ने इस फैसले को किस रूप में ग्रहण किया। क्या यह सही नही है कि श्रीमती इन्दिरा गांधी ने उच्चतम न्यायालय से यह जीत अवश्य हासिल की थी, लेकिन संभवतः वह अपने दिल से हार गई थी।

मैं क्यों यह बात कह रहा हूं, इसके लिए श्रीमती गांधी के भाषण का वे अंश देखें, जो उन्होंने फैसले के दिन अपने अभिनन्दन के उत्तर में अ० भा० कांग्रेस कमेटी के कार्यालय में व्यक्त किए थे—'अपने चुनाव के बारे में श्रीमती गांधी ने कहा कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय के फैसले के बाद मैं मायूस नहीं हुई थी, जब उस फैसले से मेरा चुनाव रद्द किया गया था। अब उच्चतम न्यायालय द्वारा उस फैसले को बदल देने पर मुझे बहुत ज्यादा खुशी नहीं हुई है। मुझे फिक्र इस बात की है कि देश किस दिशा में जा रहा है।'

—नवभारत टाइम्स, 8 नवम्बर, 1975

बहुत दिनों से यह सुनता आया हूं कि राजनीतिक कर्मी चुप नहीं बैठ सकता। लोकसभा चुनावों के बाद कांग्रेस के बहुत सारे सदस्यों, नेताओं, भूतपूर्व सांसदों और वर्तमान संसद सदस्यों ने इन्दिरा गांधी से मुलाकात की और उनसे यह भी कहा कि अच्छा हो कि अभी साल-छः महीने आप चुप रहें,

उसके बाद जनता खुद आपको बुलायेगी। हालांकि जो लोग मिलने-जुलने जाते रहे, उनमें अधिकांश लोग इसलिए भी जाते थे कि पता नही आगे क्या हो? इस बीच मैं स्वयं हार के बाद जब पहली बार उनसे मिला तो, मैंने कहा–हम लोग हार गये, यह तो दु:ख की बात है ही, लेकिन आपकी हार सबसे अधिक दुखदायी है। अभी तक विश्वास नही होता कि रायबरेली में आप कैसे हार गई?

वे इसका उत्तर कुछ दे नही पाई, कोई उत्तर आवश्यक था भी नही। लेकिन कुछ दिनो से मेरे सामने यह भी साफ था कि रायबरेली शायद हम लोग न जीत पायें। स्पष्ट कारण है उसका। 1976 के अंतिम दिनों में राष्ट्रीय ग्रामीण मजदूर कांग्रेस के प्रांतीय सम्मेलन में भाग लेने मैं रायबरेली गया हुआ था। वहां इन्दिराजी भी आई थी और उन्होंने ही इस सम्मेलन का उद्घाटन किया था। उक्त अवसर पर रायबरेली क्षेत्र के कार्यकर्ताओं की भी बैठक आयोजित की गई थी, जिसे इन्दिराजी ने लोकसभा प्रतिनिधि के रूप में सम्बोधित किया, कोई प्रधानमंत्री के रूप में नहीं। वहां मुझ से दो-तीन बुजुर्ग कांग्रेसजन मिले, उन्होंने बड़े ही दु:ख और दर्द के साथ यह कहा कि सरकार की नीति अच्छी नही है और आज अगर चुनाव हो तो हम राय-बरेली की भी सीट हार जायें।

मैंने उनसे पूछा–ऐसा आप कैसे कहते हैं? यहां तो कोई ऐसा काम नही, जो न हो रहा हो। मुझे तो ऐसा लग रहा है यहां आने के बाद कि हर पंचवर्षीय योजना के कार्यक्रमो की शुरूआत यही से होती है।

—आप ठीक कहते है, काम यहा बहुत हुआ है। लेकिन हम हारेंगे दो कारणों से, एक यह कि नसबन्दी में इस ओर बहुत जोर-जुल्म हुआ है तथा दूसरी बात यह है कि इन्दिराजी की ओर से श्री यशपाल कपूर यहां इंचार्ज रहते हैं, यदि वे ही फिर इंचार्ज रहे तो हम कभी नही जीत सकते हैं।

रात में मैं वहां की एम० एल० ए० श्रीमती सुनीता चौहान के घर पर चाय पीने गया था। भली महिला, कुछ भी कहने के पहले काफी सावधानी बरतती थी तथा डरते-डरते अपनी बातें कहती थी। दीवार को भी कान होते हैं, ऐसा वे महसूस करती थी, लेकिन जब आत्मीयता हुई तो उन्होंने विश्वास के साथ कहा—यहां कांग्रेस के किसी व्यक्ति की तो पूछ ही नही है,

सही मानी मे। सभी यशपाल कपूर से डरते हैं। पता नही किस को क्या कर देगा। उसने यहां गुण्डों-बदमाशों की टोली बनवा रखी है। उन्ही के बल पर सब करता है, जो अच्छा नहीं है। मैं तो स्वय डरके रहती हूं। कौन अपनी इज्जत देने जाये।

और चुनाव फल वही हुआ जिस की आशका वहा के कांग्रेसजनों को थी और जिस संबंध में श्रीमती सुनीता चौहान ने सहमते-झिझकते अपनी बातें कही थी। और मैं यह मानता हूं कि रायबरेली से प्रधानमंत्री की हार से एक ओर जहा लोगों को आश्चर्य हुआ वही दूसरी ओर इन्दिराजी की व्यक्तिगत हार से तकलीफ भी हुई। ऐसे लोगों को भी तकलीफ हुई जो कांग्रेस-विरोधी थे, जो तटस्थ थे, जो चाहते थे कि यहां सत्ता परिवर्तन हो और घर में बैठी ऐसी महिलाओं ने उस दिन खाना नहीं खाया, जो राजनीति का क, ख और ग भी नही जानती थी। भारत की जनता ने इन्दिराजी को एक सजा दी थी और ऐसी सजा जिसकी कोई कल्पना नही कर सकता था। दुनिया के इतिहास मे यह पहला मौका था, जब कोई पदासीन प्रधानमंत्री सदस्यता का चुनाव हार गया हो।

उस दिन अखबारों की पहली सूखियां थी—नई दिल्ली, 20 मार्च। **प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी रायबरेली निर्वाचन क्षेत्र से लोकसभा के चुनाव में जनता पार्टी के प्रत्याशी श्री राजनारायण से 55 हजार से अधिक मतों के अन्तर से हार गई हैं।**

इन्दिराजी को 1,22,517 मत मिले जबकि जनता पार्टी के श्री राजनारायण को 1,77,729 मत मिले।

रायबरेली चुनाव क्षेत्र के चुनाव अधिकारी श्री विनोद मल्होत्रा ने श्रीमती इन्दिरा गांधी के चुनाव एजेंट श्री एम० एल० फोतेदार की पुनः मतगणना करने की मांग ठुकरा दी।

श्री मल्होत्रा ने परिणाम घोषित करने से पूर्व श्री फोतेदार की यह दलील भी अस्वीकार कर दी कि एक मत-पेटी की सरकारी सील टूटी हुई पाई गई।

दुनिया के राजनीतिक इतिहास का यह एक ऐसा अध्याय था, जिसने हर किसी को हिलाकर रख दिया। हम सब अपनी हार भूल गये, रायबरेली के सदमे में। भला जब इन्दिराजी ही नही जीती, तो हम जीतकर ही क्या

करते। हार भी किस से, श्री राजनारायण से, जिन्हें जनता ने कभी भी गंभीरता से नहीं लिया और अपनी बातचीत, चाल-ढाल, क्रिया-कलाप और पहनाव-बनाव से वे बराबर हास्य के प्रतीक रहे। ऐसे श्री राजनारायण ने श्रीमती इन्दिरा गांधी को 55 हजार से भी अधिक मतों से हरा दिया था और दुनिया में कांग्रेस की पराजय से बढ़कर यही समाचार प्रमुख था।'

फिर प्रश्नों का सिलसिला शुरू होता है। आखिर इन्दिराजी हार कैसे गई? क्या उन्हें रायबरेली के आपसी झगड़ों का पता नहीं था? क्या उन्हें यह पता नहीं था कि वहां कई-कई खेमे कांग्रेस की ओर से लगे है और उनमें लोग पांव फैलाकर बैठे हुए है, केवल यह कह रहे है कि हमारी जवाबदेही नहीं है, वे जानें? क्या उन्हें यह पता नहीं था कि श्री यशपाल कपूर के सूरत से वहां के लोगो को नफरत है? क्या उन्हें पता नहीं था कि पैसों के बल पर इस बार का चुनाव नहीं जीता जा सकता है? क्या वे इस बात को नहीं जानती थी कि विरोधी दलों की पूरी ताकत उन पर लग जायेगी? क्या वे इस बात को नहीं महसूस करती थी कि चुनाव की प्रक्रिया ऐसी होती है जिसमें बड़ा से बड़ा योद्धा हार भी सकता है?

इन सारे प्रश्नों को रखकर अब क्या होगा। लोकसभा चुनावों के बाद इन्दिराजी ने अपनी प्रतिक्रिया भी यही कहकर व्यक्त की कि मुझे सबसे बड़ी, सजा मिल गई। लेकिन एक ही जीवन्त प्रश्न है यहां कि उन्हें जो सजा मिली वह उनके अपने कार्यों या कर्मों के कारण—लेकिन साथ-साथ अन्य लोगों को जो सजा मिली वह क्या उनकी वजह से नहीं? हर जगह कांग्रेस विरोधी वोटों का जो बवन्डर चला, वह इन्दिराजी को ही सामने रखकर। नवजवानों ने, बुद्धिजीवियों ने, गांवों के बड़े और प्रभावशाली लोगों ने यही कहकर कांग्रेस को हराया—यह आदमी चुनकर जायेगा तो इन्दिरा गांधी का साथ देगा।

महात्मा गांधी ने एक जगह कहा है—'पच्चास वर्षों से भी अधिक समय से मैं फल की चिन्ता न करने का अभ्यास करता रहा हूं। मुझे जिस चीज की चिन्ता होनी चाहिए, वह है साधन। और जब मुझे साधन के पवित्र होने का पूरा विश्वास होता है तो यह मुझे आगे ले जाने के लिए पर्याप्त होता है। उस आस्था के आगे सारा भय और आशंकाएं मिट जाती हैं।'

'जीवन भर सत्य पर आग्रह रखकर मैंने समझौते की खूबसूरती को

समझना सीखा है। बाद में चलकर मैंने देखा कि समझौते की भावना सत्याग्रह का एक आवश्यक अंग है। इसके कारण कई बार मेरा जीवन खतरे में पड़ गया है और मेरे मित्र मुझ से नाराज हुए हैं। लेकिन सत्य पत्थर की नाईं कठोर और कली के समान सुकुमार होता है।'

—*महात्मा गांधी का संदेश, प्रकाशन विभाग, पृ० 42*

कांग्रेस की मूलभूत नीतियों के सम्बन्ध में गाधीजी ने तथा देश के अन्य नेताओं ने भी कई बार कहा। इन्दिराजी की सबसे बड़ी भूल यह कही जायेगी कि काग्रेस की बुनियादी नीतियो को तिलांजलि देकर उन्होंने प्रधानमंत्री के पद से देश को चलाना चाहा। उसमें प्रेम, निष्ठा, विश्वास, सत्य और सिद्धान्त का स्थान गौण हो गया, उनकी शक्ति प्रमुख हो गई।

हम इसे काग्रेस की हार मानने की गलती नही कर सकते। यह व्यक्तिगत हार है और हार का कारण यह है कि काग्रेस की बुनियादी नीतियों से पलायन के कारण सत्ता का केन्द्रीकरण हो गया था, जबकि उसे विकेन्द्रित करने की आवश्यकता थी। काग्रेस के लगभग एक शताब्दी के इतिहास को इससे चोट लगी, कांग्रेसजनों की मर्यादा भंग हुई, गांधीवाद में जो लोग निष्ठा रखते थे, ऐसे लोग दिन प्रतिदिन काग्रेस से दूर होते चले गये। और इसकी परिणति हुई आपात्काल के दौरान, जब गांधीवादी प्रतिष्ठानो पर छापे मारे गये, विनोबाजी का पवनार भी इससे वचित नही रह सका और सर्वोदय और गाधीवाद के नाम से सत्ता को इस प्रकार भय और वितृष्णा थी कि उस तबके के हजारों लोग बेवजह जेलों मे डाल दिये गये।

इस सबंध में मै यहा केवल एक पत्र का अश उद्धरित करना चाहूंगा जो मुझे बिहार के एक वयोवृद्ध काग्रेस-सेवी पं० राजेन्द्र मिश्र ने 11.3.1974 को भेजा था—

'आज जो स्थिति देश की है, देहातों की है—करप्शन, मंहगी, भ्रष्टाई को कोई पूछने वाला नहीं और सभी अधिकार और पैसे के लिए सब कुछ करने वाले इस स्थिति को देखकर और फिर डेमोक्रेसी के नाम पर, शक्ति एवं पैसे के बल पर उसकी हत्या कर फिर उसी के नाम पर राजपाट चलाने के लज्जापूर्ण प्रयास को देखकर मन में प्रश्न उठता है कि क्या इसी स्वराज्य के लिए देश के हजारों-लाखों लोगों ने इतने त्याग किए ? इस नाटक, इस

बेशर्मी के पर्दाफाश करने के लिए यदि कोई शुद्ध शक्ति जगती तो उसके झंडे के नीचे एक बार इस शक्तिहीन शरीर को फिर समर्पित करता। काश, वह दिन इस जिन्दगी में फिर एक बार आता।'

यह राजेन्द्र मिश्र कौन है, इसका परिचय आवश्यक है। 80 वर्ष से अधिक आयु, बिहार प्रदेश कांग्रेस कमेटी के भूतपूर्व अध्यक्ष, वर्षों तक बिहार विधानसभा के सदस्य, डा० श्रीकृष्ण सिंह और डा० अनुग्रहनारायण सिंह के साथियों में एक, पत्र की तिथि के समय के तत्कालीन विदेश-व्यापार या रेल-मंत्री श्री ललितनारायण मिश्र के रिश्ते के भाई, एक दूसरे रिश्ते के भाई श्री जगन्नाथ मिश्र उस समय बिहार मंत्रिमंडल में सदस्य, बाद में मुख्यमंत्री, इनके अपने लड़के श्री अमरेन्द्र मिश्र कांग्रेस के ही विधायक और उनके हृदय मे जब यह आग जल रही थी, तो औरों का क्या हाल होता। 11 मार्च, 1974 को यह पत्र लिखा गया, 18 मार्च, 1974 को बिहार मे जयप्रकाशजी के आन्दोलन की शुरूआत हुई और उसके बाद पं० राजेन्द्र मिश्र अपने शक्तिहीन शरीर में शक्ति का स्रोत लेकर जे० पी० के पीछे आन्दोलन मे कूद पड़े, मौन-जुलूसों में भाग लिया, सहरसा मे जे० पी० की जनसभा की अध्यक्षता की, अपने साथ ठहराया और आन्दोलन के एक अंग रहे। क्यों ? क्योंकि नजदीक से वे इस घिनौनी व्यवस्था के दर्शक रहे थे और अन्तर में छिपा गांधीवाद इसे सहन नही कर पाता था।

क्या इन्दिराजी में यह शक्ति नहीं थी कि वे कांग्रेसजनों की इस मनोव्यथा को समझ पातीं या उनके दिल की धड़कन को देख पातीं ? इस पूरे माहौल मे नुकसान किसका हुआ, कांग्रेस का, उसकी नीतियों का, उसकी परम्पराओं का और गाधीजी और जवाहरलालजी द्वारा स्थापित उन लोकतन्त्रीय पद्धतियों का, जिनकी बुनियाद पर भारत में विश्व का सबसे बड़ा जनतन्त्र लहरा रहा था।

इन्दिराजी आज भी इन भूलो को स्वीकार करने के लिए शायद तैयार नही हैं। यदि होतीं, तो उनके एक सबसे करीब के व्यक्ति, स्वतन्त्रता आन्दोलन के एक कर्मठ योद्धा और जिन्होने हर मौकों पर आगे बढ़कर इन्दिराजी की रक्षा की ऐसे दूरदर्शी व्यक्तित्व पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र कांग्रेस से आज त्यागपत्र नहीं देते और अपना दुःख इस प्रकार नही व्यक्त करते—

'मेरा यह पत्र आपको मिलेगा उसके साथ ही साथ या एक-दो दिन बाद

कांग्रेस की प्राथमिक सदस्यता तथा अन्य कमेटियों से मेरे त्यागपत्र देने का समाचार आपको मिलेगा। यह सत्य है। अब मेरे पास ऐसा करने के सिवा कोई चारा नहीं रह गया था। आपको अवश्य दुःख होगा, परन्तु मेरी सभी बातें सुनने के बाद आप मुझ से सहमत होंगे।'

—28-8-1977 को जबलपुर से मेरे नाम लिखे एक पत्र का अंश

इन सारी बातों को रखने का मेरा एक ही उद्देश्य है, यह कहना कि इन्दिराजी ने कांग्रेस के दिग्गजों और स्वतंत्रता सेनानियों की राय ली होती, तो शायद यह स्थिति आज उनकी या कांग्रेस दल की न होती। यह ठीक है कि स्वतंत्रता सेनानियों को पेंशन दिलवाकर, उनका सम्मेलन बुलाकर, उन्हें ताम्रपत्र भेंट कर उन्होंने एक बड़ा काम किया, लेकिन जिज्ञासाओं की पूर्ति केवल आर्थिक मदद नहीं है, वह निष्ठा का परिवेश भी है।

इसमें इन्दिराजी कहीं चूक गईं और उसका नतीजा बुरा हुआ, इतना बुरा जिसकी कोई कल्पना नहीं कर सकता था।

सूर्योदय और सूर्यास्त

● 'भारत की प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी ने जून, 1975 में आपात्कालीन स्थिति की घोषणा की थी। तभी से उनका छोटा बेटा संजय एक राजनीतिक के रूप में राकेट की तेजी से ऊपर चढ़ता गया। अब वह न केवल एक मंत्री जितना वास्तविक अधिकार रखता है, बल्कि उनका उत्तराधिकारी भी है। राजनयिक सूत्रों का कहना है कि इसके साथ ही उसने विचित्र विशेषाधिकारों से युक्त व्यापारी के रूप में भी अपनी कारगुजारियां तेज कर दी हैं।'

—वाशिंगटन पोस्ट, 10 नवम्बर, 1976

●● भारत की सचित्र प्रमुख पत्रिकाओं के पाठकों के एक मत संग्रह में श्री संजय को 1976 का सर्व प्रमुख भारतीय चुना गया है।

'इलस्ट्रेटिड वीकली आफ इण्डिया' द्वारा आयोजित अपने प्रकार के इस चौथे मत संग्रह में श्री संजय गांधी को 60 प्रतिशत से भी अधिक मत मिले।

संजय की श्रेष्ठता सिद्ध करने वाले पाठकों के कुछ मत इस प्रकार हैं—1. कोई भी अन्य व्यक्ति इतने थोड़े समय तथा इतनी-सी आयु में इतना बड़ा कार्य नहीं कर पाया। 2. मां ने भारतीयों को सोने से जगाया, किन्तु संजय ने उन्हें कार्यशील किया। 3. उन स्वयंभू प्रगतिशीलों के जो दिल से इस राष्ट्र का हित नहीं चाहते, मिथ्यावादी तथा भ्रमोत्पादक नारों के पीछे छिपे झूठ की पोल खोलने की सही दृष्टि तथा योग्यता श्री संजय गांधी को ही है।

एक पाठक ने कांग्रेस के गौहाटी अधिवेशन में प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा युवकों की प्रशंसा में कहे गये वाक्यों को श्री संजय के लिए प्रयोग करते हुए लिखा—'उनकी मां के शब्दों में, श्री संजय ने हमारी भी शान फीकी कर दी।'

—नवभारत टाइम्स, 21 जनवरी, 1977

●●● श्री संजय गांधी की पोलिमिक्स की दिल्ली नगर निगम को बिक्री के मामले में जमानत की अर्जी यहां अदालत के विशेष न्यायाधीश श्री ओ० एन० वोहरा ने आज कुछ शर्तों के साथ स्वीकार कर ली।

—नवभारत टाइम्स, 27 अगस्त, 1977

●●●● मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट श्री मुहम्मद शमीम ने फिल्म 'किस्सा कुर्सी का' के मुकदमे के सन्दर्भ में श्री संजय गांधी तथा भूतपूर्व केन्द्रीय सूचना मंत्री श्री विद्याचरण शुक्ल की जमानत की अर्जी आज स्वीकार कर ली।

—नवभारत टाइम्स, 28 अगस्त, 1977

जिस दिन श्री संजय गांधी के अमेठी से लोकसभा चुनाव लड़ने का समाचार विधिवत सामने आया, उस दिन कतिपय अखबारों के समाचारो की सुर्खियां थी–'श्री संजय गांधी को कांग्रेस की केन्द्रीय चुनाव समिति ने सुलतानपुर जिला के अमेठी निर्वाचन क्षेत्र से लोकसभा का अपना प्रत्याशी बनाया है। वह पहली बार चुनाव लड़ रहे हैं। उनका मुकाबला जनता पार्टी के श्री रविन्द्र प्रताप सिंह से होगा।

'तीस वर्षीय श्री संजय गांधी ने गत डेढ वर्षों में देश की युवा शक्ति को रचनात्मक कार्यों मे लगाने का महत्वपूर्ण प्रयास किया है। उन्होंने देश को पांच सूत्री कार्यक्रम दिया जो बाद में प्रधानमंत्री के बीस सूत्री कार्यक्रम का अंग बन गया।'

—हिन्दुस्तान, 16 फरवरी, 1977

उसी दिन शाम को श्री प्रकाशवीर शास्त्री के घर पर 'नवभारत टाइम्स', बम्बई के संपादक श्री महावीर अधिकारी ने कुछ लोगों के सामने अपनी टिप्पणी दी–*अब संजय गांधी के कारण कांग्रेस को 50-60 सीटें कम मिलेंगी।*

उसी दिन मुझे लखनऊ से युवक-कांग्रेस के एक नवजवान ने पत्र दिया—अमेठी के कारण अब रायबरेली भी संकट से खाली नहीं है।

उसी दिन बिहार में एक वयोवृद्ध कांग्रेसी ने मुझ से कहा–श्री संजय गाधी को टिकट देकर इन्दिरा गांधी ने यह सिद्ध कर दिया कि उनका उत्तराधिकारी अब संजय ही होगा।

उस दिन सर्वश्री बंसीलाल, सीताराम केशरी, नारायणदत्त तिवारी, यूनुस, जगन्नाथ मिश्र, विद्याचरण शुक्ल आदि लोगों ने बड़े ही गर्व के साथ भविष्य की ओर आशाभरी निगाह से देखा, क्योंकि उनका लगाया और सींचा पौधा अब बड़ा होने वाला था।

उस दिन श्रीमती मेनका गांधी ने और भी निर्द्वन्दतापूर्वक अपने आंचल हवा में लहराये होंगे, क्योकि मंत्री-पत्नी या प्रधानमंत्री-पत्नी बनने का उनका स्वप्न अब पूरा होने ही वाला था।

उस दिन श्रीमती या सुश्री रुखसाना सुल्ताना ने गदराई आंखों से आने वाले दिनों की कल्पना की होगी, क्योंकि 'बॉस' के अमेठी से लौटकर आने के बाद दिल्ली-तख्त की रही-सही आबनूसी हीरे-मोती-पन्ने की लर अब उनके गले की शोभा बढायेगी और वे भी राज्यसभा की या किसी और सभा की सदस्या या सदर बनकर अपनी धूपछाही चश्मे से लोगों को और भी घूरती रहेंगी।

और उस दिन विरोधी दलों के संयुक्त मोर्चे जनता पार्टी का हौसला

पूरी तरह बुलन्द हो गया कि अब कोई भी उसे विजयी होने से नहीं रोक सकता।

26 जून, 1975 से लेकर 18 जनवरी, 1977 तक के काल को इतिहास के वर्णक्रम के अनुसार हम 'संजय काल' कह सकते हैं। इस बीच भारत की राजनीति में जो कुछ हुआ, देश में जो भी घटनाएं घटी, जिन सूत्रों की भी व्याख्या की गई, कहीं आपात्कालीन आफत ढाये गये, सरकार के जो भी बड़े से बड़े निर्णय हुए—यह मानकर चलना चाहिए कि उनमें संजय गांधी का प्रमुख हाथ रहा। कांग्रेस का अध्यक्ष बनाना है, वर्तमान कांग्रेस अध्यक्ष को हटाना है, मंत्रियों को अपदस्थ करना है, नये मंत्रियों की बहाली करनी है, विभागों का उलटफेर करना है, सचिवों की भी अदलाबदली करनी है, दिल्ली का प्रशासन चलाना है, बिहार या यू० पी० या राजस्थान के मुख्यमंत्रियों के रहने या जाने का फैसला है, बजट में आर्थिक नीतियों के मोड़ की बात है, विदेश भ्रमण पर प्रधानमंत्री के जाने, न जाने का निर्णय है—सभी ऐसी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष बातों का फैसला श्री सजय गांधी की भृकुटी पर निर्भर करता था।

सजय नाम इतिहास का एक गौरवशाली नाम है। महाभारत काल में सजय को दिव्यदृष्टि प्राप्त थी कि वह युद्धभूमि में जहां कहीं भी, जो कुछ भी हो रहा हो, उसकी रिपोर्ट अंधे धृतराष्ट्र के सामने रख दे। संजय ने ऐसा किया भी और एक प्रकार से हम यह भी कह सकते हैं कि महाभारतकालीन संजय धृतराष्ट्र की सूर-आंखों के लिए दृष्टि था। और यहां ? यहां संजय ने दिव्यदृष्टि रखने वाली अपनी मां की आंखों पर ऐसी पट्टी चढ़ाई कि उनकी आंखों की ज्योति भी मलिन हो गई। आखिर द्वापर और कलियुग में कुछ न कुछ तो फर्क होना ही चाहिए।

और बाद में संजय के नाम के साथ ही जुड़ गया—मारुति। मारुति—पवन या पवन-पुत्र हनुमान। हनुमान, जो एक ही छलांग में समुद्र लांघ जाने की क्षमता रखते थे, लेकिन उन्हें इस बात की जानकारी नहीं थी। समुद्र के किनारे बैठे श्री राम के दूत वानर और ऋछ समझ ही नहीं पा रहे थे कि कैसे लंका पहुंचा जाये, कौन ऐसा वीर है जो समुद्र पार कर सकेगा, उस पार जा सकेगा, जाकर लौट आयेगा, वहा की खबर ला देगा और यदि जरूरत पड़ी तो वहां अक्ल भी सिखला देगा। कोई तैयार ही नहीं हो रहा था, भला इतने बड़े समुद्र को कैसे लांघा जायेगा और कोई-कोई बड़े वीर ने यह भी उद्‌गार प्रकट किया कि यदि उस पार किसी भांति चले भी जायें, तो वापस

पाना मुश्किल है। कि तभी किसी ने पवन-पुत्र हनूमान की ओर देखा, जो निश्चित-से बैठे थे, कहीं कोई अनुराग-विराग नहीं था। उन्हें यह पता भी न था कि वे इसे लांघ सकते हैं या वापस आ सकते हैं, कि तभी किसी सयाने योद्धा ने उन्हें उनकी वीरता की याद दिलाई और उनका शरीर फूलता गया और उसमें अतुलनीय बल भरता गया और उन्होंने हुंकार ली—क्या करना है, जल्द बताओ। एक क्या, ऐसे-ऐसे कितने समुद्रों को मैं एक ही छलांग में लांघ सकता हूं।

पता नहीं किस ने संजय गांधी को उनकी शक्ति की याद दिलाई और उन्हें मारुति बनाने की प्रेरणा दी? हालांकि यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उन्होंने जब मारुति नाम को अपनाया होगा, तो उनके अन्दर एक महत्वाकांक्षा ने जन्म लिया होगा, त्रेता के हनूमान के समान ही एक छलांग में समुद्र लांघ जाने की और उन्नति के शिखर पर पलक मारते पहुँच जाने की। लेकिन कलियुग में त्रेता का वह मारुत थम गया था और नतीजा यह हुआ कि वहां तो हनूमान अपना काम पूरा कर समुद्र के उस पार जाकर वापस भी आ गये थे, लेकिन यहां श्री संजय गांधी समुद्र लांघने की महत्वाकांक्षा में इस प्रकार बीच में ही धराशायी हो गये थे कि न आसमान के रहे और न जमीन के। और खुद गये सो तो गये, साथ में ले गये प्रधानमंत्री की प्रतिष्ठा, कांग्रेस पार्टी का इतिहास और सदा-सदा के लिए भारतीय जनतन्त्र पर एक काली रेख दे गये।

जो भी बातें अब तक हमारे सामने आ चुकी हैं, उनसे यह स्पष्ट है कि संजय गांधी नाम के व्यक्ति ने डेढ़-दो वर्षों की ही अल्पावधि मे भारत का सबसे बड़ा ओहदा प्राप्त कर लिया था, हालांकि उसकी कुछ न तो घोषणा थी और न किसी को यही पता था कि इन्हें कौन-सा पद प्राप्त है— सरकार में या संस्था में। लेकिन 'संजयजी यह चाहते हैं', 'संजयजी का यह कहना है', आदि वाक्य आपात्काल के दौरान कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक एक मुहावरा बन गया था। इमर्जेन्सी के दौरान दुनिया का शायद ही कोई अखबार ऐसा हो, जिसने संजय गांधी की महत्वाकांक्षा और उनके उभरते व्यक्तित्व की चर्चा अपने कालमों में न की हो और यह भी सही है कि कहीं-कहीं संजय गांधी को जो गौरव और स्थान दिया जा रहा था, वह लगता था कि महात्मा गांधी और इन्दिरा गांधी से भी बढ़कर है।

भारतीय संविधान के अनुसार राष्ट्रपति देश का सर्वोच्च पद है और कार्यकारी शक्तियां प्रधानमन्त्री मे निहित हैं। लेकिन संजय का व्यक्तित्व

आपातकाल के दौरान जिस भांति उभरा या उभारा गया, उससे यही लगता था मानो दोनो की शक्तियां एक में सिमट गई हैं और 26 जून, 1975 से लेकर 2 फरवरी, 1977 तक संजय ही इस देश के बेताज बादशाह बने रहे। हर जगह उन्हे 'वी० आई० पी०' का दर्जा और स्वागत दिया गया, जहां कहीं भी गये मुख्यमन्त्री अपने पूरे कैबिनेट के साथ अगवानी में खड़े रहे, बाजे-गाजे, तोरणद्वार भेंट-मुलाकात सबों का आलम वही था। सुरक्षा व्यवस्था मे प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति भी मात हो गये। संजयजी शायद ही कहीं अकेले गये, हर जगह अपनी सहधर्मिणी मेनका गाधी के साथ गये और चलते समय हर जगह से 'बहू' को विदाई भी भारतीय परम्परा के अनुसार मिलना आवश्यक ही था।

इस संबंध मे बिहार में आम जनता और बुद्धिजीवियों की जबान पर एक आम चर्चा यह है कि संजय जी और मेनकाजी जब एक बार बिहार के दौरे पर आये तो तत्कालीन मुख्यमंत्री डा० जगन्नाथ मिश्र के निवास पर उन्हे रात्रि-भोज मे आमंत्रित किया गया। वहां मेनकाजी ने श्रीमती मिश्र के गले में हीरों का एक बहुत खूबसूरत हार देखा और वह खाना भूलकर हार पर ही मुग्ध हो गई और उसकी ही तारीफ करती रही। खाने के बाद डा० मिश्र ने अपनी पत्नी से यह अनुनय-विनय की कि यह हार जब मेनकाजी को इतना पसन्द आ गया है, तो इसे दे देना चाहिए। पत्नी ने इस आग्रह को स्वीकार नहीं किया, औरतों को आभूषण कभी-कभी जान से भी बढ़कर प्यारा होता है। लेकिन डा० मिश्र हार मानने वाले नहीं थे, उन्होंने मुख्यमन्त्रित्व की पूरी शक्ति लगा दी और रात भर में उत्कृष्ट सोनारों की मदद से ठीक उसी के समान हीरों का एक हार हजारों रुपयों की लागत से तैयार करवाया और सवेरे नाश्ते के बाद उसे मेनकाजी को भेंट किया गया। उसी दिन मुख्यमंत्री निवास पर ही संजयजी ने पत्रकारों से बातचीत में एलान किया कि बिहार का प्रशासन देश का सबसे अच्छा प्रशासन है और डा० मिश्र अगले 10 वर्षों तक राज्य के मुख्यमंत्री बने रहेंगे।

हालांकि इतिहास चक्र भी विचित्र होता है। दस साल का सर्टिफिकेट देने वाले और लेने वाले दोनों दस महीनों के अंदर ही कहां गये, पता नहीं है, लेकिन उस समय तो उस सर्टिफिकेट का भारी महत्व था।

आपातकाल की अवधि में भारत का शासन-सूत्र श्री संजय गांधी की भृकुटी का दास था, चाहे वह केन्द्र का शासन हो या राज्यों के प्रशासन हों। नहर से लेकर भवन तक का उद्‌घाटन संजय गाधी द्वारा संपन्न हो रहा था और

सरकारी या संस्थागत समारोहों की शोभा संजय गांधी ही बढ़ा रहे थे। नसबंदी हो या वृक्षारोपण, मील का शिलान्यास हो या विश्वविद्यालय के भवन का, सांस्कृतिक आयोजन हो या रंगारंग कार्यक्रम—सब जगह संजय गांधी। और भारत के मुख्यमंत्रियों में तो इस बात के लिए होड़ मची हुई थी कि कौन अधिक से अधिक स्वागत-द्वार बनवाकर, दुल्हन की तरह शहर सजवाकर, ट्रकों-बसों-रेलों द्वारा लाखों लोगों को जुटवाकर संजयजी का शाही स्वागत कर सकता है। बाह्य स्वागत के साथ-साथ आन्तरिक स्वागत की भी व्यवस्था करनी पड़ती थी—मारुति का शेयर बिकवाना, मारुति के लिए डीलर्स ठीक करवाना और उनसे अग्रिम दिलवाना, बसों की बाडियों का आदेश दिलवाना, रॉलरों का आदेश दिलवाना, युवक-कांग्रेस के नाम पर चंदे जमा करवाना आदि सब कुछ शामिल था।

लोकसभा चुनावों की अप्रत्याशित हार के बाद दिल्ली में कांग्रेस-कार्यकारिणी की तीन दिनों तक बैठक हुई, उसमें बंगाल के एवं हरियाणा के तत्कालीन मुख्यमंत्रियों ने बहुत मार्के की कुछ बातें कहीं। श्री सिद्धार्थशंकर राय ने कहा कि मैं अपने को कानून का एक अच्छा जानकार मानता हूं और मैंने कई कठिन मुकदमे अपने जीवन में जीते हैं। मुझे इस बात की भलीभांति जानकारी रही है कि दोषी किसे कहते हैं। लेकिन मैं यहां एक ऐसा मुकदमा स्वयं हार गया हूं, जिसके बारे में ढूढने पर भी मुझे यह नहीं पता चल सका कि मेरा जुर्म क्या था? उन्होंने आगे अपने जुर्म का विवरण देते हुए कहा कि मैं एक प्रान्त का मुख्यमंत्री हूं और मेरा जुर्म यही है कि एक ऐसे आदमी की अगवानी के लिए मैं हवाई अड्डे पर हाजिर नहीं रह सका या सलाह-मशविरा नहीं किया जो न तो सरकार में किसी पद पर है और न संस्था में।

इसी प्रकार हरियाणा के मुख्यमंत्री श्री बनारसीदास गुप्त ने कहा कि जब-जब संजय गांधी की हरियाणा-यात्रा होती थी, तब-तब कांग्रेस के कम से कम दस हजार वोट खराब होते थे और दिल्ली नजदीक होने के कारण हरियाणा में उनका सबसे अधिक दौरा हुआ, नतीजा यह हुआ कि हम वोटों में पूरे हिन्दुस्तान में सब से नीचे 15 प्रतिशत पर चले गये। उन्होंने इसकी व्याख्या करते हुए कहा कि संजयजी का दिल्ली से ही कार्यक्रम बन जाता था और उसके बाद यहीं के एक बड़े नेता (बंसीलाल) का फोन पहुँचता था कि अमुक कार्यक्रम में एक लाख से कम की भीड़ न हो और हमारा पूरा प्रशासन, मंत्रिमण्डल से लेकर कलक्टर-कमीश्नर-थानेदार सभी भीड़ जुटाने में लग

जाते थे। ट्रकें-बसें-ट्रैक्टर सभी पकड़ी जाती थीं, लोगों को काम छुड़वाकर जबरदस्ती बुलाना पड़ता था, नतीजा यह होता था कि हर बार के कार्यक्रम में 10 हजार लोग हमारे विरुद्ध हो रहे थे।

मैं समझता हूं कि यही हाल अन्य जगहों का भी था, जहां-जहां संजय गांधी का दौरा होता था।

खैर, लोगों की श्रेणी में ऐसे लोग भी थे, जिनके अनुसार भारत में एक नया सूर्योदय हुआ था और उस सूर्य का ही नाम था—संजय गांधी। सूरज की सवारी जब निकलती है, तो उसमें सात घोड़े होते हैं, संजय के रथ में भी चुने हुए सात घोड़े थे—नर और मादा दोनों—सर्वश्री बंसीलाल, विद्याचरण शुक्ल, ओम मेहता, नारायणदत्त तिवारी, डा० जगन्नाथ मिश्र और अम्बिका सोनी तथा रुखसाना सुल्ताना। रथ के आसपास हाली-मुहाली की भी कमी नहीं थी, जिनमें सर्वश्री हरदेव जोशी, ज्ञानी जैल सिंह, अनन्तप्रसाद शर्मा, सीताराम केसरी, अमरनाथ चावला, प्रणवकुमार मुखर्जी, जानकीवल्लभ पट्टनायक, मोहम्मद यूनुस, महेन्द्र सिंह गिल आदि मुख्य थे।

सूर्योदय जब होता है, तब आकाश में चारों ओर लाली छा जाती है, प्रभामण्डल सूर्य के चारों ओर अपना घेरा बना देता है, मंद-मंद पवन सूर्य-किरणों का संदेशा कहने लगते हैं, पक्षियों का मधुर कलरव दिशाओं को गुंजारित करने लगता है और रात की अंगड़ाई मिटने लगती है, भोर थपकियां देने लगता है। संजय गांधी का भारत की राजनीति में जो पदार्पण हुआ, कुछ इसी तरह का। उसके लिए वातावरण की सृष्टि की गई और प्रधानमन्त्री श्रीमती गांधी तक ने यही समझा कि उनका बेटा जवाहरलाल के बाद देश का सबसे बड़ा और जनता को आकृष्ट करने वाला नेता पैदा हुआ है और इसीलिए उन्होंने स्वयं संजय गांधी की रचना और भविष्य-निर्माण में भरपूर योगदान देना शुरू किया।

लेकिन बाहर इसकी क्या प्रतिक्रिया हो रही थी, शायद इन्दिराजी इसे नहीं देख रही थीं या देखकर भी पुत्र-प्रेम उन्हें देखने नहीं दे रहा था। इस सम्बन्ध में देश में तो किसी को चर्चा का कोई हक ही नहीं था, लेकिन विदेशों में इसकी भयानक प्रतिक्रिया हो रही थी। 10 नवम्बर, 1976 के 'वाशिंगटन पोस्ट' में 'संजय की अनगिनत भूमिकाएं' शीर्षक से जान सार का एक लेख निकला, जिसमें कहा गया—'इन्दिरा गांधी ने स्वयं को सांवैधानिक तानाशाह बना लिया है, इस पर कड़वा वाद-विवाद हो ही रहा है, इसके साथ ही उनके पुत्र की दोहरी भूमिका पर भी लोगों को भारी गुस्सा है। उनके

आलोचक आक्रोश में हैं, लेकिन साथ ही सहमे हुए भी हैं। इन आलोचकों का कहना है कि बेटे ने स्वार्थों के संघर्ष को असहनीय स्तर तक पहुंचा दिया है और मां उसकी इन हरकतों को शह दे रही हैं। कुछ का कहना है कि यदि यही हाल रहा, तो नेहरू खानदान का पतन निश्चित है।'

इसी प्रकार, 6 मार्च 1977 के लन्दन के 'सन्डे टाइम्स' में इयाक जॅक नामक लेखक ने 'संजय अनटोल्ड स्टोरी' शीर्षक एक लेख लिखा, जिसके कुछ अंश इस प्रकार हैं—'भारत में अब एक बात विवाद से परे है कि संजय सबसे पहले श्रीमती गांधी का बेटा है, बाद में और कुछ। यह भी निर्विवाद ही है कि वह अपनी मां के बहुत से वोट खो देगा। हो सकता है कि वह अपने सपूत के कारण चुनाव ही हार जाये।'

उसी लेख में आगे कहा गया है—'गांवों में संजय को परिवार नियोजन की ज्यादतियों के लिए हमेशा याद किया जायेगा। इसी तरह शहरों में भी उसका नाम गन्दी बस्तियों की सफाई के साथ हमेशा-हमेशा के लिए जुड़ गया है। सारे भारत में मध्य वर्ग उसे सत्ता का गैर-संवैधानिक केन्द्र या फिर सीधे शब्दों में नेहरू खानदान का उत्तराधिकारी राजकुमार समझकर घृणा की दृष्टि से देख रहा है। सब मिलाकर उसकी जिन्दगी राजनीतिक गल्तियों से भरपूर है।'

लेकिन उन दिनों भारतीय समाचार पत्र कुछ तो सेंसरशिप की मजबूरी के कारण और कुछ अपनी खुशामदी नीतियों के कारण जो कुछ लिख रहे थे, उससे साफ था कि संजय आज के हिन्दुस्तान के बेताज बादशाह हैं। आगे केवल जनवरी, 1977 के पत्रों में संजय के सम्बन्ध में प्रकाशित कुछ समाचार दिए जा रहे हैं:—

संजय गांधी द्वारा राष्ट्रीय प्रगति के लिए आह्वान

सुल्तानपुर, 4 जनवरी (समा०)—श्री संजय गांधी ने आज जाति और धर्म के भेदभाव से ऊपर उठकर राष्ट्रीय प्रगति में सहभागी बनने के लिए देशवासियों का आह्वान किया। जिले में अनेक जन सभाओं को संबोधित करते हुए श्री गांधी ने कहा कि जब तक लोग जात-पात के नाम पर बटे रहेंगे, देश आगे नहीं बढ़ सकता। उन्होंने कहा कि जनता की एकता देश की प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी, अतः सभी भेदभावों को छोड़कर देशवासियों को पूर्ण एकता के सूत्र में बंधकर काम करना चाहिए।

श्री गांधी ने, जिन्होंने यहां जिला मुख्यालय पर भी एक विशालतम सभा

को संबोधित किया, लोगों से आग्रह किया कि विघटनकारी तत्वों की गति-विधियों से सतर्क रहे ।

उत्तर प्रदेश के दो दिन के दौरे पर पहुंचने पर श्री गांधी का यहा भव्य स्वागत किया गया ।

—नवभारत टाइम्स, 5 जनवरी, 1977

संजय हरियाणा का दौरा करेंगे
नहर निर्माण का उद्घाटन

नई दिल्ली, 4 जनवरी—श्री संजय गाधी 11 जनवरी को हरियाणा का दौरा करेंगे ।

हरियाणा के मुख्यमंत्री श्री बनारसीदास गुप्त ने बताया कि श्री गांधी उस दिन करनाल में 80 करोड़ रुपये की लागत से बनने वाली नहर के निर्माण कार्य का उद्घाटन करेंगे । यह नहर दो वर्षों में बनकर तैयार हो जायेगी ।

11 जनवरी को श्री संजय गांधी करनाल के समीप कमलपुरा में भूमिहीनों और समाज के कमजोर वर्ग के लिए बनाये गये मकानों की एक बस्ती का उद्घाटन करेंगे ।

—नवभारत टाइम्स, 5 जनवरी, 1977

संजय गांधी का जयपुर आगमन पर भव्य स्वागत

जयपुर, 7 जनवरी—श्री सजय गाधी का आगामी 16 जनवरी को गुलाबी नगरी जयपुर पहुंचने पर राजधानी परम्परा के अनुसार भव्य स्वागत किया जायेगा ।

राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री हरिदेव जोशी के साथ आज अखिल भारतीय युवक कांग्रेस के महामंत्री श्री जनार्दन सिंह गहलौत, प्रदेश युवक कांग्रेस के अध्यक्ष श्री राजेन्द्र शेखर ने श्री संजय गाधी के जयपुर कार्यक्रम तथा व्यवस्था के संबध में विस्तार से बातचीत की ।

श्री गहलौत ने आज यहां बताया कि जयपुर से ढाई सौ-वें स्थापना वर्ष के उपलक्ष में उस दिन नगर में ढाई सौ तोरणद्वार बनाये जायेंगे । श्री संजय गाधी राजस्थान के विभिन्न गावों से आने वाले दस हजार से अधिक युवक कांग्रेस कार्यकर्ताओ के सम्मेलन के अलावा एक रैली में भाग लेंगे ।

—नवभारत टाइम्स, 8 जनवरी, 1977

कांग्रेस में स्थान नहीं

फैजाबाद, 9 जनवरी—श्री संजय गांधी ने आज यहां कहा कि कांग्रेस

अथवा युवक कांग्रेस में उन लोगों के लिए कोई स्थान नहीं है जो इनके सिद्धान्तों व कार्यक्रमों में विश्वास नही रखते ।

श्री गांधी ने एक विशाल जनसभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि कांग्रेस देश मे उस तरह का समाजवाद लाना चाहती है जिससे कि उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्य कम हों और गरीब जनता का हित हो। श्री गाधी ने कहा कि गरीब जनता के लिए हितकारी समाजवाद के इन सिद्धातों को महात्मा गाधी ने प्रस्तुत किया था और इनका कांग्रेस पालन कर रही है।

—नवभारत टाइम्स, 10 जनवरी, 1977

मिल का शिलान्यास

वस्ती, 9 जनवरी—श्री संजय गांधी ने आज जनता को सचेत किया कि वह ऐसे तत्वों से सावधान रहें जो देश के स्वतन्त्रता सग्राम के दौरान अंग्रेजों के साथ थे और आज जनता के हिमायती बनकर कांग्रेस और युवक कांग्रेस के विरुद्ध भ्रम फैला रहे है ।

सन्त कबीर के साधना स्थल मगहर में पांच करोड रुपये की लागत से बनने वाली कबीर सहकारी कताई मिल का शिलान्यास करने के बाद एक विशाल जनसभा को सम्बोधित करते हुए उन्होंने एक राजनीतिक पार्टी की ओर सकेत किया और कहा कि युवक कांग्रेस की सफलता से नाराज होकर उसने विभिन्न प्रकार की अफवाहें और भ्रम फैलाना शुरू किया है।

—नवभारत टाइम्स, 10 जनवरी, 1977

संजय की करनाल यात्रा पर सजावट

चण्डीगढ़, 10 जनवरी—श्री संजय गांधी के कल करनाल आगमन के उपलक्ष मे नगर को दुल्हन की तरह सजाया जा रहा है।

श्री गांधी कल प्रातः विमान द्वारा करनाल पहुंचेंगे, जहां उनका भव्य स्वागत किया जायेगा। उसके बाद वे सीधे उच्चानी गांव जायेगे, जहां हरियाणा प्रदेश युवक कांग्रेस द्वारा एक श्रमदान शिविर का आयोजन कर तीन किलोमीटर लम्बा बाढ़ नियन्त्रक नाला तैयार किया गया है।

श्री संजय गांधी यह नाला उच्चानी तथा उसके साथ लगने वाले चार अन्य गांवों के लोगों को समर्पित करेंगे।

इस नाला के बनने से उच्चानी, बालदी, सलारू, कुराली एव ढरार गांव सदा के लिए बाढ़ की विभीषिका से मुक्त हो जायेंगे।

उल्लेखनीय है कि 6 वर्ष पूर्व 18 नवम्बर, 1970 को इसी उच्चानी गाव मे प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने बटन दबा कर हरियाणा को देश

का सर्वप्रथम शत प्रतिशत ग्रामीण विद्युतीकरण वाला राज्य होने का गौरव प्रदान किया था।

इसके बाद श्री गांधी मोतीलाल नेहरू स्टेडियम में एक विशाल जनसभा को भी सम्बोधित करेंगे।

ज्ञानी जैल सिंह संजय से मिले

नई दिल्ली, 10 जनवरी—पंजाब के मुख्यमंत्री ज्ञानी जैल सिंह ने आज यहां श्री संजय गांधी से भेंट की।

बताया जाता है कि इस भेंट के दौरान श्री संजय गांधी के 15 जनवरी के पटियाला के प्रस्तावित दौरे के कार्यक्रम पर विचार-विमर्श किया गया।

पटियाला देश में पहला नगर है जिसे मानव आवास योजना के अन्तर्गत लिया गया है। संसद सदस्य श्री सतपाल कपूर वहां इस योजना के संयोजक-इन्चार्ज हैं।

युवक कांग्रेस की विचारधारा गांधीजी के अनुरूप
देशद्रोही ही पांच सूत्री कार्यक्रम के विरोधी

—संजय

करनाल, 11 जनवरी—युवा नेता श्री संजय गांधी ने आज यहां हरियाणा के कुछ क्षेत्रों की प्यासी धरती को जल पहुंचाने की योजना सतलुज यमुना लिंक का शुभारम्भ किया, देहाती हरिजनों को आवास के प्लाटों के पट्टे प्रदान किये और युवक कांग्रेस के श्रमदान शिविर का समापन करने के अलावा युवक कांग्रेस की विचारधारा को स्पष्ट किया। उन्होंने हरियाणा में विकास कार्यों की सराहना कर राज्य सरकार को और द्रुत कदम उठाने का प्रोत्साहन भी दिया।

महाभारत के राजा कर्ण के नाम पर बसे करनाल की बहार आज देखते ही बनती थी। अनगिनत बंदनवार, तिरंगों की अनूठी छटा, शहरी और देहाती लोगों की अपार भीड़, हरियाणा की वेशभूषा का ठाठ-बाठ और आधुनिकीकरण सूटबूट से सजे युवकों का अद्भुत मेल। सर्वत्र मेला सा लगा था, लेकिन क्या मजाल कि कहीं कोई अनुशासनहीनता हो जाय। लोगों में संजयजी को देखने का चाव और सरकार को राष्ट्रीय युवा नेता के स्वागत का उत्साह, जनता व प्रशासन में पूर्ण तालमेल था।

औपचारिक उद्घाटनों के अलावा श्री संजय गांधी का विशाल रैली में, जिसमें उपस्थिति का अनुमान पांच लाख है, भव्य स्वागत किया गया। यहां उन्होंने स्पष्ट किया कि युवक कांग्रेस की विचारधारा वही है जो महात्मा

गांधी ने बतायी थी, गरीबों की सेवा करना और उनके उद्धार के लिए यत्नशील रहना।

उन्होंने कहा कि मुझे यह कहने में तनिक भी हिचक नही है कि युवा कांग्रेस तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कार्यक्रम बिल्कुल एक जैसे है और महात्मा गांधी के इस कथन के अनुरूप हैं कि इन कार्यक्रमों को बनाते वक्त इस बात का ध्यान रखा जाय कि वे गरीबों तथा पीड़ितों के उत्थान और मदद में सहायक हो, तब जनता ने उनका हर्ष ध्वनि के साथ स्वागत किया।

श्री गांधी ने कहा कि यह गैर-जिम्मेदारी की हद है कि वे ही लोग जिन्होंने स्वतंत्रता की लड़ाई में साम्राज्यवादियों का साथ दिया, आज हम पर साम्राज्यवादी तथा प्रतिक्रियावादी होने का आरोप लगा रहे हैं।

श्री गांधी ने कहा कि सिर्फ जनसंघ जैसे दल ही प्रतिक्रियावादी है और यह विडंबना है कि वे ही लोग जिन्होंने खुद राज्यों में जनसंघ के साथ मिल कर सरकार बनायी थी, आज हमें प्रतिक्रियावादी कह रहे हैं।

श्री संजय गाधी ने अपने पांच सूत्री कार्यक्रम के विरोधियों को भी आड़े हाथों लिया है।

श्री संजय गांधी ने कहा कि सिर्फ अफवाहें फैलाने वाले और देशद्रोही ही मेरे कार्यक्रम के विरोधी हैं और उसकी आलोचना करते है।

श्री संजय के आगमन की तैयारी

सांगानेर तहसील दहेज न लेने का आदर्श पेश करेगी

जयपुर, 14 जनवरी—श्री संजय गांधी के समक्ष 16 जनवरी को पूरी सांगानेर तहसील दहेज नहीं लेने तथा देने की शपथ लेगी। युवक कांग्रेस का यह संकल्प है कि पूरी तहसील को दहेज विरोधी तहसील बनाया जाय ताकि देश के सामने एक आदर्श प्रस्तुत किया जा सके।

प्रदेश युवक कांग्रेस के अध्यक्ष श्री राजेन्द्र शेखर ने आज यहां बताया कि पूरे राज्य में दहेज के विरोध मे एक लाख से अधिक संकल्प पत्र भरवाये गये हैं। उन्होंने बताया कि युवक काग्रेस के तीन लाख के निर्धारित लक्ष्य की तुलना में पांच लाख सदस्य बना लिये गये हैं। राज्य में पांच लाख वृक्षारोपण का लक्ष्य भी पूरा कर लिया गया है।

श्री शेखर ने बताया कि श्री संजय गांधी के जयपुर आगमन पर 16 जनवरी को देश में सबसे पहला ग्राम-स्तरीय कार्यकर्त्ता सम्मेलन होगा।

उन्होने बताया कि सम्मेलन में भाग लेने के लिए सात हजार गांवों से दस

हजार से अधिक प्रतिनिधि जयपुर आ रहे हैं। जयपुर में उनके आवास की समुचित व्यवस्था की गयी है।

श्री सजय गांधी के स्वागत की तैयारी मे समूचा जयपुर अपने गुलाबी रंग में निखरा है। सामान्य लोगों में भारी उत्साह है। स्थान-स्थान की ओर से स्वागत द्वार बनाये जा रहे हैं। रैली के पूरे मार्ग मे युवक कांग्रेस के सास्कृतिक प्राकोष्ट की ओर से राजस्थानी वेश-भूषा में नृत्य व गायन प्रस्तुत किये जायेंगे।

मुख्यमंत्री श्री हरिदेव जोशी ने आज सुबह शहर की व्यवस्था का निरीक्षण किया।

"युवक कांग्रेस महात्मा गांधी के रास्ते पर चल रहो है"
जयपुर की विशाल सभा में श्री संजय का भाषण

जयपुर, 16 जनवरी—राष्ट्रीय नेता श्री संजय गांधी ने यहां युवक कांग्रेस की विचारधारा का स्पष्टीकरण करते हुए युवक कांग्रेस द्वारा आयोजित एक विशाल जनसभा मे कहा कि युवक कांग्रेस महात्मा गांधी द्वारा बताये हुए रास्ते पर चल रही है। यही उसकी विचारधारा है।

श्री सजय गांधी ने कहा कि यदि किसी अन्य देश में कोई विचारधारा है तो हम उसे यूं ही स्वीकार नही कर सकते। वह उस देश की ही चीज है।

श्री संजय गाधी ने कहा कि हमारा रास्ता गाधीजी का बताया हुआ रास्ता है। महात्मा गाधी कहा करते थे कि किसी भी काम को करने से यदि गरीब का लाभ होता है तभी उस काम को करना चाहिये। युवक कांग्रेस यही कर रही है।

श्री संजय गांधी ने कहा कि युवक कांग्रेस पर समाजवादी और फासिस्ट होने के आरोप निराधार हैं। यह आरोप उन लोगों की ईजाद है जिनका काम केवल एक सूत्री कार्यक्रम है, सिर्फ झूठ बोलना।

युवक कांग्रेस ने आज जयपुर में एक विशाल रैली का आयोजन किया जो बाद में यहां के सुप्रसिद्ध सार्वजनिक उद्यान रामनिवास बाग में एक जन-सभा के रूप में परिवर्तित हो गयी। लगभग पांच लाख लोग उपस्थित थे।

श्री गांधी का अभिनन्दन करते हुए राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री हरिदेव जोशी ने कहा कि आर्थिक उन्नति का लक्ष्य सामाजिक आचरण को सुधारे बिना प्राप्त नही हो सकता। राजस्थान सजयजी के पाच सूत्री कार्यक्रम को शत-प्रतिशत पूरा करेगा।

संजयजी से विदिशा से चुनाव लड़ने का अनुरोध

भोपाल, 20 जनवरी—विदिशा के अनेक कांग्रेसजनों ने श्री संजय गांधी

से लोकसभा का चुनाव विदिशा रायसीन क्षेत्र से लड़ने का अनुरोध किया है।

श्री संजय को दुर्ग से चुनाव लड़ने का अनुरोध

रायपुर 20 जनवरी—दुर्ग जिला युवक कांग्रेस समिति ने श्री संजय गांधी से अनुरोध किया है कि वे दुर्ग लोकसभा निर्वाचन क्षेत्र से लोकसभा का चुनाव लड़ें।

दुर्ग जिला युवक कांग्रेस समिति के अध्यक्ष श्री विमल कुमार जैन ने श्री संजय गांधी को तार भेजकर यह अनुरोध किया है।

संजय गांधी विशिष्ट भारतीय

बम्बई, 20 जनवरी—श्री संजय गांधी को अंग्रेजी की एक लोकप्रिय साप्ताहिक पत्रिका द्वारा आयोजित पाठकों के मतसंग्रह में 1976 का विशिष्ट भारतीय चुना गया है।

एक पाठक ने कहा है, 'वे मेरी जानकारी में एकमात्र भारतीय हैं, जिनकी कथनी और करनी में अंतर नहीं है।'

दूसरे पाठक के अनुसार 'स्वतंत्रता के बाद किसी भी व्यक्ति ने न इतने विरोध का सामना किया, न इतनी आलोचना बरदाश्त की, न इतना अधिक लोगों का ध्यान आकर्षित किया, न इतनी महत्ता प्राप्त की, न इतनी विशिष्टता प्राप्त की, न ही इतना प्रभावशाली हुआ।'

मतसंग्रह का आयोजन इलस्ट्रेटेड वीकली आफ इंडिया ने किया। पत्रिका ने कहा है कि श्री संजय गांधी को साठ प्रतिशत से अधिक मत प्राप्त हुए।

श्री गांधी के साहस, निर्भीकता और गतिशीलता की अधिकतर पाठकों ने प्रशंसा की।

पत्रिका ने यह भी कहा है कि अमूमन हर पाठक ने उनके पांच सूत्री कार्यक्रम का समर्थन किया और युवा शक्ति को रचनात्मक दिशा प्रदान करने के लिए उनकी सराहना की।

जगदलपुर में संजय के स्वागत की तैयारी

रायपुर, 21 जनवरी—श्री संजय गांधी के स्वागतार्थ बस्तर के दूरवर्ती क्षेत्रों से हजारों की संख्या में आदिवासी जनता जगदलपुर पहुंच रही है। श्री संजय गांधी 22 जनवरी को जगदलपुर जाने वाले हैं।

श्री गांधी 22 जनवरी को पूर्वाह्न 11.30 बजे जगदलपुर विमान द्वारा पहुंचेंगे। उनके साथ मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री श्यामाचरण शुक्ल तथा केन्द्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्री श्री विद्याचरण शुक्ल भी रहेंगे। वे वहां एक

विशाल युवा रैली तथा जनसभा को संबोधित करेंगे। बाद में श्री गांधी आकाशवाणी केन्द्र, जगदलपुर के उद्‌घाटन समारोह में मुख्य अतिथि के रूप मे भाग लेंगे।

श्री गांधी 23 जनवरी की सवेरे को हकामिया और दंतेवाड़ा जायेंगे। वहां वे आदिवासियों की सभाओं में भाषण करेंगे। बाद में वे दिल्ली लौट जायेंगे।

श्री संजय गांधी तमिलनाडु जायेंगे

नयी दिल्ली, 21 जनवरी—तमिलनाडु युवा कांग्रेस के अध्यक्ष श्री के० जगवीर पंडियन ने बताया कि श्री सजय गांधी 5 और 6 फरवरी को तमिलनाडु की यात्रा करेंगे।

आदिवासियों की अच्छाइयों को जीवन में अपनायें

—संजय गांधी

जगदलपुर, 22 जनवरी—श्री संजय गांधी ने जातपात और दहेज प्रथा से मुक्त आदिवासी जीवन पद्धति की प्रशंसा करते हुए देशवासियों का आह्वान किया कि वे आदिवासियों की अच्छाइयों को अपनायें और उनसे शिक्षा ग्रहण करें।

वस्तर जिले के कोने-कोने से आये आदिवासियों की विशाल सभा को आज सबोधित करते हुए श्री संजय गांधी ने कहा कि जीवन-मूल्यों के बारे में कई ऐसी बातें आदिवासी समाज मे आज भी व्याप्त हैं, जिनसे हमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। उदाहरणार्थ आदिवासियों में जातपात नही। वे दहेज प्रथा में भी विश्वास नहीं करते और परिवार नियोजन पर भी वे अपने ढंग से अमल करते है।

श्री संजय गांधी ने कहा कि यह कहना कदाचित सत्य नही होगा कि शिक्षित और शहरी समाज ही प्रगति का प्रदर्शक बन सकता है। आदिवासी जनता ऐसी कई बातों में शहरी लोगों से आगे है जिसके अभाव में शहरी जनता की प्रगति अवरुद्ध है।

चुनाव लड़ने को मैंने कभी नहीं कहा

—संजय गांधी

जगदलपुर, 23 जनवरी—श्री संजय गांधी ने आज यहां कहा कि मैंने यह कभी नहीं कहा कि मैं आगामी लोकसभा के चुनावों में खड़ा होऊंगा।

श्री संजय गांधी ने यह मन्तव्य यहां से नयी दिल्ली रवाना होने से पूर्व पत्रकारों के समक्ष उस समय व्यक्त किया जब उनसे विभिन्न कांग्रेस कमेटियों द्वारा लोकसभा चुनाव में खड़े होने के लिए की गयी पेशकश के संबंध में पूछा गया था।

मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री श्यामाचरण शुक्ल ने इस अवसर पर कहा कि मध्य प्रदेश से चुनाव लड़ने की हमारी पेशकश अभी भी है।

श्री संजय गांधी ने स्पष्ट किया कि मैंने कभी भी यह नहीं कहा है कि मैं चुनाव लड़ना चाहता हूं।

संजयजी से हरियाणा का आग्रह

गोहाना, 27 जनवरी—हरियाणा प्रदेश कांग्रेस कमेटी ने श्री संजय गांधी को राज्य से आगामी लोकसभा चुनाव लड़ने का निमंत्रण दिया है।

संजय द्वारा विरोधी दलों की आलोचना

भुवनेश्वर, 29 जनवरी—श्री संजय गांधी ने आज यहां विरोधी दलो पर तीव्र प्रहार किया जो संसद के चुनाव की चुनौती का मुकाबला करने को स्वयं को अक्षम पा रहे हैं।

उड़ीसा की दो दिवसीय यात्रा पर आज यहां पहुँचने के तुरन्त बाद ही परेड ग्राऊंड पर आयोजित एक महत्ती जनसभा को सम्बोधित करते हुए श्री गांधी ने कहा कि पहले इन्हीं दलों द्वारा यह कहा जाता रहा कि सत्तारूढ दल अपने कार्यक्रम और नीतियों के साथ चुनाव कराने से कतरा रहा है, लेकिन अब जबकि लोकसभा के चुनावों की घोषणा की जा चुकी है तो यही दल स्वयं को जनता का सामना करने में असमर्थ पा रहे है।

उन्होंने कहा कि विरोधी दलों द्वारा अब यह तर्क प्रस्तुत किया जा रहा है कि वे चुनाव के लिए तैयार नही है तथा उन्हें कुछ और समय की जरूरत है। इन दलों का केवल एक सूत्री कार्यक्रम है—कांग्रेस जो भी करे उसकी आलोचना करना तथा झूठे आरोप लगाना।

भव्य स्वागत

श्री संजय गाधी का उड़ीसा की दो दिवसीय यात्रा के लिए आज यहां पहुँचने पर भव्य स्वागत किया गया।

श्री गांधी जैसे ही विमान से उतरे, वहां भारी संख्या मे उपस्थित युवक कांग्रेस के स्वयंसेवकों तथा कांग्रेसजनों ने उनका हर्षध्वनि के साथ स्वागत किया।

श्री गांधी का स्वागत करने वालों में राज्य के मुख्यमंत्री श्री विनायक आचार्य, केंद्रीय रक्षा राज्यमंत्री श्री जानकी बल्लभ पटनायक, उड़ीसा युवक कांग्रेस के अध्यक्ष श्री रामचंद्र रथ, राज्य मंत्रिमडल के सदस्य एव प्रदेश कांग्रेस के अनेक नेता सम्मिलित थे।

हवाई अड्डे से परेड ग्राउंड के मार्ग में से सड़क के दोनों ओर खड़े हजारों

लोगों ने श्री गांधी का तालियां बजाकर स्वागत किया। मार्ग में अनेक स्थानों पर तोरणद्वार बनाये गये थे। जिन पर लिखा था 'संजय गांधी उड़ीसा आपका हार्दिक स्वागत करता है।'

श्री गांधी ने अनेक स्थानों पर रुक कर जनता से गुलदस्ते तथा पुष्प-हार स्वीकार किये। उन्होने उपस्थित लोगों का हाथ हिलाकर अभिवादन स्वीकार किया।

जनता पार्टी का उद्देश्य लोगों को गुमराह करना

—संजय गांधी

कटक, 30 जनवरी—श्री सजय गांधी ने आज यहां नवगठित जनता पार्टी को आड़े हाथो लिया और कहा कि इस नयी पार्टी का काम झूठ बोल कर जनता को गुमराह करना है।

श्री सजय गांधी आज यहां एक विशाल जनसभा मे बोल रहे थे। उन्होंने कहा कि युवक कांग्रेस को साम्राज्यवादी व फासिस्ट बताने वाले वही लोग हैं जो स्वाधीनता आन्दोलन मे अंग्रेजों के साथ मिले थे।

इन लोगो ने फिर जनसंघ जैसे फासिस्ट दलों के साथ गठजोड़ किया है। सबलपुर में श्री संजय गांधी ने जनता से अपील की कि वे उन पार्टियों और लोगों का विरोध करें जो कांग्रेस और युवक कांग्रेस की नीतियों के विरुद्ध हैं।

आज यहा एक विशाल जनसभा को संबोधित करते हुए श्री सजय गांधी ने कहा कि यह सभी को समझना चाहिये कि हमारी नीति महात्मा गांधी की नीति है और वह गरीबों की भलाई करना।

साधारण जन के कल्याण के लिए युवा कांग्रेस के पांच सूत्री कार्यक्रम की महत्ता बताते हुए उन्होंने कहा कि उडीसा ने परिवार नियोजन के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण प्रगति की है। उसी गति और दृढ़ता के साथ राज्य में बाकी चार सूत्रों को भी लागू किया जाना चाहिये।

शुरु-शुरु जब संजय का उद्भव हुआ तो अन्य लोगो के समान मैंने भी यही सोचा कि अवश्य उनमें कुछ प्रतिभा होगी और इन्दिराजी के साथ रहकर उन्होंने राजनीति का कुछ आवश्यक और प्रौढ़ ज्ञान प्राप्त किया होगा। कहने वाले ऐसा कहते भी थे। खास तौर से श्री ए० पी० शर्मा, सीताराम केसरी और कभी-कभी श्री डी० पी० यादव भी जब संजय गांधी की बात करें, तो यह कहते थे कि उसमें काफी राजनीतिक ज्ञान है। मैं कभी उनसे मिला नहीं, और न तो बात करने का मौका मिला, सिवा दो-तीन अवसरों पर देखा-देखी छोड़कर। पहली बार मैंने उन्हें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन के अवसर

पर चण्डीगढ़ में देखा और वह भी एक विचित्र घटना हुई। राष्ट्रीय ग्रामीण मजदूर कांग्रेस की एक बैठक उक्त अवसर पर बुलाई गई थी और तय हुआ था कि उसे प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी सम्बोधित करेंगी। संभवतः यह 28 या 29 दिसम्बर, 1975 की घटना है। सभी लोगों को जुटाकर एक शामियाने के नीचे जब हम प्रतीक्षा कर रहे थे, उसी समय आठ-दस चमचों के साथ, जो 'संजय गांधी जिन्दाबाद' चिल्ला रहे थे, संजय गांधी ने हमारे शामियाने में प्रवेश किया और इन्दिराजी की जगह पर बैठकर खेतिहर मजदूरों की समस्याओं पर भाषण शुरू कर दिया। उनके आने के कुछ ही मिनटों पहले किसी ने मुझे यह खबर की थी कि इन्दिराजी की जगह पर वे ही आ रहे हैं और उसी दिन मेरा माथा ठनका था कि इन्दिराजी की जगह पर उन्हे क्यों लाया जा रहा है।

और चण्डीगढ़ कांग्रेस सेशन से लेकर गौहाटी कांग्रेस सेशन तक संजय गांधी किसी प्रखर सूर्य के समान भारत की राजनीति पर छाये रहे। उसके बीच का समय उनका समय हो गया, दौरा भी और दार-दौरा भी और उस प्रखर सूर्य में थोड़ी नरमी आई 2 फरवरी, 1977 को, जब श्री जगजीवनराम ने कांग्रेस छोड़ा और जब अमेठी और रायबरेली का चुनाव फल 20 मार्च, 1977 को आया उस समय वह प्रखर सूर्य सदा के लिए ढल चुका था।

आपात्काल के बीच का भारत संजय की प्रतिभा को चमकाने का भारत रहा। अखबार मे, रेडियो में, टेलिविजन मे—हर जगह संजय। संजय, न तो पार्टी में कुछ, न सरकार में कुछ—लेकिन वास्तव में सब कुछ। इन्दिराजी ने 20 सूत्री कार्यक्रमों की घोषणा की, लगे हाथो संजयजी ने 5 सूत्रों का जयनाद कर दिया और हर जगह इनका भी जयघोष होने लगा। वास्तव में 5 सूत्रों की घोषणा कर उन्होने यह साबित कर दिया था कि प्रधानमंत्री मे 25 प्रतिशत की हिस्सेदारी उनकी है, इसीलिए 20 के साथ-साथ 5 सूत्र अलग से जोड़े गये हैं।

उन दिनों फैशन था संजय की स्तुति करना, अखबारों मे समाचार छापना, बड़ाई के पुल बांध देना और संजय गांधी ही आने वाले भारत के भाग्यविधाता हैं, इसका ढिंढोरा पीटना। कांग्रेस पार्टी उन दिनो नपुंसक पार्टी हो गई थी। कोई न तो कहने वाला था, न कोई सुनने वाला। दो-चार-दस लोगों ने मिलकर कांग्रेस को दफनाने का धंधा उठा लिया था और हम सब चुपचाप किंकर्तव्यविमूढ़ से दर्शक बने सब देख रहे थे। जिन लोगों ने कुछ कहने-सुनने की हिम्मत की, उन्हें दल से निकाल दिया गया और इसीलिए कांग्रेस

आगे अभी क्या-क्या नतीजा निकलता है, राम जाने, कारण मारुति के ऊपर एक स्पेशल कमीशन बहाल है और उसकी रिपोर्ट आने को है।

दो-तीन प्रश्न ऐसे हैं, जिन पर मैं बराबर सोचता रहा हूं। एक यह कि कौन थे वे लोग जो संजय को राजनीति मे ले आये और उनका इसमें उद्देश्य क्या था?

इस सबध में एक वाक्य को तो मैं भली-भांति जानता हूं, जो उन दिनों श्री सीताराम केशरी ने कहा था। वे सजयजी से बहुत घुले-मिले थे, अत. एक दिन जब कोई उनके महत्व को नही जानता था, वे उनके पास गये और कहा—आप ही जब कार बनायेंगे तो हम बनिया लोग बेकार हो जायेंगे। आपके लिए यह रोजगार क्या? आपके लिए प्रधानमंत्री की कुर्सी प्रतीक्षा देख रही है, छोड़िये यह कल-कारखाना और बढिये आगे……।

कहा जाता है कि यह बात सजयजी को अपील कर गई। उन्होंने कदम आगे बढ़ाया, तो उसमें लाभ ही लाभ दिखाई दिया, घाटे का सवाल ही नही और इस प्रकार केशरीजी ने ही उनकी पहली राजनीतिक यात्रा सितम्बर 1975 में बाढ़ के दिनों पटना की करवाई और तब से वे जो आगे बढते गये, तो अमेठी मे मुँह की खाने के बाद ही वापस लौटे।

लेकिन केवल केशरीजी के ही कहने से वे आगे नही बढे होंगे। उनके अपने शागिर्द भी इसमें कम नहीं थे—अर्जुनदास से लेकर कमलनाथ तक और नारायणदत्त तिवारी से लेकर डा० जगन्नाथ मिश्र तक। और उनके दरबार में ऐसी देवियो की भी कमी न थी, जो आंचल से हवा भी देती थी और पसीना भी पोछती थी।

परन्तु सजय गांधी के जीवन में तेजी की वास्तविक शुरुआत हुई है मेनका गांधी से शादी के बाद। मेरा सबसे बड़ा जटिल प्रश्न यह भी है कि मेनका से सजयजी की शादी का माजरा क्या है? राजनीति में लाने वालों का जैसे कोई न कोई उद्देश्य रहा होगा, उसी के समान मेनकाजी से शादी करवाने वालों का भी कोई न कोई उद्देश्य जरूर रहा होगा। यह भी अच्छा हुआ कि आपात्काल के पहले ही सजय गाधी की शादी मेनका से हो गई, नही तो कई लोगो के अनुसार रुखसाना सुलताना ने जैसा प्रभाव सजय के ऊपर छोड़ा था, उसे देखते हुए ऐसा लगता है मानो वही इन्दिराजी के घर की बहू बनकर प्रधानमत्री की कोठी में बैठ जाती।

इस संबध में एक बात जो सबसे अधिक ध्यान देने की है, वह यह कि हिन्दू शास्त्रों के अनुसार बराबर यह कहा जाता है कि बहू के पावों मे लक्ष्मी का

और सस्कार का एक बहुत बड़ा लक्षण होता है। घर में यदि सुलच्छनी बहू आई तो उजड़ा घर भी बस जाता है और यदि घर में कुलच्छनी बहू के पांव पड़े तो बसा घर भी उजड़ जाता है। जिन लोगों ने इन्दिराजी की परेशानियों को नजदीक से देखने की कोशिश की है, उनका कहना है और मेरा मानना है कि जिस दिन से मेनका गांधी के पांव बहू के रूप मे इन्दिराजी के घर में आये, उस दिन से उनकी परेशानियां और बढ गईं तथा अवनति की कहानी उसी दिन से शुरू हो गई। राम जाने, क्या बात है, लेकिन मैंने जब कभी श्री संजय गांधी और श्रीमती मेनका गाधी को तस्वीरों में भी देखा तो ऐसा लगा मानो संजय गांधी किसी के हाथों में कैद हो गये हैं और छटपटा रहे हैं और अपने को मुक्त नहीं कर पा रहे हैं। नजदीक के लोग अधिक कह सकते है, मैं तो अपनी अनुभूतियों की बातें ही कह सकता हूं, जो दूर से मुझे होती रही है।

जिन दिनों श्री ब्रह्मानन्द रेड्डी और श्री सिद्धार्थशंकर राय में कांग्रेस-अध्यक्ष के लिए रस्साकशी चल रही थी, उन्हीं दिनों मैं इन्दिराजी से मिलने गया। उस समय तक वह 1 नं० सफदरजंग में ही थी। उन्होंने हमें ड्राइंग रूम में बैठाया और स्वयं कुछ देर के लिए अन्दर गईं। इसी बीच एक हिप्पीनुमा लड़की, कमीज और जीन का पैन्ट पहने हुए हमारे सामने से ही अंदर गई। मेरे साथ उत्तर प्रदेश के श्री प्रभुनारायण सिंह और हिमाचल के श्री प्रेमचन्द वर्मा थे। प्रभुजी ने मुझसे पूछा—पहचाना इन्हे ?

—नहीं तो। —मैंने कहा।

—यही थीं, मेनका गांधी। —वे बोले।

और सच कहूं तो मुझे उस दिन वितृष्णा भी हुई और दया भी आई। संस्कारों की एक अपनी ही बात हुआ करती है। भारत एक ऐसा विवेकशील देश है, जहां का हर आदमी यह नही देखता कि किसी का व्यक्तिगत जीवन कैसा है और कैसा नही, बल्कि यहा लोग सबसे अधिक व्यक्तिगत जीवन पर जोर देते है। इसीलिए तो प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी जब देहाती इलाकों के दौरे पर जाती थीं, तो सिर पर आंचल रख लेती थीं। और उसी घर की बहू, इस प्रकार का अपना वस्त्र-विन्यास और आचार-विचार रखे, तो भारतीय जन-मानस पर इसका भी बुरा असर पड़ेगा ही। जहां कहीं भी इस तरह की बातें होती हैं, तो आलोचना आवश्यक है। कारण, प्रधानमंत्री का पारिवारिक जीवन भी सार्वजनिक आलोचना का एक अग हो जाता है और लोग उन आदर्शों को लेकर चलते हैं।

मेरे मन में यह सवाल रह-रहकर कौंध रहा था, इसका जवाब मिला मुझे श्री देवकांत बरुआजी से। मैंने जब उनसे इन बातों की एक दिन चर्चा की और पूछा कि यह शादी कैसे हुई, तो वे बोले कि शादी में तो किसी को इन्दिराजी ने बुलाया नहीं था, लेकिन दूसरे दिन जब मैं उनसे मिलने गया तो वह बहुत बेचैन और उदास थीं और कहती थीं कि यह शादी अच्छी नहीं हुई और यह भी उनका कहना था कि संजय के ससुराल वालों में संस्कारों की कमी है।

इसका अर्थ साफ है कि मेनका और संजय का गठबंधन इन्दिराजी की मर्जी के विरुद्ध हुआ, इसीलिए शादी में उन्होंने किसी को बुलाया तक नहीं। हालांकि उस शादी में शामिल होने वाले एक मात्र वी० आई० पी० केन्द्रीय मंत्री थे डा० कर्ण सिंह और उनकी पत्नी, जो मेनका की ओर से शादी में शामिल हुए थे।

संजय गांधी के संबंध में मैं बहुत अधिक चर्चा इसलिए नहीं करना चाहता हूं क्योंकि आपात्काल के संबंध में भली-बुरी जितनी भी पुस्तकें निकली हैं, सबों में उनके संबंध में विशद चर्चा हो चुकी है। मेनका-संजय शादी की बात मैंने इसलिए लिखी है, जिससे पाठकों को यह जानकारी हो सके कि उस संबंध की क्या प्रतिक्रिया थी इन्दिराजी के ऊपर। यह जानना इसलिए आवश्यक है, क्योंकि मैं यह मानकर चलता हूं कि संजय गांधी को राजनीति में आने और छलांग लगाने के लिए मेनका और उनके परिवार के लोगों ने काफी उत्साहित किया होगा, क्योंकि प्रधानमंत्री के लड़के से शादी का अर्थ केवल व्यापार नहीं होता है, वरन् ऊंची से ऊंची कुर्सी भी होती है। खासकर मेनका गांधी का जो पूर्व जीवन रहा, वह भी उद्दाम महत्वकांक्षाओं का इतिहास रहा है और वह महिला भी कम जीवट की नहीं हैं, क्योंकि जहां अनेक सारी लड़कियां और लड़कियों के माता-पिता अपनी बेटी को प्रधानमंत्री की बहू बनाने में चूक गये, वहां मेनका गांधी सफल हो गईं, यह विशेष महत्व की बात है। निश्चित रूप से मेनका को मार्गदर्शन करने वाले दो उल्लेख्य व्यक्ति हैं—एक उनकी मां और दूसरे उनकी मायके के पारिवारिक मित्र श्री खुशवन्त सिंह।

संजय को जानने वालों का कहना है कि प्रारम्भ से ही वह एक तेज-तर्रार और महत्वाकांक्षी कल्पनाशील युवक था और इसीलिए कारों के मोडेल देखते-देखते और खिलौनों से खेलते-खेलते उसने कार-कम्पनी की योजना बना डाली। और जो नवयुवक इतना उत्साही हो कि 'राल्स रायस' और 'फोर्ड' कम्पनी देखने के बाद वह उसी समान कार-कम्पनी की कल्पना करे और उस

योजना में लग जाये, वह अपने घर में प्रधानमंत्री और उसके पद की गरिमा देखकर चुप कैसे बैठ सकता था, इसीलिए उसने 'मारुति' से 'प्रधानमंत्री' तक की कल्पना की होगी। और दोनों योजनाओं में दाद देने वालों की कमी तो थी नही। खासकर प्रधानमंत्री का बेटा यदि कोई व्यवसाय शुरू करे तो कौन ऐसा व्यवसायी होगा, जो उससे नाता जोड़ना नही चाहेगा और इसीलिए 'मारुति' के साथ देश के लगभग सभी उद्योगपतियों ने अपना संबंध जोड़ा, उसके शेयर खरीदे और बैंकों ने 'ईजी टर्म्स' पर 'लोन' भी दिए।

हैरानी की बात यह है कि इतना होने पर भी मारुति बन क्यों नही सकी? और उससे भी बड़ी हैरानी यह है कि इतना अधिक रुपया सजय गाधी ने क्या किया और पैसो की हविश उन्हे इस प्रकार कहां से हुई। निश्चित रूप से इन्दिराजी ने पैसों का लोभ उन्हे नही सिखाया होगा, इसके लिये 'सागर' से लेकर 'सूर्या' तक का लेखा-जोखा लिया जा सकता है, जिसमें मैं जाना नही चाहता।

आपात्काल के बाद सजय गांधी के राजनीति मे आने के बाद भारतीय राजनीति का माहौल ही बदल गया। राजनीतिक विचारधाराए और सिद्धान्त ताक पर रख दिये गये, बडे और बुजुर्ग और अनुभवी और त्यागी कांग्रेसजन किसी खोह में चले गये और एक नया जागरण शुरू हुआ—जिसकी बुनियाद मे श्री संजय के साथ रुखसाना सुलताना, धीरेन्द्र ब्रह्मचारी, अर्जुन-दास, कमलनाथ जैसे लोग थे, जिन्हे राजनीति से यही लेना था कि भविष्य मे उनका स्थान सुरक्षित हो जाए। फिल्मों में जैसे खलनायकों का एक गिरोह जमा हो जाता है, उसी भाति सजय का गिरोह था, जिसकी अत मे वैसे ही कलई खुल गई, जैसी कि अमूमन तस्वीरों में भी दिखाया जाता है।

'युवक कांग्रेस' का उन दिनो ऐसा बोल-बाला था कि कांग्रेस की आव तो कुछ थी ही नही और संजय गाधी ने यह योजना बनाई थी कि 50 लाख युवक कांग्रेस के ऐसे कर्मठ सदस्य तैयार कर लिये जायें, जो हर स्थिति-परिस्थिति में उनके साथ रहें। बड़ी-बड़ी योजनाएं उसके लिए उन्होने बनाई थी, लेकिन क्या उनमें इसके लिए क्षमता थी?

कितने लोग यह कहा करते थे कि सजय गाधी में विचित्र प्रकार की क्षमता है और व्यावहारिक बुद्धि भी, जिसका उन्होने प्रयोग किया था—नस-बदी, सफाई और वृक्ष-रोपण मे। सभी मुख्यमत्री और सभी सरकारें एक स्वर से उनकी योजनाओं को सफल बनाने में लग गये। महामारी और अकाल मे जो स्थिति होती है, वही स्थिति थी। मैं जब कभी उन दिनों देहातों में गया—

जीप देखकर लोग भाग खड़े होते थे कि नसबंदी वाला आ गया और बहुत बार मुझे यह रिपोर्ट मिली कि कई लोगों ने गांव और घर छोड़ दिये थे। सफाई के नाम पर भी इसी प्रकार कितने मकानों और शहरों को रौंद दिया गया। तुर्कमान गेट और मुजफ्फरनगर की घटनाएं तो हमारे सामने हैं, लेकिन इस प्रकार की सैकड़ों और हजारों घटनाएं देश के कोने-कोने में घट रही थीं, जिसकी ओर ध्यान देने की चिन्ता तत्कालीन प्रधानमंत्री को कुछ नहीं थी, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि उनका बेटा जो भी कर रहा है, देश को और भविष्य को सही रास्ते पर ले चलने के लिए।

लेकिन संजय की योजनाओं का सफल असर किस पर हुआ? कांग्रेस या सरकार के ऊपर। नसबंदी ऐसी हुई कि हिन्दी प्रदेशों में कांग्रेस बांझ हो गई और सफाई का दौर-दौरा ऐसा चला कि प्रधानमंत्री से लेकर श्री संजय गांधी तक और साथ-साथ हम सभी साफ हो गये। हिन्दी का सुप्रसिद्ध मुहावरा ऐसे ही अवसरों के लिए है कि 'बड़ा जाने को तो गया, लेकिन नौ हाथ का पगहा लिए गया।' संजय ने यह चरितार्थ कर दिखलाया।

सवाल पैदा होता है कि क्या इन बातों को या इसके परिणामों को इन्दिराजी नहीं जानती थीं या नहीं समझती थीं। ऐसा नहीं है, सब कुछ जान-बूझकर किया जा रहा था। लोकसभा चुनावों के पहले कम्युनिस्ट पार्टी के महामंत्री श्री राजेश्वर राव श्रीमती गांधी से मिले थे और उन्होंने इन्दिराजी को साफ शब्दों में कहा था कि आपका बेटा आपको बर्बाद कर देगा और केवल उसके कारण कांग्रेस हार जायेगी। लेकिन श्रीमती गांधी इस बात पर उबल पड़ी थीं और उत्तर में उन्होंने कहा था कि संजय की लोकप्रियता से बहुत से दल और बहुत से लोग घबराये हुए हैं और ईर्ष्या करते हैं। इन्दिराजी के अनुसार वास्तविकता यह थी कि संजय जवाहरलालजी से भी अधिक लोकप्रिय है और जनता को आकृष्ट करता है। और यही तक नहीं, कई जगहों में, विशाल जनसभाओं में इन्दिराजी ने जिस प्रकार संजय के तारीफों के पुल बांधे थे, वह भी अपने आप में एक अप्रतिम घटना है।

एक बार उन्होंने कहीं यह भाषण दिया कि इलाहाबाद हाई कोर्ट का जब फैसला आया, तो मेरी रक्षा के लिए कोई नहीं आगे आया तो संजय ने ही मेरी रक्षा की।—मैंने जब उनके इस बयान की ओर विरोधी दल के नेता श्री चव्हाण का ध्यान आकृष्ट किया तो वे बोले—बिल्कुल गलत बोलती हैं, हम लोग सभी उनको बचाने में ही बदनाम हुए।

जो हो, संजय भारत की राजनीति में उभरा हुआ एक प्रखर सूर्य था,

जिसकी किरणें चकाचौंध पैदा कर रही थी और दोपहर के प्रचंड-ग्रीष्म-सूर्य के समान वह आकाश में चमका, जम गया और ढलने के पहले ही तारा के समान उस सूर्य का उल्कापात हो गया। कैसे सूर्यास्त हुआ, किसी को पता नही चला। देखते ही देखते उसकी कांति इतनी मलिन हो गई कि आज जितनी बातें संजय के संबंध मे आती है, वह यदि सही हैं, तो लोकतंत्र की मर्यादाओं का हनन इससे बढ़कर और कुछ नही हो सकता।

मैं इधर हाल में पं० कमलापति त्रिपाठी से मिला तो इस संबंध में बहुत बातें की कि उनके समान तथा अन्य लोग यह सब देखकर क्यों चुप थे? कमलापतिजी ने साफ शब्दों में जवाब दिया कि उन्हें स्वयं इन बातो के लिए ग्लानि है कि वे और चव्हाणजी और जगजीवन बाबू भी यह सब देख रहे थे और कोई पसन्द नही कर रहा था, लेकिन इन्दिराजी से कहने की किसी को साहस नहीं था। यदि हम लोगों ने उस समय इन्दिराजी को जाकर कहा होता कि संजय को रोकिए, आपात्काल गलत है और गिरफ्तारी अनैतिक है, तो वे भी बच जाती और देश भी तबाह होने से बच जाता और हम सब भी बच जाते।

इतिहास ने एक साथ ही सूर्योदय और सूर्यास्त दोनों देखा। दो साल भी पूरे नही हुए होगे कि सच्चाई सामने आ गई और उससे स्पष्ट हुआ कि अनैतिकता की दीवारों पर खड़ा किया महल कभी ठहर नही सकता। कांग्रेस पार्टी की 92-94 साल की मर्यादा, परम्परा और प्रतिष्ठा पर जो प्रहार सजय ने किया, उसका बदला काग्रेसजनो ने तो नही, लेकिन जनता ने ले लिया। मारुति से लेकर अमेठी तक की कहानी किसी 'लिजेंड' से कम नहीं है और यदि सारी बाते लिखी जाये, तो कई पुस्तकें भर जायेंगी। अतः सूर्योदय और सूर्यास्त के मध्यबिन्दुओ पर मैं यहा कुछ चर्चा करना चाहूंगा।

वास्तव में सजय गांधी में सामान्य ज्ञान की भी बड़ी कमी थी। पिछले वर्ष श्रीमती गांधी जब सोवियत संघ के दौरे पर गईं, तो संजय और उनका परिवार भी उनके साथ गया। वहां जब टालसटाय के घर-गाव में लोग दिखलाने ले गये, तो वहां पहुंचकर संजय ने सबों के सामने इन्दिराजी से पूछा—यह टालसटाय कौन था?

इसी भांति विहार में छोटा-नागपुर में एक बार सजयजी का दौरा हुआ और वहां डा० जगन्नाथ मिश्र एव श्री सीताराम केशरीजी ने जमकर व्यवस्था कराई। जमशेदपुर और सिंहभूमि जगमगा उठा। वहा श्री संजय गाधी ने भाषण दिया कि आप लोगों मे से हर आदमी पेड़ लगाये, जबकि छोटा-नागपुर में पेड़ छोड़कर कुछ है ही नही।

अनेक किस्से-कहानियां उनकी बुद्धि के बारे में मशहूर है। दु:ख है तो यही कि अपनी बुद्धि की प्रदर्शनी जिस भांति वे 'मारुति' में कर रहे थे, उसी भांति देश की राजनीति में करने लगे और मारुति तो नहीं ही बनी, इन्दिराजी के समान एक ऐतिहासिक नेता को भी 'मा रो ती' कर दिया।

कांग्रेस के लगभग 50-60 संसद सदस्यों ने इधर हाल में चव्हाणजी से मिलकर कहा कि सदन मे या कहीं भी सार्वजनिक रूप में मारुति आदि की चर्चा होती है, तो उसमें कांग्रेस दल को पड़ने की जरूरत नहीं है, कारण यह तो उनका व्यक्तिगत मामला है। संजय गांधी मारुति का लाभ कांग्रेस पार्टी को नहीं दे देते, जो उनके कारण पूरी पार्टी बदनाम हो। काश, यह विचार-धारा पहले आई होती, तो इतिहास कुछ और ही होता।

किसी मां के लिए पुत्र-प्रेम स्वाभाविक है। इन्दिराजी में भी संजय के लिए वह है। इधर हाल में एक दिन उन्होंने श्री सीताराम केशरी से कहा कि किसी दिन आप मां बनकर देखिए कि बेटे के लिए कितनी ममता होती है। मैं उसे मानता हूं और कद्र भी करता हूं। लेकिन क्या पुत्र गलत रास्ते को अपना ले, तो उसे सही रास्ता दिखलाना मां का कर्तव्य नहीं है? क्या इन्दिराजी ने कभी संजय को रोका कि मेरी राजनीति में तुम दखल न दो? क्या उन्होंने बार-बार मुख्यमंत्रियों या दूसरे लोगों को नहीं कहा कि इस संबंध में संजय से बात कर लीजिये? क्या उनके अपने घर पर दो-दो दफ्तर नहीं कायम थे—एक उनका और दूसरा उनके बेटे का? क्या वहां संजय गांधी प्रधानमंत्री से कम अपने को शक्तिशाली मानते थे?

जीवन्त सवालों का जवाब कुछ नहीं हो सकता। संजय गांधी ने श्री सिद्धार्थशंकर राय और श्रीमती नन्दिनी सत्पथी हटाओ और श्री नारायणदत्त तिवारी और डा० जगन्नाथ मिश्र रखो का नारा दिया था तो कौन नहीं जानता था कि नहीं चाहते हुए भी इन्दिराजी संजय गांधी की मर्जी के अनुसार चल रही हैं। इस प्रकार भारत की राजनीति का यह काला पक्ष था कि देश का प्रशासन व्यक्तिगत इच्छाओं का क्रीत-दास बनता चला जा रहा था और प्रधानमंत्री होने के नाते इसकी सबसे बड़ी जवाबदेही श्रीमती गांधी की थी।

धर्मतेजा से लेकर नारंग और रौनक सिंह के अनेक किस्से श्री संजय गाधी के साथ जुड़े हैं, जो मेरा प्रतिपाद्य विषय नहीं है। मैं श्री संजय गांधी के राजनीतिक पहलुओं पर ही विचार करना चाहता हूं या केन्द्रित रहना चाहता हूं। राजनीतिक चिन्तन में श्रीमती इन्दिरा गांधी और श्री संजय गांधी एक होते हुए भी दो थे। कारण, यदि कोई व्यक्ति इन्दिराजी का 'लोयल' था

श्रौर संजयजी का नहीं, तो उसे भी पूरी राजनीतिक मान्यता प्राप्त नहीं थी। इस संबंध में मुझे एक बार श्री चन्द्रजीत यादव ने बतलाया कि श्री नारायणदत्त तिवारी, तत्कालीन मुख्यमंत्री उत्तर प्रदेश ने प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी से एक दिन शिकायत की—श्री चन्द्रजीत यादव आपके तो 'लोयल' है, लेकिन संजयजी के 'लोयल' नहीं हैं।

श्री यादव के अनुसार उन्हें जब इस बात की जानकारी संभवतः श्रीमती मोहसिना किदवई या श्रीमती अम्बिका सोनी से हुई तो उन्होंने इन्दिराजी से मुलाकात की और कहा कि यह बात ठीक है कि मैं आपका 'लोयल' हूं, किसी और का नहीं, क्योंकि नेता आप हैं, दूसरा नहीं।

श्री संजय गांधी की राजनीतिक सूझ-बूझ में पुराने लोग कम आते थे, अपने चमचों पर ही उनका ज्यादा भरोसा रहता था और नजर रहती थी। यह सही है कि 2 फरवरी, 1977 को जगजीवन बाबू ने कांग्रेस से त्यागपत्र देकर एक कठिन परिस्थिति न खड़ी कर दी होती, तो कांग्रेस की लिस्ट संजय की लिस्ट होती और उसके अनुसार प्रधानमंत्री बनने की योजना को अमली-जामा पहनाने का भरपूर प्रयास किया जाता। लेकिन ऊंट किसी और करवट बैठ गया। अपने लोगों से व्यक्तिगत बातचीत में भी संजय गांधी यही कहा करते थे कि इस बार तो बूढों को निकाल बाहर करना है और इन बूढ़ों में श्री जगजीवनराम, कमलापति त्रिपाठी, यशवन्तराव चव्हाण, द्वारिकाप्रसाद मिश्र आदि सभी थे।

भारत की राजनीति में मुगल राजकुमारों की महत्वाकांक्षा के जो किस्से आते है, उन्हीं से मिलता-जुलता संजय का भी उद्देश्य था। मैं नहीं विश्वास करता हूं, लेकिन लोगों का यह भी कहना है कि जो गिरोह संजय के आसपास बन गया था और जिस तरह का उसका परिवेश था, उसकी मंशा यह थी कि किसी दिन इन्दिरा गांधी को भी गद्दी से उतार कर संजय को गद्दी पर बैठा दिया जाये और किसी और की मर्जी से नहीं संजय की मर्जी से। जहांगीर के जमाने में नूरजहां राजकाज चलाया करती थी और यहां भी कहने वालो का यही कहना है कि मेनका गांधी उसी नूरजहां के सपने देखा करती थी और इसीलिए जब सूर्योदय हुआ था, तो साथ-साथ 'सूर्या इंडिया' का भी जन्म हो गया।

सूर्योदय और सूर्यास्त एक-दूसरे के प्रतिलोम शब्द किनारे की तलाश में रहते हैं। सूर्य उगता है, डूबने के लिए और डूबता है, उगने के लिए—यह प्रकृति का नियम है। लेकिन यहां जो सूर्य उगा, उसने यह सोचा ही नहीं था कि डूबना भी है और जब डूब गया तो यह कल्पना करना भी कठिन है कि यह फिर से कभी उग सकेगा।

डायरी के पन्नों में इतिहास के स्वर

●

● 'संपूर्ण क्रान्ति हमारा नारा है, भावी इतिहास हमारा है। क्या यह इतिहास की विडम्बना रहेगी ? सभी जो-हुजूर, बुजदिल और चाटुकार अवश्य ही हम पर हंस रहे होंगे। 'उन्होंने सितारों को पाने की आकांक्षा की, किन्तु नरक में गिरे।' इस प्रकार वे हमारा उपहास कर रहे होंगे। विश्व में उन्हीं लोगों ने सब कुछ पाया है, जिन्होंने सितारों को पाने की आकांक्षा की है, चाहे इसमें जीवन को उत्सर्ग करना पड़ा हो।'

—जे० पी० की जेल डायरी
चंडीगढ़, 7 अगस्त, 1975

●● 'भारत का भविष्य एक ही व्यक्ति पर निर्भर है। इतनी चाटुकारिता, इतनी दासता अपने से तो संभव नहीं। अवसाद है कि मेरी आजादी नहीं रही। न लोगों से मिलने की, न सुनने की, न सुनाने की। एक बेचैनी हुई। ऐसा लगा जैसे कुछ लोग बिछड़ रहे हों, अनिश्चित काल के लिए।'

—श्री चन्द्रशेखर की जेल डायरी
26 जून, 1975

●●● 'देश, काल, परिस्थिति पर सोचना बन्द कर दिया है, कारण जो अकारण सोचा करते हैं, वे अपना दु:ख व्यर्थ में बढ़ा दिया करते हैं। और जो सोचते नहीं, बहुत अधिक ताने-बाने बुनते नहीं, अतीत और वर्तमान और भविष्य का लेखा-जोखा लेते नहीं— ऐसे लोग बड़े भले होते हैं।

मैं भी अब ऐसे लोगों की पांत में ही अपने को पाता हूं। कहना, न कहना; सुनना, न सुनना और समझना, न समझना।'

—दिल्ली 15 फरवरी, 1976
इसी डायरी के पन्नों से

इन्सान की जिन्दगी एक कहानी होती है और यदि उस कहानी को तिथियों के अन्दर हम सही-सन्तुलित ढंग से कैद कर दें, तो वह इतिहास का एक अध्याय बन जाता है। पिछले दिनो देश इतिहास के इसी दौर से गुजरा, जिसके हम सब नायक थे। जब तब मैंने प्रयास किया कि उन क्षणों को कैद करके रखू, नही तो ये स्मृति से फिसल जायेंगे।

- आज जब मैं अपनी डायरी के उन पन्नों को उलटता हूं, तो लगता है मानो इतिहास क्रमबद्ध तिथियों के सहारे परिच्छेदों में हमारे सामने है। हालांकि यह भी सही है कि इतिहास केवल तिथियों का लेखा-जोखा नही होता, स्थितियों, परिस्थितियों और चरित्रों के सहारे उसकी जीवन्तता अमर रहती है। 1974 का समय भारत की राजनीति या देश के इतिहास में एक ऐसा ही समय था, जब संभावनाओ के स्वर मुखर हो रहे थे।

कोई भी देश महान् होता है, केवल अपनी राजनीतिक चेतना के कारण नही, बल्कि सास्कृतिक और साहित्यिक धरोहर, नैतिक मूल्य, नेतृत्व की उदारता, पूर्वजों की तपस्या, वर्तमान अभिव्यक्ति और नागरिकता की श्रेष्ठ भावनाओ से कारण। भारत के पास ये सभी बातें रही हैं। यहां का जनतंत्र दुनिया में एक उदाहरण है, आज के सदर्भों में भी। हमसे भूलें संभव है, लेकिन उन भूलों की मजार पर जो राष्ट्र सुनहला किरीट रखने की क्षमता रखेगा, वह दुनिया में कभी भी नीचे नही जा सकता। भारत मे यह क्षमता है और इसके पीछे हमारा गौरवशाली इतिहास है। महावीर और गौतम के संदेश हैं, चन्द्रगुप्त और अशोक के शिलालेख हैं, वैशाली और लिच्छवी की परम्परा है, नालन्दा और विक्रमशिला के अवशेष हैं, महाभारत और रामायण की गाथाएं हैं, हिमालय-सा मुकुट और गंगा-सी निर्मल धारा है, वेद-पुराण-स्मृति और नीति-कथाएं है, शंकराचार्य-कबीर-सूर-तुलसी-रसखान आदि के मार्गदर्शन हैं और आधुनिक युग मे महात्मा गाधी के समान एक ऐसे महा-मानव का संरक्षण है जो भारत की समग्रता को विविधताओं के बीच से जागृत करता है।

कोई भी देश मरता है, अपनी हठधर्मिता के कारण और जीवित रहता है अपनी उदारता के बल पर। मेरी डायरी के पन्ने कोई दिशा-बोध नही है। लेकिन उनमें जागृति के सपने जरूर हैं और घटनाचक्रों में जीवन्तता है, साथ ही एक जीवित विश्वास है। यह अपनी निजी थाती औरों के लिए सुलभ हो, जिससे बंद दरवाजे खुले और वातायन की राह स्वस्थ और ताजी हवा आ सके।

दिल्ली, 13 जनवरी, 1974

आज केन्द्रीय चुनाव समिति की सुबह और शाम दोनों बैठकों में मैं काफी सक्रिय भी रहा और कारगर भी। पहले लोग यह सोचते थे कि हम क्या कर पायेंगे, परन्तु अब पता चल गया।

मैंने संसद सदस्यों, महिलाओं एवं नवजवानों का केस जी-जान से रखा और सुनवाई भी हुई। मेरी बगल में एक ओर ब्रह्मानन्द रेड्डी और दूसरी ओर कोलूर मलप्पा बैठते हैं तथा दोनों बहुत खुश रहते हैं। मलप्पाजी ने तो मुझे दिल से मेरी बहुत प्रशंसा की और सिद्धार्थ बाबू ने तो लिखकर भी दाद दिया।

सैकड़ों कार्यकर्ताओं से मिला, उनकी अनुभूतियों से परिचित हुआ। लोगों को यह शिकायत नहीं होने दी कि मैं मिलता-जुलता नहीं हूं।

बहुत संतोषप्रद सब कुछ रहा।

दिल्ली, 14 जनवरी, 1974

शाम को 4 बजे से सी० ई० सी० की बैठक थी, यह 6 बजे शाम के लिए स्थगित हुई और 6 बजे की बैठक 9 बजे रात के लिए और 9 बजे रात की बैठक—कल 9 बजे दिन के लिए।

दिन भर लोगों का तांता। नवयुवक, वृद्ध, हर वर्ग के लोग प्रसन्न हैं। लोगों की संख्या इसलिए भी बढ़ रही है, चूंकि उन्हें यह भान हो गया है कि यह आदमी बोलता है। सम्पर्क भी बढ़ा है तथा व्यक्तिगत प्रभाव भी।

बम्बई सेंटर की सीट पर कांग्रेस को हार हुई, इसका पश्चात प्रभाव नहीं पड़ेगा।

चार मुख्य, गुटबाजी, ईर्ष्या, आपसी होड़ से संख्या कमजोर होती जा रही है।

कांग्रेस टिकट बांटने का माम[illegible] [illegible] मामला पार[illegible] जाती है कि कौन किस जाति का [illegible]

दिल्ली, 1

मुझे अपने काम से सतोष रहा है। कार्यकर्त्ताओं से मिलना भी अपने आप में एक बहुत बड़ी बात होती है। निश्चित रूप से मेरा सपर्क बढ़ा है।

देश की और पार्टी की स्थिति अच्छी नहीं है। मालवीयजी और मोर्यजी को मंत्रिमण्डल में लेने से आलोचनाए बढ़ी हैं। रोष भी। एक वर्ग के लोगो को ही लिया गया है।

मुझे मंत्रिमण्डल में जाने का व्यक्तिगत लोभ कभी नही रहा। इच्छा भी नही होती। एक अच्छा पार्लियामेन्टेरियन रहूं—इसकी अभिलाषा जरूर रहती है।

कृष्णकातजी से घण्टों देश-काल परिस्थिति पर बातें होती रहीं। महाराष्ट्र मे आज भी हम एक लोकसभा और दो असेम्बली सीट बुरी तरह हार गये।

दिल्ली, 16 जनवरी, 1974

केन्द्रीय चुनाव समिति की बैठक में सिद्धार्थ दा ने बहुगुणाजी से पूछा— 'तुम्हारे यहां लोगों को राशन मिलता है या नहीं ?'[1]

'बहुत तकलीफ है और कमी है।'—बहुगुणा बोले।[2]

'इसे पूरा करो, नही तो हार जाओगे ? कितनी भी बड़ी-बड़ी योजनाएं क्यों न बनाई जायें, जनता को अगर खाना-कपड़ा नही मिलता तो वह बेकार है।'—बिल्कुल सही और सतुलित कथन था सिद्धार्थ बाबू का।

कोलूर मलप्पा, सुब्रह्मण्यम और ब्रह्मानन्द रेड्डी दर्शक मात्र रहे।

मैंने, चन्द्रशेखरजी ने, फखरुद्दीन साहब ने एव बाबूजी ने काफी योगदान दिया।

दिल्ली, 17 जनवरी, 1974

कल रात 11 बजे से केन्द्रीय चुनाव समिति की बैठक होने को थी, वह नही होकर आज 10 बजे से हुई। उड़ीसा के सम्बन्ध मे मैंने प्रथम नाम पर ही

[1-2]श्री सिद्धार्थशंकर राय उस समय बंगाल के मुख्यमत्री थे और श्री बहुगुणा उत्तर प्रदेश के। केन्द्रीय चुनाव समिति मे जिस प्रात के टिकट का फैसला होता है, वहा के मुख्यमंत्री या कांग्रेस विधायक दल के नेता और प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष भी भाग लेते हैं।

दिल्ली, 13 जनवरी, 1974

आज केन्द्रीय चुनाव समिति की सुबह और शाम दोनो बैठकों मे मैं काफी सक्रिय भी रहा और कारगर भी। पहले लोग यह सोचते थे कि हम क्या कर पायेंगे, परन्तु अब पता चल गया।

मैने संसद सदस्यों, महिलाओं एवं नवजवानो का केस जी-जान से रखा और सुनवाई भी हुई। मेरी बगल में एक ओर ब्रह्मानन्द रेड्डी और दूसरी ओर कोलूर मलप्पा बैठते हैं तथा दोनों बहुत खुश रहते है। मलप्पाजी ने तो खुले दिल से मेरी बहुत प्रशंसा की और सिद्धार्थ बाबू ने तो लिखकर भी दाद दिया।

सैकड़ों कार्यकर्त्ताओं से मिला, उनकी अनुभूतियों से परिचित हुआ। लोगों को यह शिकायत नही होने दी कि मैं मिलता-जुलता नही हूं।

बहुत संतोषप्रद सब कुछ रहा।

दिल्ली, 14 जनवरी, 1974

शाम को 4 बजे से सी० ई० सी० की बैठक थी, वह 6 बजे शाम के लिए स्थगित हुई और 6 बजे की बैठक 9 बजे रात के लिए और 9 बजे रात की बैठक—कल 9 बजे दिन के लिए।

दिन भर लोगों का तांता। नवयुवक, वृद्ध, हर वर्ग के लोग प्रसन्न हैं। लोगों की सख्या इसलिए भी बढ़ रही है, चूंकि उन्हे यह भान हो गया है कि यह आदमी बोलता है। संपर्क भी बढा है तथा व्यक्तिगत प्रभाव भी।

बम्बई सेंटर की सीट पर काग्रेस को हार हुई, इसका अच्छा प्रभाव नही पडेगा।

बढते मूल्य, गुटबाजी, ईर्ष्या, आपसी द्रोह से सस्था कमजोर होती जा रही है।

काग्रेस टिकट जीत या सस्था की मर्यादा से अधिक इस बात पर दी जाती है कि कौन किस जाति का है तथा कौन किसका आदमी है।

दिल्ली, 15 जनवरी, 1974

आज केन्द्रीय चुनाव समिति की बैठक में उत्तर प्रदेश की करीब-करीब सभी सीटों का फैसला हो गया। प्रधानमंत्री को यह भार दिया गया कि वे मंत्रियों के टिकटों को स्वय देखें। मेरा अपना अनुमान है कि प्रधानमंत्री कुछ मंत्रियो को टिकट अस्वीकार करने वाली हैं।

मुझे अपने काम से सतोष रहा है। कार्यकर्ताओं से मिलना भी अपने आप में एक बहुत बड़ी बात होती है। निश्चित रूप से मेरा सपर्क बढ़ा है।

देश की और पार्टी की स्थिति अच्छी नही है। मालवीयजी और मोर्यजी को मत्रिमण्डल में लेने से आलोचनाए बढ़ी है। रोष भी। एक वर्ग के लोगों को ही लिया गया है।

मुझे मत्रिमण्डल में जाने का व्यक्तिगत लोभ कभी नही रहा। इच्छा भी नही होती। एक अच्छा पालियामेन्टेरियन रहूं—इसकी अभिलाषा जरूर रहती है।

कृष्णकातजी से घण्टों देश-काल परिस्थिति पर बातें होती रही। महाराष्ट्र में आज भी हम एक लोकसभा और दो असेम्बली सीट बुरी तरह हार गये।

दिल्ली, 16 जनवरी, 1974

केन्द्रीय चुनाव समिति की बैठक में सिद्धार्थ दा ने बहुगुणाजी से पूछा—'तुम्हारे यहा लोगों को राशन मिलता है या नही ?'[1]

'बहुत तकलीफ है और कमी है।'—बहुगुणा बोले।[1]

'इसे पूरा करो, नही तो हार जाओगे ? कितनी भी बड़ी-बड़ी योजनाए क्यों न बनाई जायें, जनता को अगर खाना-कपड़ा नही मिलता तो वह बेकार है।'—बिल्कुल सही और सतुलित कथन था सिद्धार्थ बाबू का।

कोलूर मलप्पा, सुब्रह्मण्यम और ब्रह्मानन्द रेड्डी दर्शक मात्र रहे।

मैंने, चन्द्रशेखरजी ने, फखरुद्दीन साहब ने एवं बाबूजी ने काफी योगदान दिया।

दिल्ली, 17 जनवरी, 1974

कल रात 11 बजे से केन्द्रीय चुनाव समिति की बैठक होने को थी, वह नही होकर आज 10 बजे से हुई। उड़ीसा के सम्बन्ध में मैंने प्रथम नाम पर ही

[1-2] *श्री सिद्धार्थशंकर राय उस समय बगाल के मुख्यमत्री थे और श्री* बहुगुणा उत्तर प्रदेश के। केन्द्रीय चुनाव समिति में जिस प्रात के टिकट का फैसला होता है, वहा के मुख्यमंत्री या काग्रेस विधायक दल के नेता और प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष भी भाग लेते हैं।

आपत्ति की। 5वें को सी॰ पी॰ आई॰ को देने पर भी मेरी आपत्ति हुई। और फिर जितने भी संसद सदस्यों ने मुझे कहा था सबों की मैंने वकालत की।

श्रीमती शांतिदास को टिकट दिलाने में मैं सफल रहा। काफी बहस आज करनी पड़ी। नन्दिनी सत्पथी[1] ने जितना आसान समझा होगा—वैसा न हुआ।

श्री सिद्धार्थशंकर राय ने मुमताज अली की बड़ी वकालत की, काफी प्रभाव के साथ और गिड़गिड़ा कर भी—परन्तु उसे नहीं मिल पाया। मुझे लगा—'बेचारा सिद्धार्थ'!

नन्दिनी ने कई जीतने वालों का व्यक्तिगत द्वेष से विरोध किया। मैंने चन्द्रशेखरजी को लिखकर दिखाया—45। वे बोले—25।[2]

जो हो, हममें से किसी को भी बहुमत की आशा इस लिस्ट से तथा नन्दिनी के नेतृत्व से नहीं है। अतः मैंने भुवनेश्वर से चिन्तामणि पाणिग्रही[3] का नाम दिया।

दिल्ली, 18 जनवरी, 1974

राजनीति में निर्णय के क्षण एकाध ही होते हैं। चिन्तामणि पाणिग्रही का सबसे पहला फोन आया—वे उड़ीसा जाने को तैयार नहीं हैं। वे आये भी और मैं उन्हें लेकर डॉ॰ शंकर दयाल शर्मा[4] के यहां गया—बहुत बातें हुईं। मेरी और डॉ॰ साहब की बातें मिलती थीं—परन्तु हम लोगों ने निर्णय का भार पाणिग्रही को दिया। वे पीछे हट रहे हैं। साहस की कमी है।

मुझे ऐसा मौका मिलता—तो मैं पीछे नहीं हटता। हम लोगों का ख्याल है—नन्दिनी हारेंगी, चिन्तामणि जीत सकते थे और उड़ीसा-कांग्रेस को नये नेता की जरूरत है।

आज कई लोग आभार प्रकट करने आये।

मैंने अपना कर्त्तव्य पूरा किया तथा लोगों को, कार्यकर्त्ताओं को तथा नेताओं को भी मेरे काम से संतोष है।

---

[1]श्रीमती नन्दिनी सत्पथी उन दिनों उड़ीसा की मुख्यमंत्री थीं।

[2]हालांकि हम सबों का अनुमान गलत हुआ। कांग्रेस को चुनावों में वहां बहुमत मिला और सरकार बनी।

[3]श्री चिन्तामणि पाणिग्रही उस समय लोकसभा के सदस्य थे। इन दिनों वे उड़ीसा विधानसभा में कांग्रेस की ओर से विपक्ष के नेता थे।

[4]तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष।

कल पं० कमलनाथ तिवारीजी की अकस्मात मृत्यु हो गई।

कोडरमा, 27 जनवरी, 1974

राजनीति में निर्माण कठिन है, बवण्डर आसान है। कोडरमा में बिहार बन्द के दिन गोली चल गई, दो आदमी मारे गये। केवल दो-चार लोगों के कारण—लेकिन जनता का रोष हम लोगों के ऊपर है। मूल्य-वृद्धि हर जगह है, परन्तु दृश्य उपस्थित यहीं होता है।

आज पहली बार मुख्यमंत्री[1] से इस सम्बन्ध में मिलने गया। उनके डेरे पर पहली बार गया हो। अच्छे व्यावहारिक और मधुर ढग से उन्होंने बातें की। मेरी दो मागें थीं—कोडरमा की घटना की न्यायायिक जाच हो तथा निर्दोष व्यक्तियो को अविलम्ब मुक्त किया जाये।

पटना से सीधे चलकर रात 10 बजे कोडरमा पहुंचा और 1-30 बजे रात तक लोगों से मिलता रहा। रोष, क्रोध, असंतोष—स्वाभाविक है, परन्तु राजनीति में रहने वाले व्यक्ति को सब सहना ही पड़ता है।

कोडरमा से कालका पकड़कर कलकत्ता गया।

जबलपुर, 16 फरवरी, 1974

जबलपुर आया—माध्यम है यहा के टिकट चैंकिग कल्याण संघ के अधिवेशन का उद्घाटन, लेकिन मेरी यहा की सबसे बड़ी उपलब्धि रही पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्रजी से लगभग दो घण्टे तक बातें।

राजनीति का यह चाणक्य—आज स्थिर बैठा है, परन्तु इनकी दृष्टि में राजनीति की हर तस्वीर है। भूत, भविष्य और वर्तमान। विश्वासपूर्वक उन्होने बहुत सारी बातें कही। मेरे उम्र के राजनीतिज्ञ को जो कुछ नही कहना चाहिए था—वह भी उन्होंने कहा।

'प्रधानमंत्री के इर्द-गिर्द इस समय चापलूसो और भ्रष्ट राजनीतिज्ञो की परिधि बन गई है।'—मिश्रजी ने वेदना के साथ कहा—'पहले मैं जो सलाह उन्हे देता था, वह उन्हें अच्छा लगता था, अब जो सलाह देता हूं वह बुरा लगता है। ऐसी स्थिति मे मैंने यही उचित समझा कि शाति से इज्जतपूर्वक अलग बैठ जाना चाहिए।'

जबलपुर विश्वविद्यालय के उप-कुलपति डा० अग्निहोत्री से भी मिला।

---

[1]उस समय बिहार में श्री अब्दुल गफूर मुख्यमंत्री थे।

दिल्ली, 18 फरवरी, 1974

लोकसभा का बजट-सत्र—पहला दिन—भारी शोर-शराबा और हंगामा। संसद के सम्मिलित सभा में सेंट्रल हाल मे भाषण के समय मार्क्सवादी सदस्यों द्वारा अभूतपूर्व अशोभनीय दृश्य। बहिर्गमन।

मैं स्थिर बैठा रहा—किसी ने पूछा—आप क्यों नही उठकर रोकते ?

'मैं' क्या 'वाच एण्ड वार्ड मे हूं ?'—मेरा जवाब था।

बात भी सही है। जो कांग्रेसी-सदस्य खैरखाही दिखा रहे थे या जो धक्कम-धुक्का कर रहे थे—उनका न तो औचित्य था और न यह शालीनता थी।

स्थिर दिन और अस्थिर रातें। कभी-कभी सोचता हू—क्या ही अच्छा होता यदि मैं केवल एक लेखक और पाठक होता।

ट्रेन में, 21 फरवरी, 1974

वाराणसी, आजमगढ और रात मे डिलक्स पर सवार दिल्ली रवाना। उत्तर प्रदेश मे भयानक चुनाव तैयारी चल रही है। सभी राजनीतिक दलो के लिए जीवन और मरण की लड़ाई है। कांग्रेस के लिए प्रतिष्ठा का प्रश्न। प्रधानमंत्री का अपना प्रान्त और 1971 और 1972 में कांग्रेस ने जो कुछ अर्जित किया है, उसके बाद उनका दायित्व और बढ जाता है।

पहले कांग्रेस एक ओर और सभी पार्टियां दूसरी ओर होती थी। परन्तु इस बार भारतीय क्रान्ति दल, जनसंघ और संगठन कांग्रेस भी सत्तारूढ़-कांग्रेस के मुकाबले पर है। कोई किसी से कम नही। हर ओर से कांग्रेस को चुनौती है। युवा वर्ग विद्रोह मे है। जनता मे रोष और घृणा दोनों हैं। पार्टी को अगर भ्रष्टाचार से नही बचाया गया तो देश टूटेगा, पार्टी खत्म होगी और नेता का सम्मान धूलि-धूसरित हो जायेगा।

नैतिक मूल्यों को खोकर हम कब तक चलेंगे। और अगर सरकार बन गई तो जनता शायद बर्दाश्त नही करेगी। गुजरात का हाल हो जायेगा। प्रधानमत्री क्यों नही समझती ?

ट्रेन में, 17 मार्च, 1974[1]

कल पटने मे अशांति की काली छाया मण्डरा रही है, इसीलिए मैं यहा

[1]बिहार मे आन्दोलन की शुरूआत 18 मार्च, 1974 से हुई।

चौथा फोन था—'दिनमान' के संपादक श्री रघुवीर सहाय का। उनका प्रश्न था कि पटना मे जो कुछ हो रहा है, उसका मूल क्या है तथा जे० पी० की स्थिति क्या है ?

जल्दबाजी में कई काम किये तथा हर सप्ताह की भांति शाम को डिलक्स ट्रेन से पटना के लिए विदा हो गया।[1] शांत-सौम्य-सुखद शीत-ताप-नियंत्रित रेल का डिब्बा, जहा बार-बार मुझे कृष्णकांतजी याद आते हैं।

पटना, 6 अप्रैल, 1974

पटना में जयप्रकाशजी से मिलने गया और बहुत सारी सन्तुलित बातें की। प्रधानमंत्री के साथ ऐसा कटु सम्बन्ध न बने इसके लिए बड़ी होशियारी से पेशकश की। मैंने अपनी शंका उन्हें बताई—ललित बाबू और गफूर सरकार से ध्यान हटकर आपके और प्रधानमंत्री के विवाद की ओर चला जाये, ऐसा प्रयास हो रहा है, सफल।—वे इससे सहमत हुए।

मैंने छोटी मुंह बड़ी बात कही—आपके और इन्दिराजी के इतने अच्छे सम्बन्ध हैं, फिर बात करके उसके बीच कहीं कोई बात पैदा हो गई है तो उसे मिटायें।

—शायद अब अन्तिम बात न हो।—उन्होंने उसांस लेकर कहा।

जयप्रकाशजी बच्चों की तरह सरल और भावुक हैं। उनकी आंखों में आंसू तैर जाते हैं।

दाऊद नगर रुकता हुआ रात औरंगाबाद पहुंचा और यही रुका।

ट्रेन में, 7 अप्रैल, 1974

बिहार में ज्वालामुखी कगार पर है। मैं आज औरंगाबाद-शेरघाटी और गया ब्रजलाल बाबू[2] के लिए गया, परन्तु हर जगह छात्रों को सत्याग्रह पर बैठे देखा। पटने में करीब एक सौ जगहो पर, गया में कई स्थानों पर। शायद आजादी के बाद युवक वर्ग मे इतनी अनुशासनात्मक बात कभी देखने मे नही आई।

हर चौराहे और नुक्कड़ पर पांच-पाच छात्र 36 घण्टे की भूख-हड़ताल पर—यह मामूली बात नही है।

---

[1]जब तक मैं संसद सदस्य रहा, शायद ही किसी शनिवार और रविवार को दिल्ली में रहा होऊं। बराबर क्षेत्र में या बिहार चला जाता था।

[2]कांग्रेस की ओर से एम० एल० सी० के उम्मीदवार थे।

औरंगाबाद के कलक्टर ने खाना खिलाया तथा शेरघाटी में इन्द्रदेव गुप्ता ने पुनः खिला दिया।

गया से मुगल-सराय पैसेंजर से आया और मुगल-सराय में डिलक्स पकड़ रहा हूं।

दिल्ली नियति-बोध है। सुख भी; दुःख भी। अनुराग भी; वीराग भी।

मद्रास, 9 अप्रैल, 1974

बहुत दिनों के बाद मौका मिला है अकेलेपन का, अनजान पथों पर भटकने का, हवाई जहाज में लिखने और पढ़ने का। यह मैं मद्रास से मदुराई के रास्ते में बादलों के ऊपर से लिख रहा हूं।

दिल्ली में सवेरे कृष्णकांतजी आये, उनकी वेदना अच्छी तरह समझता हूं—इन्दिराजी और जयप्रकाशजी के विवाद के सम्बन्ध मे एक वक्तव्य लेकर आये—मैंने उसे पसन्द किया और सेन्ट्रल हाल में देखते ही देखते उस पर 57 सदस्यों के हस्ताक्षर हो गये। 'फेलो-ट्रेवलर्स' भाइयों को कसकर चपत लगी। उन्नीकृष्णनन लाबी मे झल्लाने लगे, नटवरभाई पटेल ने डांटा।

···के पास बैठने का थोड़ी देर मौका मिला। वे मेरे लिए सागर हैं, मेरे किसी जन्म के पुण्य का फल।

शाम को 6 बजे मद्रास की फ्लाइट से 10 बजे मद्रास पहुंचा। एक साधारण से घर में श्री जवारीलाल गडिया के यहां रुका, जमीन पर सोया और अयाचित प्रेम मिला।

पटना, 14 अप्रैल, 1974

जयप्रकाशजी से मिलने गया—बहुत सारी बातें हुईं। महानता उनकी हर बात से टपकती है। अबोध के समान सारी बातें हुईं।

दिल्ली, 16 अप्रैल, 1974

आज शाम चाय पर जो लोग आये उनमें साहित्यिक और राजनीतिक दोनों प्रकार के स्तम्भ थे,—डा० शंकरदयाल शर्मा, डा० रामधारी सिंह दिनकर[1], डा० कर्ण सिंह, बहुगुणाजी, गुजराल साहब, डी० पी० यादव, कृष्णकान्त, साहिर लुधियानवी, नाजिर हुसैन, श्रीमती कर्ण सिंह, भागवत झा 'आजाद', श्रीमती सुमित्रा कुलकर्णी, चन्द्रशेखरजी आदि कई लोग थे।

---

[1]इसके पाच-सात दिनों बाद ही मद्रास में दिनकर जी की असामयिक मृत्यु हुई।

दिनकर जी और साहिर साहब ने कई कविताएं सुनाई। बड़ा अच्छा रहा। माहौल साहित्यिक था और जो लोग राजनीतिक थे उनमें भी साहित्यिक रुचि थी।

मुझे बड़ा अच्छा लगा। इसलिए कि राजनीति का व्यवसाय भले करता होऊं दिल साहित्यिक है। इतने सारे लोगों का एक साथ जुटे रहना भी मामूली बात नही कही जायेगी।[1]

दिल्ली, 19 अप्रैल, 1974

बिहार के विक्षुब्ध कांग्रेस के नेतागण यहां कैम्प कर रहे है और काफी गतिविधिया है। एक व्यक्ति के कारण पूरा बिहार तथा बिहार-कांग्रेस का जनाजा निकल रहा है लेकिन दु.ख यही है कि उस आदमी के विरुद्ध यहा कोई सुनवाई नही है।

मैं इस सिलसिले में आज कांग्रेस-अध्यक्ष, चन्द्रजीतजी, तथा जगजीवन बाबू से मिला और बाते की।

स्टार-पाकेट-बुक्स की 300वी पुस्तक आज प्रकाशित हुई—दिनकरजी की उर्वशी। उप-राष्ट्रपति पाठक जी समारोह मे आये। मैंने, दिनकरजी ने, अक्षयजी ने और अमृता प्रितम ने भी अपने विचार प्रकट किये।

पटना, 21 अप्रैल, 1974

बहुत राजनीतिक सरगर्मी रही इन दिनों। बिहार के राजनीतिक समाचारों से अखबारो के पन्ने भरे रहे। मैं भी उनमे छाया रहा। सुरेश कुमार[2] के नाम आने से और जगजीवन बाबू द्वारा उस सम्बन्ध में असहमति प्रकट

---

[1]इस गोष्ठी मे दिनकरजी ने 'रश्मिरथी' और 'कुरुक्षेत्र' के कई अंश सुनाए। बीच की दो पंक्तियों पर बड़ा मजा आया—

'जब नाश मनुज का आता है,
सारा विवेक मर जाता है।'

इस पर कांग्रेस-अध्यक्ष डा० शकरदयाल शर्मा 'वाह-वाह' कर उठे, तब दिनकरजी ने अट्टहास करते हुए कहा—'यह मैं तुम्ही लोगो के लिए सुना रहा हूं—'मैडम' को जाकर बता देना।' उन दिनो गुजरात और बिहार मे आन्दोलन जारी था।

[2]श्री जगजीवनराम के पुत्र, बिहार में एम०एल०ए० थे, उन्हें मंत्रिमडल में शामिल होने को कहा गया था, लेकिन जगजीवन बाबू ने ही मना कर दिया था।

करने से और भी राजनीतिक वातावरण सरगर्म हो गया है।

मैं यह मानकर चलता हूं कि बिहार का वर्तमान आन्दोलन भ्रष्टाचार के खिलाफ है और उसके मूल में दो चार लोग है, जिन्होंने अपना अड्डा बना रखा है। रामजयपाल बाबू के ड्राप करने से लोगों को स्वाभाविक दुःख है।

दिन भर दौड़-धूप जारी है। पता नहीं, उसका अंतिम रूप क्या होगा। रामलखनजी, नागेन्द्रजी, रामसरनजी, दोनों आजाद आदि सभी यहीं हैं।

पटना, 27 अप्रैल, 1974

पटना का वातावरण बिल्कुल अशांत है। नई पीढ़ी का क्या होगा! अनुशासन, भय, लिहाज पूरी तरह से उठता जा रहा है। लोगों के क्रोध हर वर्ग और दल के राजनीतिज्ञों के प्रति है। कांग्रेस के प्रति सबसे अधिक, कारण यह सत्ता में है तथा मंत्रियों के भ्रष्टाचार के किस्से मशहूर हैं।

पटना के नुक्कड़ों पर जन-सभाएं होती रहती है, एक से अनेक घृणास्पद गरमागरम भाषण, रातों में चौराहों पर, नुक्कड़ो पर कवि सम्मेलन, नाटक और सड़कों पर मशाल जुलूस। कवि सम्मेलन मे रेणु और नागार्जुनजी आदि आगे रहते है।

क्या यह सास्कृतिक क्रान्ति का रूप तो नही है?

विक्षुब्ध दल में आपसी विश्वास और मतैक्य का अभाव है। एक-दूसरे के प्रति जलन और पीड़ा है। आज नागेन्द्रजी के यहा घण्टो बैठकर मैंने दूर करने की कोशिश की।

दिल्ली, 9 मई, 1974

रात के एक बज रहे हैं और लोकसभा की कार्रवाई चल रही है। विरोधी दलो ने आज अविश्वास प्रस्ताव रखा था और 3 बजे से उस पर बहस चली, प्रधानमंत्री ने अभी-अभी जवाब दिया है तथा अन्त मे श्री ज्योतिर्मय बसु बोल रहे है। इसके बाद वोटिंग होगी, रात के दो बजेंगे। ऐतिहासिक क्षण होता है यह सब। पूरी उपस्थिति है तथा ज्योतिर्मय बसु का आक्रमण बडे ही चोटिले ढंग से हो रहा है।

आज संसदीय दल का चुनाव हुआ और उसमे मैं सेकेण्ड हाईएस्ट वोट 203 से कार्यकारिणी के लिए विजयी हुआ। डागा जी को मुझसे 4 वोट अधिक मिले। सोशलिस्ट फोरम बुरी तरह से पिट गया।

लोगों का स्नेह, अपनापन और सद्‌भाव मुझे मिला, जिसे संजोकर चलना है।

चतरा, 19 मई, 1974

क्षेत्र के दौरे का अपना ही आनन्द है। लेकिन युवा वर्ग की आखों में रोष और असंतोष है तथा कांग्रेसियों के प्रति विचित्र हिकारत है।

हण्टरगंज को अपना घर मानता हूं, किन्तु यहा आने पर पता चला कि लड़को मे यहां भी रोष है।

मैंने अपने क्षेत्र के हर हिस्से का दौरा पूरा किया। राजनीति में हूं तो कैसे अलग रह सकता हूं। संयुक्त तो रहना ही पड़ेगा।

कोडरमा, 21 मई, 1974

कोडरमा मे कर्मा रेस्ट हाउस में ठहरा था कि छात्रों का एक दल 25-30 का आया और तीव्रता से अपनी बातें शुरू की। मैंने उनकी बातों का जवाब शांति से दिया—दूसरा रहता तो भभक उठता। लेकिन कोई सैद्धान्तिक बात हो तब तो उसका जवाब दिया जाये।

ग्रामीण क्षेत्रो मे भी स्कूलों, प्रखण्डों तथा अन्य मकानो की दीवारों पर बड़े भद्दे नारे लिखे है। युवा-वर्ग और छात्रों में रोष और असंतोष दोनों है। कही श्रीलंका की राह तो हम नहीं जा रहे है?

गोली इसका जवाब नही है, लाठी और अश्रुगैस भी नही। जनता का सहयोग यदि उठ जाये तो पुलिस के सहारे शासन चलाना बड़ा कठिन होता है।

दिल्ली, 5 जून, 1974

कांग्रेस-अध्यक्ष डा० शंकरदयाल शर्मा और रघुरामैया से मिला। बिहार के बारे में काफी चर्चा हुई। बिहार की समस्याएं उलझती जा रही हैं। पता नही कहा तक क्या हो?

आज जे० पी० के नेतृत्व में पटना मे बहुत बड़ा जुलूस निकला। 'इन्दिरा-ब्रिगेड' के लोगों ने उस पर गोली चलाई, परन्तु जुलूस का एक आदमी न तो हिला और न किसी ने प्रतिशोध की भावना दिखाई। अनुशासित और अहिंसात्मक।

अच्छा और बुरा दोनो हुआ कि आज के दिन मैं पटना में नहीं रहा।

पटना, 8 जून, 1974

मैं और कृष्णकांतजी दोनों आज पटना आये और साथ-साथ जे० पी० से मिले और एक घण्टे तक बातें कीं। मेरा अपना अनुमान है कि दीक्षितजी[1] और जे० पी० में मुलाकात और बात हो जाये तो समस्या का हल हो सकता है।

मेरा अपना मत है कि विधानसभा भंग हो और आन्दोलन का भी स्थगन हो। राष्ट्रपति के चुनाव के बाद सारा निर्णय किया जाये। मैंने जे० पी० से भी यह बात कही।

सदाकत-आश्रम में केशरीजी से भी इन्ही मुद्दों पर बातें हुई।

दिल्ली, 4 जुलाई, 1974

श्री फखरुद्दीन अली अहमद से मिलने गया। एखलाक, अपनापन तथा पुर-जोरी के साथ मिले। भला लगा, पास बैठाया और सादी बातें कीं, लगता था उत्साह और उमंग से दस साल उम्र कम हो गई हो—जवान हो गये हों। —राष्ट्रपति से बड़ा और कौन पद होता है?

श्री मोहन धारिया ने सवेरे के नाश्ते पर बुलाया। बहुत सारी बातें हुईं—बिहार के बारे में, देश के सम्बन्ध में भी तथा संस्था के सम्बन्ध में भी, आखिर हम जा कहां रहे हैं तथा हमारे जाने का उद्देश्य क्या है?

एक सज्जन ने 'अकबर' में खाने को बुलाया और बड़ी जिद्द की पीने के लिए। मैं बेदाग निकल आया। लेकिन एक बात समझ में आई कि ये इंडस्ट्रीयलिस्ट किस प्रकार राजनीतिज्ञों को भ्रष्ट करते है।

पटना, 6 जुलाई, 1974

सवेरे की प्लेन से पटना आया। उसके पहले दिल्ली में राजबहादुरजी के यहां नाश्ते पर गया। फिर वही बिहार की सारी समस्याएं और बातें और विवेचन। —दिल्ली मे आम ख्याल यह है कि जयप्रकाशजी का आन्दोलन समाप्त-प्राय है, लेकिन बड़ी बात यह है कि जयप्रकाश सबों के सिर पर आज सवार है।

दिल्ली छोड़ने के पहले मन को हल्का करने के लिए सारी बातें कह आया—रोष नही, दया या करुणा चाहिए।

---

[1] श्री उमाशंकर दीक्षित उस समय गृह-मंत्री थे और जे० पी० से पटना जाकर बातें करने वाले थे, लेकिन बाद में नही गये।

पटना में बीमार प्रबोध को देखने पोपुलर नर्सिंग होम गया।

राजनीति से कट गया हूं, किसी से भेंट मुलाकात नहीं। रात 8 बजे कोडरमा के लिए रवाना हो गया।

इटखोरी, 8 जुलाई, 1974

सड़क छोड़कर कच्ची-केवाल-मिली मिट्टी में उतर गया हूं, पांवों में कई किलो लिपटी केवाल मिट्टी, रिमझिम पानी में अधभीगे कपड़े, हाथों से थामा गया पायजामा, ढलती सूरज की रोशनी, फिसलते-गिरते हम दैहर पहुंचे—चौपारण के एक गांव में। कमला-मन्दिर के दलान में गांव के करीब-करीब सभी बच्चे-बूढ़े-जवान इकट्ठे हो गये—एम०पी० साहब पहली बार आये हैं।

मुझे एलेक्शन के पहले की बात याद आती है—इसी गांव में वोट के लिए जब आया तो एक व्यक्ति ने कहा—जीतने के बाद भी आइयेगा।

मैं आज चन्दवारा, ठावथान, सिंघरांवा, चौपारण, महाराजगंज, दैहर होता हुआ रात में लालटेन की रोशनी में इटखोरी जंगल-विभाग के डाक बंगले में आकर रुका।

कोडरमा, 10 जुलाई, 1974

शहरों के नज़दीक ज्यों-ज्यों जाता हूं खींच-तान और बढ़ता जाता है। आज दिन भर हजारीबाग में रहा। क्षेत्र में जहां-जहां भी गया था वहां के लोगों को यहीं बुला लिया था और दिन भर पचास से लेकर सौ आदमी आये और सबों का काम किया। दिन भर फोन और लोग और पैरवी और भीड़।

अभी तक हाल-चाल ठीक नहीं है। लोगों के दिल में दहशत है तथा युवकों के मन में आक्रोश है।

प्रेस के कई लोग आज मुझसे मिलने आये। मैंने बहुत बच-बचकर बातें कीं। मेरा अपना ख्याल यह है कि कालेजों को 15 से खुलना चाहिए, परीक्षा की तिथि बढ़नी चाहिए और बन्दी छात्रों को रिहा होना चाहिए।

रात में 12-1 बजे कोडरमा आ गया।

ट्रेन में, 18 जुलाई, 1974

कल से दिल्ली में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक है, अतः आसाम मेल से दिल्ली वापस हो रहा हूं। मन में बड़ी खुजलाहट है—बैठक

में बोलूं या चुप रहूं। अगर बोला तो बहुत ही कटु और भयानक बोलूंगा और मैं कहूंगा कि प्रधानमंत्री एवं जयप्रकाशजी की बात होनी चाहिए—सर्वोदय के कार्यकर्त्ताओं को कांग्रेस से दूर नहीं जाना चाहिए।

दिल्ली, 9 अगस्त, 1974

प्रधानमंत्री से मिला और बिहार के बारे में बातें हुईं। कहने लगीं—मुख्यमंत्री खिलौना नहीं है जो बैठाया जाये और तुरत हटाया जाये।—बिहार के सम्बन्ध में थोड़ी चिन्ता जरूर थी, परन्तु कोई बहुत अधिक चिन्तित नहीं थीं।

मैंने तीन-चार बातें कहीं—

1) छात्रों से और प्राध्यापकों से सीधी बातचीत हो।
2) बिहार के कुलपतियों से बातें की जायें।
3) किसी निष्पक्ष व्यक्ति को भेज कर वहां की स्थिति का सन्तुलित विवरण मंगायें।

मैं उमा वासुदेव की किताब—'इन्दिरा गांधी' लेकर गया था, उस पर हस्ताक्षर भी लिया तथा उस सम्बन्ध में बातें भी कीं।

दिल्ली, 7 सितम्बर, 1974

ललित के पीछे क्यों आप लोग इस प्रकार पड़े हैं? —मेरे कुर्सी पर बैठने के पहले ही उन्होंने (इन्दिराजी ने) कहना शुरू किया।

मैंने बड़े ही शान्त रूप से कहा कि संसद में तो मैं कुछ कहता नहीं हूं—बचाता ही हूं—परन्तु बिहार के मामले में यदा-कदा कहना आवश्यक होता है।

मैंने आज बड़े खुले दिल से उनसे बातें कीं—अम्बाला में दिये उनके भाषण की प्रतिक्रिया[1], डिस्कशन का 'एलाउ' होना तथा एक व्यक्ति के कारण पूरी पार्टी का बदनाम होना। बहुत साफ, संयत और पुरजोर शब्दों में मैंने सारी बातें रख दीं।

उन्होंने भी बहुत सारी बातें कहीं इन तीनों मुद्दों पर।

प्रधानमंत्री से इतनी साफगोई से बात होनी ही चाहिए। मुझे संतोष हुआ।

---

[1]अम्बाला में इन्दिराजी ने कुछ दिनों पहले एक भाषण दिया था कि मेरे पुत्र संजय, ललितनारायण मिश्र और बंसीलाल पर विरोधी दल के लोग लगे हुए हैं।

दिल्ली, 9 सितम्बर, 1974

रात साढ़े ग्यारह बजे तक लोकसभा की ऐतिहासिक बैठक हुई—लाइसेंस काण्ड के सम्बन्ध में। विरोधी दलों की ओर से 6 बोले—अटल विहारीजी ज्योतिर्मय वसु, इरा सेजियन, मधु दण्डवते, श्यामनन्दन मिश्र और जनेश्वर मिश्र। कांग्रेस की ओर से 6 सदस्यों ने भाग लिया—चन्द्रजीत यादव, मुंशी, गोस्वामी, बलिराम भगत, एच० के० एल० भगत और मैं।

लोगों के अनुसार और मेरे अपने अनुसार भी मेरा भाषण अच्छा था।

लोकसभा का सत्र आज समाप्त हुआ। इधर 8-10 दिनों से भयानक सनसनाहट रही। विरोधी-दलों की संख्या भले ही कम हो लेकिन वे काफी कारगर और सक्षम रहे।

गया, 2 अक्तूबर, 1974

आज का दिन वास्तव में अनुभूतियों और उपलब्धियों का दिन रहा। सैनिक स्कूल तिलैया से कार्यक्रम की शुरूआत हुई और उसका अन्त चतरा में हुआ। बीच में चौपारण, इटखोरी, वारीसाखी, टटरा में भी बहुत बड़ी-बड़ी मीटिंगें हुईं। कुल मिलाकर 50 हजार लोगों से संपर्क हुआ होगा।

और इन सभी आयोजनों के लिए दीदी का ही आभार है, परन्तु उन्हें व्यक्त करने के लिए किसी शब्द की आवश्यकता नहीं है। गांधी-जयंती के दिन मुख्य-अतिथि के रूप में गांधीजी की पोती को अपने बीच पाकर जनता का हर्षोल्लास देखने योग्य था। जितनी बड़ी संख्या में मर्द थे, उतनी ही बड़ी संख्या में महिलाएं।

3 से जयप्रकाशजी का आन्दोलन शुरू है, किसी की हिम्मत 2 को सभा करने की न थी, भगवान की दया से मैं सफल हुआ, यह कोई कम बात नहीं है।

ट्रेन में, 3 अक्तूबर, 1974

जिस गाड़ी से निकला शायद बिहार होकर गुजरने वाली वह आखिरी गाड़ी थी, क्योंकि उसके बाद भारी हंगामा शुरू हो गया। कार्यक्रम था आसाम-अरुणाचल-मेघालय का, परन्तु आना पड़ा दिल्ली, उत्तरदायित्वों के साये में। बम्बई मेल, कालका मेल और अवाक्-सी यात्रा।

पिछले दिनों अनवरत खटता रहा हूं, दिन को दिन नहीं और रात को रात नहीं समझा। लेकिन संतोष है तो यही कि मेरे कार्यक्रम बहुत सफल रहे।

इन सफलताओं का श्रेय क्या गांधी-जयंती को है, क्या जनता को है, क्या कार्यकर्त्ताओं को है, क्या मुझे है ? —नहीं, केवल आपको।

पटना, 27 अक्तूबर, 1974

केन्द्रीय योजना मंत्री श्री डी० पी० धर अकस्मात पटना आ गये। इनके आने के तीन निष्कर्ष रामलखन बाबू ने, मैंने एवं बालाजी (श्री आर० पी० सिन्हा, भू० पू० संसद सदस्य) ने लगाये।

1) स्थिति की पूरी रिपोर्ट, जिसमें एजीटेशन (आन्दोलन) की समाप्ति, स्थिति, वास्तविकता—प्रधानमंत्री को देना।
2) ललित बाबू की मोनोपोली समाप्त की जाये और उसका क्या असर पड़ेगा—यह देखना। एवं
3) जे० पी० और प्रधानमंत्री के बीच कहीं समझौता न हो जाये—इसे भी (लेफ्ट विंग) वामपंथी तरीके से वाच करना।

आज मुख्यमंत्री (श्री अब्दुल गफूर) के यहां काफी देर तक बैठक रही तथा कल-परसों क्या किया जाये यह विचार किया गया। मुख्यमंत्री स्वच्छंद हैं, कोई फिक्र नहीं—स्पष्ट है कि ये हट नहीं रहे हैं।

श्री धर साहब से एक घण्टे तक अकेले बातचीत हुई।

पटना, 29 अक्तूबर, 1974

बरुआ साहब कल आये और सरगर्मियों का दौर चलता रहा। रात-दिन। स्पष्ट हो गया कि गफूर को रहना है।

कांग्रेस भी एक विचित्र संस्था है। कारों, लोगों, नये-पुराने कार्यकर्त्ताओं का धक्का-मुक्का ऐसे ही अवसरों पर देखते बनता है।

ललित बाबू का लीडरशिप बदलने का पैंतरा नाकामयाब गया, यही सबसे बड़ी खुशी है।

दिन-भर लोगों की भीड़। कौन-सी जिन्दगी ओढ़ ली है मैंने। पटना में इस बार तीन-चार दिनों तक लगातार रह गया।

ट्रेन में, 4 नवम्बर, 1974

पटना में भयानक लड़ाई छिड़ी है—जनता और सत्ता की, शासन और व्यवस्था की, बड़ी कुर्सी और फुटपाथ की। शायद आज़ादी के बाद पहली बार ऐसा हो रहा है; देखें आगे क्या-क्या होता है।

मैं इस पक्ष का था कि जे० पी० और प्रधानमंत्री में बातें हों और कोई रास्ता निकले। बातें जरूर हुईं, परन्तु कोई रास्ता नहीं निकला। प्रधानमंत्री की बात थी कि आन्दोलन वापस लें और जे० पी० की मांग थी विधानसभा भंग हो—दीवार बन गई।

मैं दिल्ली से आई० आई० टी० कानपुर आया और कानपुर से दिल्ली वापस जा रहा हूं—सुना कि पटना मे बहुत कुछ हुआ।

दिल्ली, 7 नवम्बर, 1974

आज शाम प्रबोधचन्दजी[1] मिलने आये—कहा कि जयप्रकाशजी को पटना में जो मार पड़ी है तथा देश मे और दल में भ्रष्टाचार का जो रूप है, उसे देखते हुए उन्होंने पार्लियामेण्ट की सीट से अपना त्यागपत्र भेज दिया है। प्रधानमंत्री को लिखा गया पत्र भी उन्होंने दिखलाया तथा उसी के साथ लोकसभा अध्यक्ष के नाम उन्होंने अपना पत्र दे दिया है।

कोई व्यक्ति संसद की सदस्यता से त्यागपत्र दे, उससे बड़ी बात कुछ भी नहीं हो सकती है। प्रबोधचन्दजी की बातें सुनकर मैं अवाक् रह गया। उनका दर्द और उनकी पीड़ा स्पष्ट थी।

रात खाने पर डा० रामसुभगसिंह, कृष्णकांत और डी० पी० यादव आये। बहुत देर तक देश, काल, परिस्थिति पर बातें होती रहीं। डा० साहब कांग्रेस मे आ रहे है, यह खुशी की बात है। और कुछ खास होकर भी खास नहीं।

रांची, 9 नवम्बर, 1974

कांग्रेस भी एक ऐसी जमात है जहां समुद्र के समान हिलकोरे उठते रहते है। 16 को कांग्रेस की ओर से विशाल जनप्रदर्शन की तैयारी चल रही है। यह संस्था सुषुप्तावस्था मे रहती है और जब जागती है तो भरपूर जाग जाती है। यह भी सही है कि कार्यकर्त्ताओं या नेताओं की भी इसके पास कमी नहीं है। परन्तु आसमानी फायर वाले नेताओं की भी भरमार है।

आज दिल्ली से सवेरे की जहाज से आया—दो जनसभाओं मे रामलखन बाबू के साथ गया और संध्या समय बिहार-कांग्रेस प्रबन्ध-समिति की बैठक में भाग लिया। रात रेल द्वारा रांची के लिए भाई नरेन्द्र और हीरू बाबू के साथ विदा हो गया।

---

[1]पंजाब के सुप्रसिद्ध नेता, स्वतन्त्रता सेनानी और तत्कालीन संसद सदस्य।

रांची, 10 नवम्बर, 1974

कांग्रेस की ओर से रांची में जन-प्रदर्शन तथा रैली। संसद सदस्यों, विधायकों तथा अन्य कांग्रेसजनों को रहना था, इसलिए आया, वरना कल से लोकसभा शुरू है और ऐसे में आने का औचित्य क्या था।

कांग्रेस अध्यक्ष बरुआ आये तथा अन्य नेतागण। मेरा पहले से ही यह ख्याल था कि छोटा-नागपुर या रांची में कहीं कुछ भी आन्दोलन का गम्भीर रूप नहीं है, अतः यहां काउन्टर करने का अर्थ है कि आंख में उंगली डालकर आन्दोलन को भड़काना, कुछ ऐसा ही हुआ—पूरा बाजार विरोध में आज बंद रहा, कांग्रेस-अध्यक्ष को जहां-तहां काले झण्डे दिखाये गये तथा पत्थर-रोड़े भी फेंके गये। बाहर से अगर दूबेजी आदि ट्रकों पर लोगों को, मजदूरों को लेकर नहीं आते तो इज्जत नहीं बचती।

रात 'युवराज' में सोया, परन्तु पता नहीं क्यों डिस्टर्ब-सा।

दिल्ली, 11 नवम्बर, 1974

रांची-पटना-दिल्ली। एक दिन की यात्रा। कितनी लम्बी—कितनी व्यापक—'कितना क्या अनकहा'—यह मेरा शायद शकुनतकिया हो गया है।

पता नहीं क्यों दिल्ली में मन नहीं लगता, पटना में या कहीं भी जम नहीं पाता। उचाट-सा, उदास-सा, बियाबान-सा, बेफिक्री से अलग। यह पलायन तो नहीं है।

हर जगह बिहार-जयप्रकाश। कहीं जय-जयकार, कहीं गाली। सी० पी० आई० का बहुत बड़ा जुलूस निकला पटना में, कई प्रकार के नारे लगे।

लोकसभा में बिहार के ऊपर 'कामरोको' प्रस्ताव श्याम बाबू ने लाया, वही चला 11 बजे रात तक।

पटना, 16 नवम्बर, 1974

कांग्रेस की ओर से पटना में विशाल जन-प्रदर्शन। 1967 के बाद कांग्रेस की ओर से यह दूसरा प्रदर्शन था—आजादी के बाद। कांग्रेस-अध्यक्ष श्री बरुआ, जगजीवनराम, ललित बाबू आदि सभी नेतागण अगली पंक्ति में शामिल हुए। चन्द्रजीत जी भी आये।

कांग्रेस को लोग 'कैडर बेस्ड' पार्टी बनाना चाहते हैं, यह असम्भव है। समुद्र की लहरों का कोई बन्धन नहीं होता, वैसे ही यह पार्टी है।—समूह—

यहां कदम से कदम मिलाकर चलना असम्भव है। कांग्रेस के आधार किसान हैं, गरीब हैं, गांधीजी के नाम को राम और कृष्ण के समान भजने वाले निरीह भारतवासी हैं।

परन्तु क्या इन 'काउन्टर-रैलियों' से समस्या का समाधान हो जायेगा?

दिल्ली, 19 नवम्बर, 1974

प्रधानमंत्री इन्दिराजी की जयन्ती थी और इसीलिए पार्लियामेंट में उनसे मिला। वे बहुत उदास लगीं तथा उखड़ी-उखड़ी।

मैं प्रधानमंत्री को बहुत श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूं तथा बार-बार मेरे मन में यह बात उठती थी कि मैं पूछूं कि आप इतनी उदास क्यों हैं? परन्तु संकोचवश पूछ नहीं सका।

संसद के वर्तमान सत्र, बिहार की समस्या आदि पर इधर-उधर की बातें हुईं।

बाहर निकला तो चन्द्रशेखरजी[1] मिले और उन्होंने कल के लिए चाय-पार्टी में आने का निमंत्रण दिया।

'अनागत' का प्रकाशन हुआ।

दिल्ली, 20 नवम्बर, 1974

चन्द्रशेखरजी के यहां शाम को चाय-पान में पहुंचा, जहां जयप्रकाशजी थे तथा कांग्रेस के लगभग 50-60 एम० पी० हाजिर थे। हनुमनथैया, विभूति मिश्र, द्वारिकानाथ तिवारी, माया रे, सन्तबख्श, कृष्णकांतजी, सुमित्रा कुलकर्णी, शुकदेवप्रसाद वर्मा आदि कई।

देखा कि प्रेस के लोग भी बड़ी संख्या में हैं। जे० पी० भाषण के समान दे रहे हैं तथा सभी कांग्रेसी एम० पी० बैठे हैं। मुझे अजीब लगा—कांग्रेसी एम० पी०, प्रेस के लोग, कांग्रेस विरोधी भाषण, इसकी प्रतिक्रिया क्या होगी, सब देखकर विचित्र लगा।

भाषण समाप्त हो जाने के बाद मैंने सहज बातचीत में जे० पी० से कहा कि कांग्रेस के 90 प्रतिशत लोग आप में और प्रधानमंत्री में टकराव नहीं चाहते, आप ऐसा कांग्रेस-विरोधी अभियान क्यों चला रहे हैं?

---

[1] जनता-पार्टी के वर्तमान अध्यक्ष। स्मरणीय है कि 20 नवम्बर, 1974 को उन्होंने जे० पी० को चाय पर बुलाया, जिसमें 50-60 कांग्रेस एम० पी० भी आये और एक तूफान खड़ा हुआ।

दिल्ली, 21 नवम्बर, 1974

कल के चाय ने आज तूफान पैदा कर दिया। हर जगह उसी की चर्चा और हर स्थान पर उसका व्यंग्य। सवेरे चाय पीने बरुआजी के पास पहुंचा, वहां सुभद्रा जोशीजी तथा आर० के० मिश्रा मिले, वही बातें—संसद में इसी की प्रतिध्वनि।

दीक्षितजी से भी मिला। मनुभाई शाह तथा यशपाल कपूर भी थे। जगदीश जोशी ने कहा कि हम लोगों को मालूम न था कि वहां जयप्रकाशजी आने वाले हैं, नहीं तो नहीं जाता।

मैंने कहा कि मुझे मालूम था और चन्द्रशेखरजी ने स्वयं कहा था। मैंने आज एक वक्तव्य भी अखबारों को दिया।

कभी-कभी छोटी बातें भी बड़ा रूप ले लेती हैं।

दिल्ली, 4 दिसम्बर, 1974

गृहमंत्री श्री ब्रह्मानन्द रेड्डी के यहां रात्रि-भोज पर गया और वहां से प्रधानमंत्री के निवास पर जहां 12.30 बजे रात तक विचार-विमर्श होता रहा—मोरारजी भाई के सत्याग्रह की धमकी पर, लाइसेंस काण्ड पर, सी० बी० आई० रिपोर्ट पर। दल के 25-30 मान्य सदस्य हाजिर थे।

तीन विचारधारायें थीं—सी० बी० आई० की रिपोर्ट कभी नहीं दिखाई जाये, विरोधी नेताओं को दिखा दी जाये, अगर कोई हर्ज न हो तो टेबुल पर रखा जाये।

प्रधानमंत्री तथा बरुआजी ने सुना और अपना निर्णय रिजर्व रखा। लगता है कि सरकार हिल रही है। मेरी समझ में शुरू से ही ठीक से इसे 'हैण्डल' नहीं किया।[1]

दिल्ली, 9 मार्च, 1975

डा० कर्ण सिंह के यहां रात्रि-भोज में शेख अब्दुल्ला से पहली मुलाकात हुई और दो-तीन घण्टों के साथ और बातचीत से बेहद प्रभावित हुआ। लगा जैसे जवाहरलालजी और सरदार पटेल के टक्कर के किसी नेता से मिल रहे हैं। आज के अन्य मुख्यमंत्रियों से शेख अब्दुल्ला की तुलना करता हूं तो लगता है मानो एक-दो को छोड़कर और सभी चपरासी हों।

---

[1]तुलमोहन राम कांड।

व्यक्तित्व तो वह जो बातचीत के हर कोण से झलके। शेख अब्दुल्ला को देखकर ऐसा ही मान हुआ।

डा० साहब की मेरे ऊपर विशेष कृपा रहती है, इसीलिए सभी कश्मीर के एम० पी० तथा मंत्रियों के अतिरिक्त दो-चार अन्य संसद सदस्यों को बुलाया था, जिसमें एक मैं और मेरी पत्नी भी थे।

रात 11 बजे तक बड़ा ही उछाह और उत्साह का वातावरण रहा।

जिन हाथों से डा० कर्ण सिंह ने शेख अब्दुल्ला को गिरफ्तारी का आदेश दिया था, उन्हीं हाथों से परोस कर खिला रहे थे।

दिल्ली, 12 मार्च, 1975

कभी-कभी मन बेतरह उदास हो जाता है, अकारण या किसी विशेष कारण से।······को इस बात से गुस्सा और दुःख है कि इस बार जब से लोकसभा का सत्र शुरू हुआ, मैं कार्यकारिणी में बहस से, आलोचना से, किसी गम्भीर चर्चा से, कांग्रेस के अन्दर कम्युनिस्टों से लड़ने से—कतराता रहा हूं। इसका इजहार गुस्से और रोष के साथ दो-तीन बार वे कर चुकी हैं, और उसने मुझे क्षत किया है।

मैं इधर बेतरह अनुपस्थित रहा और इस कारण कि कुछ संयोग ही ऐसा जुटा।

और जब कई बातें मेरे अन्दर जमा हो गईं तो मैं उदास हो गया, और मैं जब उदास हो गया तो······दोनों मुझे खुश करने का और हंसाने का भरपूर प्रयास करते रहे।

दिल्ली, 24 मार्च, 1975

प्रधानमंत्री से मिला और बहुत स्पष्ट और खुली बातचीत हुई। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के सम्बन्ध में, बिहार के सम्बन्ध में, मोहन धारिया के सम्बन्ध में, रामलखन बाबू के सम्बन्ध में, समाचार-भारती के सम्बन्ध में तथा बिहार प्रदेश कांग्रेस कमेटी के सम्बन्ध में भी। मैं भी अपनापन, विश्वास और साफगोई से बोला तथा उन्होंने भी स्पष्टता से बातें कीं।

मेरी श्रद्धा प्रधानमंत्री के प्रति बराबर बढ़ती जाती है तथा यह लगता है कि उन्होंने जो वातावरण तैयार किया उसमें हम सभी आये और आज जब उनके ऊपर राजनीतिक संकट है तब हम उन्हें कैसे छोड़ दें। यह बात मैंने कही तो वे बोलीं कि मेरा नहीं, देश का सवाल है।

आज दिन भर व्यस्तता से चूर रहा।

कोडरमा, 3 अप्रैल, 1975

आज कई जगहों का दौरा किया—डोमचांच, मसनोडीह, शिवसागर, ढोढ़ाकाला तथा तिलैया। तिलैया बाजार में अबरख-डीलरों की एक सभा में शाम को भाषण देने जा रहा था, उस समय 'भगवती-प्रेस' के सामने मेरी गाड़ी पर कसकर रोड़ेबाजी हुई तथा शीशा भी फूट गया तथा हीरू बाबू को हल्की चोट आई। मुझे कहीं भी किसी प्रकार की कोई चोट नहीं आई।

कलकत्ता में कल जयप्रकाश बाबू की कार पर जो हमला हुआ था, कुछ तो उसकी प्रतिक्रिया थी, कुछ यूनियन के आपसी झगड़े और कुछ जमाने का रंग।

पटना, 5 अप्रैल, 1975

और पर्दे के पीछे जगन्नाथजी को मुख्यमंत्री बनाने की जो योजना थी, उसका एकमत से पालन हुआ। प्रधानमंत्री का इशारा नहीं होता और खुलकर यह नहीं कहा जाता कि 'पी० एम०' जगन्नाथजी को चाहती है तब ऐसी हालत में केदार पाण्डेय निश्चित जीतते।

आज यहां आने पर नरसिंह राव, गफूर साहब, रामलखनजी, केदारीजी आदि से मिला और सदाकत आश्रम में जगन्नाथजी भी मिल गये। कहने लगे कि जो कुछ भी हुआ उसे भूल जाइये तथा हर-तरह से मुझे साथ दीजिये।

दिल्ली, 8 मई, 1975

गुजरात के लिए टिकटों का बंटवारा हुआ। 1 नम्बर अकबर रोड में प्रधानमंत्री के निवास स्थान पर रात 1 बजे तक बैठक चलती रही। इन्दिराजी न तो स्वयं थकती हैं और न ही दूसरों को थकने देती है। बैठक में सबसे अधिक सतुलन वे ही रखती हैं। हम लोगों का जो तर्क होता है, उसे वे मानती हैं, उनका अपना कोई आग्रह-दुराग्रह नहीं होता।

आज की बैठक की मेरे लिए सब से सुखद अनुभूति यह थी कि प्रधानमंत्री ने कई बार दीदी का नाम लिया और उनके रिक्मेण्डेशन को अतिशय महत्व दिया।

दिल्ली, 9 मई, 1975

लगातार तीसरी बार संसदीय कांग्रेस कार्यकारिणी का सदस्य चुना गया। पिछली बार के समान ही इस बार भी मैं दूसरे स्थान पर आया और डागाजी प्रथम। 270 में 212 वोट मुझे मिले, जो सदस्यों के प्रेम और अपनापन का परिचायक है।- मैं इस बार इसके लिए समय भी नही दे सका था।

आज सी० ई० सी० में गुजरात के लिए सीटों का फैसला हो गया। मैंने भी अपना अच्छा योगदान दिया।

केन्द्रीय चुनाव समिति तथा संसदीय कार्यकारिणी दो ऐसे मंच हैं, जिन पर बराबर प्रधानमंत्री से मुलाकात होती रहती है।

राजकोट, 31 मई, 1975

सवेरे की 'प्लाइट' से अहमदाबाद पहुँचा—जयप्रकाशजी तथा प्रकाशवीरजी भी इसी से आये। हवाई अड्डे पर जे० पी० के लिए मुश्किल से 10-12 लोग थे। मुझे अपने लिए आई गाड़ी नही मिली तो प्रकाशवीरजी अपने साथ ले गये और जलपान कराकर सर्किट हाउस पहुंचा गये।

पूरवी दी ने बड़े प्यार की झिड़की दी, फिर मेरी सारी व्यवस्था की, पैसे दिये, गाड़ी दी और मैं जामनगर और जूनागढ़ के लिए विदा हुआ। रात राजकोट में रुक गया।

दिल्ली, 12 जून, 1975

शायद ही कभी ऐसा होता होगा कि एक दिन मे कई सदमो से भरा समाचार—श्री डी० पी० धर की मौत, प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी का चुनाव अवैध हो जाना, तथा गुजरात में कांग्रेस की हार। एक-दूसरे से सभी संबंधित समाचार है।

दिल्ली मे आग लगी हुई है। शाम को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के कार्यालय मे बैठक हुई जिसमे जगजीवन बाबू, चव्हाण साहब और बरुआजी ने भाषण दिया कि प्रधानमंत्री को इस्तीफा नही देना चाहिए तथा हम लोग उसके बाद इन्दिराजी के पास गये तथा ये बातें कही।

18 जून, 1975

पता नही क्यों 'आस्था' शब्द मेरे लिए बड़ा महत्व का है। प्रारम्भ से इस शब्द के लिए मोह सजोया है और मैने जीवन मे आस्याहीन होना सीखा ही

नही है। इसलिए मेरे हृदय पर इस शब्द को लेकर गहरी चोट होती है।

आज कांग्रेस ससदीय दल की अभूतपूर्व बैठक हुई, जिसमे इन्दिरा गाधी के प्रति 'विश्वास' प्रकट किया गया। पाच सात सदस्य इसमें नही आये। कल तक कई प्रकार की अटकलें थी। जगजीवन बाबू ने प्रस्ताव रखा और चव्हाण साहब ने समर्थन किया। उसके बाद शेष ही क्या बचा ?

दिल्ली, 26 जून, 1975

मैं तो हतप्रभ रह गया। अवाक्। ऐसी कल्पना किसी ने नही की थी—जयप्रकाशजी, मोरारजी भाई, चन्द्रशेखरजी, रामधन, पीलू मोदी, अशोक मेहता, आडवाणी, समर गुह आदि बहुत सारे लोग जेलो मे चले गये। एशिया के अन्दर या दुनिया में सब से बड़ा जनतंत्र भारत था। न्यूज एजेन्सिया बन्द हो गईं, अखबारों पर सेंसरशिप लागू कर दिया गया। देश भर में हजारों गिरफ्तारियां हुईं।

बारह बजे स्टीफन्स ने कांग्रेस संसदीय कार्यकारिणी के सदस्यों को खाने पर बुलाया, वहा से गुजराल साहब के यहा, वहां से सेन्ट्रल हाल, शाम को चन्द्रजीतजी के यहां, वहा से प्रधानमंत्री से मिलने गया, फिर डा० कर्ण सिंह और बाद मे बी० सी० भगवती।

डा० कर्ण सिंह ने ठीक ही कहा—पिछली सारी बातें भूल जाओ, जो हो रहा है वह देखो। बिल्कुल नया 'सिस्टम' जन्म ले रहा है।

प्लेन परः दिल्ली, 28 जून, 1975

इसी 23 जून को मैं 'डीलक्स' से पटना से दिल्ली आ रहा था। जे० पी० भी उसी ट्रेन से आ रहे थे। दरअसल उस दिन उन्हें और मुझे भी इंडियन एयरलाइंस के सर्विस प्लेन से दिल्ली जाना था, लेकिन सर्विस प्लेन को कलकत्ता से बिना पटना हुए ही दिल्ली भेज दिया गया, ताकि जे० पी० दिल्ली के रामलीला मैदान में उस दिन जनसभा को संबोधित न कर सकें। यह बात एयरपोर्ट पर कई लोगों ने मुझे बतायी।

इस कारण जे० पी० ट्रेन से यात्रा कर रहे थे। वे 'टू टायर' एयरकडीशड' शयनागार मे थे। यह डिब्बा खुला रहता है। वहा जिस श्रद्धा से औरतें, नवयुवक, ग्राम-जनता, उनकी बर्थ के पास आकर प्रणाम कर रहे थे, वह देखने योग्य था। घंटे दो घटे मे गाड़ी के लगभग सौ-दो सौ से अधिक यात्री उन्हे प्रणाम करने आये। कारण स्पष्ट था। जिस रफ्तार से लोग वहां आ-जा रहे

थे, उसमें न जे० पी० सो सकते थे, न हम लोग आराम से बैठ सकते थे। इसलिए मैंने जे० पी० से प्रार्थना की कि वे ए० सी० सी० फर्स्ट क्लास में चले जाये। राजनीति अपनी जगह पर है, शिष्टाचार अपनी जगह पर, राजनीति मलवा है शिष्टाचार खिला हुआ सुवासित फूल। राजनीति छल-प्रपंच और स्वार्थ से भरा एक घड़ा है, शिष्टाचार संस्कार की आग में तपा-तपाया सोना अथवा किसी निर्झर का मुक्त हास्य। मैंने राजनीति के गंदे नाले से अपने को निकाला।

वे बोले, "ए० सी० सी० में बहुत पैसा लगता है, इसी में ठीक है।"

मैंने कहा, "पैसों की आप चिन्ता न करें। ए० सी० सी० में आप आराम भी करेंगे तथा कुछ लिखना-पढना भी होगा।"

"पता नही, वहा जगह मिले या नही। और फिर मैं पैसा भी साथ लेकर नही चला हूं।" संकोच के साथ जे० पी० बोले।

"मैं सारी व्यवस्था करता हूं, आप वहीं चले जायें।" कहता हुआ मैं उठा और फर्स्ट ए० सी० सी० मे गया तथा वहां उनके लिए जगह बनवायी। बिहार विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर डॉ० के० के० मडल जा रहे थे। उन्हें जे० पी० की जगह अपने डिब्बे में ले आया। एक बंगाली सज्जन को लोअर बर्थ से अपर बर्थ पर भेजा तथा जे० पी० का प्रथम श्रेणी का टिकट लेकर (अतिरिक्त दो सौ बीस रुपये देकर, जिनमे से एक सौ रुपये नंदकिशोर बाबू ने दिये), उन्हें ए० सी० सी० में पहुंचा दिया।

जे० पी० ने संकोच और आभार के साथ इस कृत्य को स्वीकार किया। सवेरा होने पर जहा कहीं भी गाड़ी रुकती और लोगों को पता चलता, जे० पी० की खिड़की के पास लोगों की भीड़ जमा हो जाती थी। दिल्ली जंक्शन पर तो हजार-दो हजार लोगों ने जयजयकार और जिंदाबाद के नारो से आसमान को हिला दिया।

आज के युग में सत्ता से अलग किसी नेता का ऐसा निर्मल अभिषेक हो, तो उसे 'लोकनायक' नही, तो और क्या कहा जायेगा?

डीलक्स में और रातों के समान ही रात बीती और सुबह जब मैं चाय पर एक मित्र से बात कर रहा था, तभी किसी ने बड़े जोर से पुकारा— शंकर! नाम के पहले न बाबू, न बाद में जी, न कोई और शब्द, यह देखने के लिए कि यह कौन इतने अधिकार के साथ मुझे पुकार रहा है, मैं बगल में गया तो देखा चन्द्रशेखरजी हैं। वे रात मुगलसराय में चढ़े थे। मैं उस समय सो

गया था, बहुत सारी बातें हुईं उनसे। मेरे और उनके विचारों में काफी भिन्नता थी। मेरा कहना था कि इन्दिराजी का इलाहाबाद हाई कोर्ट का फैसला राजनीतिक ही नहीं, व्यक्तिगत भी है, अतः इसमें चन्द्रशेखरजी, कृष्णकांतजी आदि को मदद करनी चाहिए, मिलना चाहिए।

चंद्रशेखरजी का साफ कहना था—इन्दिरा गांधी डिक्टेटरशिप की ओर जा रही है। सत्ता छोड़कर और कोई भी उनका उद्देश्य नहीं है। अपनी कुर्सी बचाने के लिए वे किसी भी हद तक जा सकती हैं।

मैं बराबर उनकी बातों का विरोध करता रहा और बातचीत में कभी सौहार्द न छोड़कर हंसता-बोलता रहा। विरोध जरूर करता रहा, लेकिन मेरे मन मे बहुत सारी बातें उठती रहीं।

अंत में चंद्रशेखरजी ने मुझ से कहा, "शंकरदयाल, मेरी जगह अब बाहर नहीं है जेल में है। और तुम देखोगे कि किसी भी दिन 'मैडम' मुझे जेल में बंद करवा देंगी..."

मैं हंसा था, किसी भी प्रकार मैं इसे मानने को तैयार नहीं था। लेकिन 24 जून के दो दिन बाद ही वह दिन—26 जून—आ गया। रह-रह कर मुझे चंद्रशेखरजी की वही बातें याद हो आती है। खिचड़ी दाढ़ी के बीच कभी मुस्कराता, कभी खिन्न होता और कभी भनभनाता चेहरा, चंद्रशेखरजी के चेहरे पर सबके बावजूद क्रांति की एक आबनूसी आग है, जो या तो किसी को अपनी ओर खीच लेती है या फिर भय से दूर भगा देती है।

पिछले सात-आठ वर्षों से उनसे मेरा संबंध रहा है और आज तक मैं उसका निर्वाह करता हूं। सेंट्रल हाल के किसी कोने में जब कभी वह चेहरा होता है, तो अपनी उपस्थिति से जितने लोगों को आह्लादित करता है, उससे अधिक लोगों को आतंकित।

"शंकरदयालजी, अब कुछ करे के समय आगईल हैं।" जे० पी० ने मुझ से कहा।

मैं उत्तर में कहना चाहता हूं, "जे० पी०, आपके प्रति आदर और श्रद्धा है, लेकिन मेरे साथ मजबूरी है। न मैं कांग्रेस छोड़ सकता हूं, न इन्दिराजी को छोड़ सकता हूं।"

लेकिन मैं उनसे कोई भी राजनीतिक चर्चा नहीं छेड़ना चाहता। कटुता से जितना हो, बचना चाहिए। मैं उनके स्वास्थ्य के संबंध में चर्चा छेड़ देता हूं।

26 जून 1975—देश के इतिहास में काल-पात्र में गाड़ने वाला अभि-
लेख रहेगा। 8 बजे प्रधानमंत्री का राष्ट्र के नाम प्रसारण हुआ—हिन्दी में।
कापती, लड़खड़ाती और ठहरती आवाज। देश में आतरिक आपात्काल की
घोषणा कर दी गयी। अखबारो पर सेंसर लागू हो गया। कई पत्र आज
निकले भी नहीं। भाषण, मीटिंग, लेख, समाचार, जलसा, जुलूस, आलोचना—
सब पर प्रतिबंध। कुछ समय पूर्व बंगलादेश में मुजीब ने यही किया था।
अपने यहा रेडियो सवेरे से शाम तक एक ही बात कहता रहा। और लोग यहा
की खबर जानने के लिए बी० बी० सी० तथा रेडियो पाकिस्तान सुनते रहे।
विचित्र स्थिति है। कई प्रकार के भ्रामक समाचार इस बीच फैले—
'जगजीवन बाबू हाउस अरेस्ट हैं', 'जगजीवन बाबू ने त्यागपत्र दे दिया', 'देश के
कई हिस्सों मे भयानक स्थिति आ गयी है'—राम जाने क्या सच है, क्या झूठ!
सोवियत संघ, चीन आदि देशों में प्रारम्भ से ही एक पद्धति स्वीकृत की
गयी। जनता को सोचने-समझने-सीखने-कहने का कोई मौका ही नही मिला।
लेकिन अपने देश में विगत 27 वर्षों से आजादी ने इस प्रकार जड़ जमा ली
कि सुबह अखबार न मिलने पर लगता है, सवेरा हुआ ही नही। एक विचित्र
फीकापन, उदासी, सत्रास, आशका से मन बोझिल हो जाता है।
पाकिस्तान, बर्मा, चीन, इंडोनेशिया तथा अफ्रीकी देशो के बारे मे जो
पढता-सुनता था, वह अपने देश मे देखने को मिलेगा, यह मैंने कभी कल्पना
नही की थी। कभी-कभी जब यह विचार दिल में आता था, तो सोचता था
कि अगर ऐसी स्थिति आई तो क्राति हो जायेगी, देश उबल पड़ेगा, लोग सहन
नही करेंगे, कुछ-का-कुछ हो जायेगा। लेकिन किसी मे कोई तेज नहीं, कहीं
कोई सुगबुगाहट नही, उफान नही! या संभव है कि राख के नीचे अन्दर-ही-
अन्दर आग सुलग रही हो और वह ज्वालामुखी बनकर फूट पड़े या संभव है
कि इस आपात्काल की घोषणा की आवश्यकता थी। इसमे देश कस जाये
और जैसे आग में जलकर सोना खरा होता है, वैसे ही खरा हो जाये।
जो हो, इन्दिराजी ने जो साहस दिखाया है—एक साथ इतना बड़ा
कदम उठाकर, यह भी दृढ़ता का परिचायक है। और सघर्षों मे ही उनका
व्यक्तित्व निखरता है। भगवान जाने इस सघर्ष मे देश का क्या होगा?

पटना, 28 जून, 1975

सवेरे की प्लेन से पटना आया—लगता है जैसे आम जनता से आखें
मिलाने में लज्जा होती है या झिझक होती है या संकोच होता है। या अपने

मित्रों के बीच भी बैठने में या बातें करने में संभ्रम होता है। वातावरण ही कुछ ऐसा हो गया है।

यहां यह भी 'रियूमर' हो गया था कि मैं भी 'हाउस अरेस्ट' हू। ऐसे मिथ्या समाचारों के न तो सर होते हैं, न पाव।

दिन भर लोगों से मुलाकात-बात होती रही। बात ही बात। कितनी बातें की जायें और कितनी बातें सुनी जायें।

रात बेखबर, बेहोश सो गया।

दिल्ली, 29 जून, 1975

पटना से दिल्ली वापस आ गया—प्लेन से। पता नही क्यों मन वेमन-सा बना रहता है। जैसे देखकर भी कुछ नही देख पा रहा हूं और सुनकर भी कुछ सुनाई नही दे रहा हो। सारी स्थिति-परिस्थिति असामान्य हो गई है।

आपात्काल की घोषणा के बाद अपना से अपना भी कुछ बोलना नही चाहता। अगर कहता भी है तो यही कि बहुत अच्छा हुआ, देश को इसकी जरूरत थी।—पता नही यह कण्ठ की आवाज है या दिल की। दिल्ली वैसी ही है।

दिल्ली, 1 जुलाई, 1975

बहुत होती हैं इच्छाएं लिखने की और बहुत होती हैं इच्छाए नही लिखने की। क्या लिखू और क्या न लिखूं। लिखने लगू तो कितना न लिखना पड़े। इस प्रकार के मन में अनगिनत सवाल है।

लोकसभा का सत्र चालू है। विरोधी पक्ष के सभी नेता जेलों में है, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को छोड़कर अन्य सभी विरोधी दलों ने सेशन का बायकाट किया है। जो हम चाहें कर सकते हैं, कर रहे हैं, लेकिन मजा नहीं आता।

न नोक-झोंक, न बहस-मुबाहसा और न गरमी और मेरे लिए तो यह और भी कहर है। उधर से मधु लिमये या ज्योतिर्मय बसु खड़े होते थे, इधर से मैं और जो नोक-झोंक होती थी तो मजा आ जाता था।

दिल्ली, 11 जुलाई, 1975

आपात्काल की घोषणा के बाद सामूहिक रूप में तो मिला था—लेकिन व्यक्तिगत रूप से इन्दिराजी से 12 के बाद पहली बार साउथ ब्लाक में

मिला और लगभग 20 मिनटों तक बातें होती रहीं। मुझ से पहले भूपेश गुप्ता मिलकर निकले थे और मुझ से बाद ग्ररुणा ग्रासफग्रली मिलने को बैठी थीं।

प्रधानमंत्री की बातों से ऐसा लगा मानो वे संसदीय कार्य-प्रणाली को बदलना चाहती हैं। पार्लियामेण्ट का सेशन कम होगा, कमेटी की बैठकें ज्यादा होंगी। यह भी ग्राभास मिला कि बरुग्राजी के संघठनात्मक कार्यों से पूर्णतया संतुष्ट नहीं हैं और वे जा भी सकते हैं। बातें खुलकर हुईं और सजीदगी के साथ।

दिल्ली, 11 ग्रगस्त, 1975

ग्रापात्काल की घोषणा से एक बात ग्रच्छी हुई कि हर जगह शान्ति, व्यवस्था ग्रौर सुधार है। भय से हो या डर से—लेकिन है। रेलों मे लोग टिकट लेकर चल रहे हैं, समय पर गाड़ियां चल रही हैं। भ्रष्टाचार कम है, चीजें मिल रही हैं, मूल्य कम हैं। पता नहीं यह कब तक है।

ग्राज हर जगह भय भी है तथा निर्भय भी। वास्तव में इस देश में कड़ाई की ग्रावश्यकता थी। ऐसी स्थिरता तो कभी देश में ग्राई ही नहीं थी।

पटना, 30 ग्रगस्त, 1975

सरदार स्वर्ण सिंह ग्रौर डा० कर्ण सिंह के साथ एयर फोर्स के प्लेन से बिहटा उतरा, वहां से दूसरे प्लेन से पटना ग्रौर पटना में पैदल, रिक्शा ग्रौर नाव द्वारा कदमकुग्रा, डाकबंगला रोड तथा बोरिंग रोड। जिन्होंने ग्रपनी ग्रांखो पटना का यह हाल नहीं देखा, उन्हे सहसा विश्वास भी नहीं होगा कि पटना के ग्राधे से ग्रधिक भाग में मोटरों-रिक्शों-स्कूटरो ... चल रहे

दिल्ली, 23 दिसम्बर, 1975

कभी-कभी बातें सुनकर भी प्रकट करने की तबीयत नहीं होती। बरुग्राजी से मिलने बहुत दिनों के बाद गया, वे भी रात 10 बजे ग्राये, तो केवल हम ही दोनों थे। ऐसा बहुत कम होता है कि बरुग्राजी का दरबार खाली हो, केवल हम ही दो हों। ग्राते ही बोले—'मैं तुम्हें कांग्रेस का जैनरल सेक्रेटरी बनाने जा रहा हूं।'

मैं नहीं जानता कि इसमें क्या तथ्य था, परन्तु पता नहीं क्यों इससे बहुत ग्रधिक उत्साह या प्रसन्नता मुझे नहीं हुई।

मैंने यह बात किसी से भी न कहने को सोचा, कारण, यदि यह न हो तो ग्रौर लज्जा की बात होती है।

दिल्ली, 25 दिसम्बर, 1975

जब-जब इन्दिराजी से मिलता हूं तो यह जरूर लगता है कि बातें कुछ साफगोई से होती है। ग्राज 10 बजे मिलने का समय मांगा ग्रौर साढ़े बारह का समय मिला। उनके साउथ ब्लाक कार्यालय में मिला ग्रौर चुनाव, जे० पी०, बिहार, लोकसभा सत्र, सभी विषयों पर बातें हुई। मैं प्रयास यह करता हूं कि उनसे ग्रधिक से ग्रधिक सुनूं। हर विषय पर उन्होंने जो बातें कहीं उससे रोशनी मिली।

पता नहीं, भविष्य कैसा हो, क्या हो, परन्तु वर्तमान की उपेक्षा कर कभी नहीं चलना चाहिए।

चंडीगढ़, 29 दिसम्बर, 1975

भोर तीन बजे कई कार्यकर्त्ताग्रों के साथ चण्डीगढ़ ग्रखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के लिए पहुंचा। कहां ग्रविभाजित कांग्रेस का वह लबोलबाब—मंच पर कहीं कामराज, कहीं मोरारजी, कहीं पाटिल, कहीं नीलम संजीवा रेड्डी ग्रौर भाषण में वही दो रंगों-रूपों का तेज-तेवर—कहीं पाटिल : तो कहीं मेनन तो कहीं चन्द्रशेखर, कहीं धारिया।

ग्रब सब कुछ सूना-सा, हम क्या कहें, क्या सुनें। कुर्सियों पर बैठने की व्यवस्था ने ग्रौर भी मिलन ग्रौर ग्रपनापन का भाव छीन लिया।

हम तो कांग्रेस के हैं, कांग्रेस हमारी है, हम तो यही मानकर चलते हैं। मैंने भी विदेशी प्रस्ताव पर हिस्सा लिया ग्रौर बंगलादेश पर भाषण दिया।

मिला और लगभग 20 मिनटों तक बातें होती रहीं। मुझ से पहले भूपेश गुप्ता मिलकर निकले थे और मुझ से बाद अरुणा आसफअली मिलने को बैठी थी।

प्रधानमंत्री की बातों से ऐसा लगा मानो वे संसदीय कार्य-प्रणाली को बदलना चाहती है। पार्लियामेण्ट का सेशन कम होगा, कमेटी की बैठकें ज्यादा होंगी। यह भी आभास मिला कि बरुआजी के संघठनात्मक कार्यों से पूर्णतया संतुष्ट नहीं हैं और वे जा भी सकते है। बातें खुलकर हुई और सजीदगी के साथ।

दिल्ली, 11 अगस्त, 1975

आपातकाल की घोषणा से एक बात अच्छी हुई कि हर जगह शान्ति, व्यवस्था और सुधार है। भय से हो या डर से—लेकिन है। रेलो में लोग टिकट लेकर चल रहे हैं, समय पर गाड़ियां चल रही है। भ्रष्टाचार कम है, चीजे मिल रही हैं, मूल्य कम हैं। पता नहीं यह कब तक है।

आज हर जगह भय भी है तथा निर्भय भी। वास्तव मे इस देश में कड़ाई की आवश्यकता थी। ऐसी स्थिरता तो कभी देश में आई ही नहीं थी।

पटना, 30 अगस्त, 1975

सरदार स्वर्ण सिंह और डा० कर्ण सिंह के साथ एयर फोर्स के प्लेन से बिहटा उतरा, वहां से दूसरे प्लेन से पटना और पटना में पैदल, रिक्शा और नाव द्वारा कदमकुआ, डाकबंगला रोड तथा बोरिंग रोड। जिन्होंने अपनी आंखों पटना का यह हाल नहीं देखा, उन्हें सहसा विश्वास ही नहीं होगा कि पटना के आधे से अधिक भाग में मोटरों-रिक्शो-स्कूटरों की जगह नावें चल रही थी।

मैं अपने घर से नजरें दौड़ाता हूं, चारों ओर जल-प्लावन है। कोई ऐसा घर नहीं दिखाई देता, जिसका निचला हिस्सा पानी में न डूबा हो। छोटे घरो के तो छप्पर तक दिखाई नहीं देते।

मेरी छत पर 30-40 लोग जमा हैं। प्रोफेसर भी, रिक्शा वाले भी, सरकारी कर्मचारी भी और हम भी। पूरा समाजवाद है इस पानी में कि पानी ने हर घर में न्याय किया है, किसी को छोड़ा नहीं है तथा सामान की चिन्ता छोड़कर लोग जान बचाना ही परम धर्म मान रहे हैं।

हेलिकाप्टरो से खाना गिराया जा रहा है, हवाई जहाजों से सर्वेक्षण-कार्य हो रहा है।

दिल्ली, 23 दिसम्बर, 1975

कभी-कभी बातें सुनकर भी प्रकट करने की तबीयत नहीं होती। बरुआजी से मिलने बहुत दिनों के बाद गया, वे भी रात 10 बजे आये, तो केवल हम ही दोनों थे। ऐसा बहुत कम होता है कि बरुआजी का दरबार खाली हो, केवल हम ही दो हों। आते ही बोले—'मैं तुम्हें कांग्रेस का जेनरल सेक्रेटरी बनाने जा रहा हूं।'

मैं नहीं जानता कि इसमें क्या तथ्य था, परन्तु पता नहीं क्यों इससे बहुत अधिक उत्साह या प्रसन्नता मुझे नहीं हुई।

मैंने यह बात किसी से भी न कहने को सोचा, कारण, यदि यह न हो तो और लज्जा की बात होती है।

दिल्ली, 25 दिसम्बर, 1975

जब-जब इन्दिराजी से मिलता हूं तो यह जरूर लगता है कि बातें कुछ साफ़गोई से होती है। आज 10 बजे मिलने का समय मांगा और साढ़े बारह का समय मिला। उनके साउथ ब्लाक कार्यालय में मिला और चुनाव, जे० पी०, विहार, लोकसभा सत्र, सभी विषयों पर बातें हुईं। मैं प्रयास यह करता हूं कि उनसे अधिक से अधिक सुनूं। हर विषय पर उन्होंने जो बातें कहीं उससे रोशनी मिली।

पता नहीं, भविष्य कैसा हो, क्या हो, परन्तु वर्तमान की उपेक्षा कर कभी नहीं चलना चाहिए।

चंडीगढ़, 29 दिसम्बर, 1975

भोर तीन बजे कई कार्यकर्त्ताओं के साथ चण्डीगढ़ अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के लिए पहुंचा। कहां अविभाजित कांग्रेस का वह लबोलबाब—मंच पर कहीं कामराज, कहीं मोरारजी, कहीं पाटिल, कहीं नीलम संजीवा रेड्डी और भाषण में वही दो रंगों-रूपों का तेज-तेवर—कहीं पाटिल : तो कहीं मेनन तो कहीं चन्द्रशेखर, कहीं धारिया।

अब सब कुछ सूना-सा, हम क्या कहें, क्या सुनें। कुर्सियों पर बैठने की व्यवस्था ने और भी मिलन और अपनापन का भाव छीन लिया।

हम तो कांग्रेस के है, कांग्रेस हमारी है, हम तो यही मानकर चलते हैं। मैंने भी विदेशी प्रस्ताव पर हिस्सा लिया और बंगलादेश पर भाषण दिया।

केवल इसलिए कि मेरी हाजिरी नोट हो जाये और लोग यह समझ जायें कि मै भी हूँ। पता नहीं सारी तैयारी, भयानक खर्च और विशाल मंच और सजावट के बावजूद भी जमने सा कुछ नहीं लगा।

कहां फरीदाबाद, जबलपुर, बंगलौर, बम्बई का उत्साह और कहां आज की परिस्थिति। हम तो दर्शक हैं और नेता जो भी आज्ञा दें उसका पालन करेंगे।

लखनऊ, 25 जनवरी, 1976

आज लखनऊ में हूँ, अन्य कार्यक्रमों के अलावा ठाकुरप्रसाद सिंह ने सन्ध्या समय एक साहित्यिक-गोष्ठी मेरे सम्मान में आयोजित की। नये कवियों ने बड़ी तेज-तर्रार और तीखी कवितायें सुनाईं जो हृदय को छू जाती थीं।

एक कवि की कुछ पंक्तियां थीं—

'इसीलिए,
अक्सर मैं चुप ही रहता हूं।
जानता हूं आम हैं,
मगर एक ने ईमली कह दी,
उसके पास बैठे हुए—
चार ने हामी भर दी
हो गया सच,
अब अपना मुंह कौन खोले,
आम को आम कहे,
इतना बड़ा झूठ कौन बोले।
युग की है मांग
मैं भी बहुमत से डरता हूं।
इसीलिए
अक्सर मैं चुप ही रहता हूं।'

मुझे 7 बजे की गाड़ी पकड़नी थी, मैं जल्दबाजी में था और बार-बार घड़ी देख रहा था। इसी समय एक कवयित्री श्रीमती सरोज की बारी आ गई, उन्होंने जो कविता शुरू की तो हम हँसे भी और व्यंग में कट भी गये—

'वे निभायेंगे क्या साथ
जिन्हें भागने की पड़ी है
जिन्दगी, जिन्दगी है
कि क्या कोई स्वचालित घड़ी है।'

दिल्ली, 27 जनवरी, 1976

प्रश्नोत्तर काल के बाद सदन में एक ऐसी घटना का साक्षी होना पड़ा, जिसे देखकर मैं तो कांप गया, पता नहीं ग्रौरों की प्रतिक्रिया क्या हुई ।

सरदार पटेल की बेटी मणिबेन पटेल ने विशेषाधिकार का एक प्रश्न उठाया । उनका कहना था कि चार-छ: दिनों पहले सत्याग्रह करते हुए उन्हें पुलिस ने चादनी चौक मे गिरफ्तार किया । तीन-चार घण्टे पुलिस उन्हे थाने में बैठाये रही । लेकिन इसकी सूचना न तो सदन में दी गई, न बुलेटिन में इसकी चर्चा की गई । मणिबेन का कहना था कि इस मामले को विशेषाधिकार के सुपुर्द किया जाये ।

लोकसभा ग्रध्यक्ष के कहने पर गृह-राज्य मंत्री श्री ग्रोम मेहता खड़े हुए ग्रौर उन्होंने कहा कि दिल्ली-प्रशासन से उन्होने जानकारी ली है ग्रौर मणिबेन की नजरबन्दी के सम्बन्ध में उन्हें कोई सूचना या जानकारी नही है ।

मणिबेन ने उसके बाद भी जोर दिया कि इस मामले को विशेषाधिकार के सुपुर्द किया जाये ।

तब बैठे-ही-बैठे ग्रोम मेहता ने कहा—दो तीन घण्टे थाने में टहल ग्राई ग्रौर उसके बाद घर पहुँच गई, तो इसमें प्रिविलेज का क्या मामला हुग्रा ? बैठ जा बुढी···

जितने हल्के ग्रोर निकृष्ट भाव से यह वाक्य कहा गया वह हिलाने के लिए काफी था । यह वाक्य सरदार पटेल की बेटी को कहा गया था—सरदार, जिनका देश के निर्माण में ग्रप्रतिम हाथ रहा, सरदार जो गाधीजी के दाहिने हाथ थे, सरदार जो भारत के प्रथम गृह मंत्री थे, सरदार, जिनकी एक भृकुटी के ग्रागे खड़े होने की किसी की हिम्मत नही होती थी ग्रौर सरदार, जिन्होंने राष्ट्र को ग्रखण्डता प्रदान की एवं देश का नया इतिहास गढा ।

ग्रौर मणिबेन कुवारी रहकर सरदार की सेवा में जीवन का सुख-संभोग मिटाती रही । उन्ही मणिबेन पटेल को वर्तमान गृह-राज्य मंत्री का ऐसा निकृष्ट 'रिमार्क' था ।

क्या यह सब इतिहास मौन बना सह लेगा ?

दिल्ली, 28 जनवरी, 1976

ग्राज ग्रखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के लिए नये महामंत्रियों ग्रौर सह-मन्त्रियों की घोषणा की गई । राजू ग्रौर ग्रनतुले नये महामंत्री हुए, पूरबी दी

केवल इसलिए कि मेरी हाजिरी नोट हो जाये और लोग यह समझ जायें कि मैं भी हूं। पता नहीं सारी तैयारी, भयानक खर्च और विशाल मंच और सजावट के बावजूद भी जमने सा कुछ नहीं लगा।

कहां फरीदाबाद, जबलपुर, बगलौर, बम्बई का उत्साह और कहा आज की परिस्थिति। हम तो दर्शक हैं और नेता जो भी आज्ञा दें उसका पालन करेंगे।

लखनऊ, 25 जनवरी, 1976

आज लखनऊ में हूं, अन्य कार्यक्रमों के अलावा ठाकुरप्रसाद सिंह ने संध्या समय एक साहित्यिक-गोष्ठी मेरे सम्मान में आयोजित की। नये कवियों ने बड़ी तेज-तर्रार और तीखी कवितायें सुनाईं जो हृदय को छू जाती थीं।

एक कवि की कुछ पंक्तियां थीं—

'इसीलिए,
अक्सर मैं चुप ही रहता हूं।
जानता हूं आम हैं,
मगर एक ने ईमली कह दी,
उसके पास बैठे हुए—
चार ने हामी भर दी
हो गया सच,
अब अपना मुंह कौन खोले,
आम को आम कहे,
इतना बड़ा झूठ कौन बोले।
युग की है मांग
मैं भी बहुमत से डरता हूं।
इसीलिए
अक्सर मैं चुप ही रहता हूं।'

मुझे 7 बजे की गाड़ी पकड़नी थी, मैं जल्दबाजी में था और बार-बार घड़ी देख रहा था। इसी समय एक कवियित्री श्रीमती सरोज की बारी आ गई, उन्होंने जो कविता शुरू की तो हम हंसे भी और व्यंग में कट भी गये—

'वे निभायेंगे क्या साथ
जिन्हें भागने की पड़ी है
जिन्दगी, जिन्दगी है
कि क्या कोई स्वचालित घड़ी है।'

दिल्ली, 27 जनवरी, 1976

प्रश्नोत्तर काल के बाद सदन में एक ऐसी घटना का साक्षी होना पड़ा, जिसे देखकर मैं तो कांप गया, पता नही औरो की प्रतिक्रिया क्या हुई।

सरदार पटेल की बेटी मणिबेन पटेल ने विशेषाधिकार का एक प्रश्न उठाया। उनका कहना था कि चार-छः दिनों पहले सत्याग्रह करते हुए उन्हें पुलिस ने चांदनी चौक में गिरफ्तार किया। तीन-चार घण्टे पुलिस उन्हें थाने में बैठाये रही। लेकिन इसकी सूचना न तो सदन मे दी गई, न बुलेटिन मे इसकी चर्चा की गई। मणिबेन का कहना था कि इस मामले को विशेषाधिकार के सुपुर्द किया जाये।

लोकसभा अध्यक्ष के कहने पर गृह-राज्य मंत्री श्री ओम मेहता खड़े हुए और उन्होंने कहा कि दिल्ली-प्रशासन से उन्होंने जानकारी ली है और मणिबेन की नजरबन्दी के सम्बन्ध मे उन्हें कोई सूचना या जानकारी नही है।

मणिबेन ने उसके बाद भी जोर दिया कि इस मामले को विशेषाधिकार के सुपुर्द किया जाये।

तब बैठे-ही-बैठे ओम मेहता ने कहा—दो तीन घण्टे थाने मे टहल आई और उसके बाद घर पहुँच गई, तो इसमे प्रिविलेज का क्या मामला हुआ? बैठ जा बुढी...

जितने हल्के और निकृष्ट भाव से यह वाक्य कहा गया वह हिलाने के लिए काफी था। यह वाक्य सरदार पटेल की बेटी को कहा गया था—सरदार, जिनका देश के निर्माण में अप्रतिम हाथ रहा, सरदार जो गाधीजी के दाहिने हाथ थे, सरदार जो भारत के प्रथम गृह मंत्री थे, सरदार, जिनकी एक भृकुटी के आगे खड़े होने की किसी की हिम्मत नहीं होती थी और सरदार, जिन्होंने राष्ट्र को अखण्डता प्रदान की एवं देश का नया इतिहास गढ़ा।

और मणिबेन कुवारी रहकर सरदार की सेवा में जीवन का सुख-सभोग मिटाती रहीं। उन्ही मणिबेन पटेल को वर्तमान गृह-राज्य मंत्री का ऐसा निकृष्ट 'रिमार्क' था।

क्या यह सब इतिहास मौन बना सह लेगा?

दिल्ली, 28 जनवरी, 1976

आज अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के लिए नये महामत्रियो और सह-मत्रियों की घोषणा की गई। राजू और अनतुले नये महामंत्री हुए, पूरबी दी

केवल इसलिए कि मेरी हाजिरी नोट हो जाये और लोग यह समझ जायें कि मैं भी हूं। पता नही सारी तैयारी, भयानक खर्च और विशाल मंच और सजावट के बावजूद भी जमने सा कुछ नही लगा।

कहा फरीदाबाद, जबलपुर, बंगलौर, बम्बई का उत्साह और कहा आज की परिस्थिति। हम तो दर्शक हैं और नेता जो भी आज्ञा दें उसका पालन करेंगे।

लखनऊ, 25 जनवरी, 1976

आज लखनऊ मे हूँ, अन्य कार्यक्रमों के अलावा ठाकुरप्रसाद सिंह ने सध्या समय एक साहित्यिक-गोष्ठी मेरे सम्मान में आयोजित की। नये कवियों ने बड़ी तेज-तर्रार और तीखी कवितायें सुनाईं जो हृदय को छू जाती थीं।

एक कवि की कुछ पक्तिया थी—

'इसीलिए,
अवसर में चुप ही रहता हूं।
जानता हूं आम हैं,
मगर एक ने ईमली कह दी,
उसके पास बैठे हुए—
चार ने हामी भर दी
हो गया सच,
अब अपना मुंह कौन खोले,
आम को आम कहे,
इतना बड़ा झूठ कौन बोले।
युग की है मांग
मैं जो बहुमत से डरता हूं।
इसीलिए
अवसर में चुप ही रहता हूं।'

मुझे 7 बजे की गाड़ी पकड़नी थी, मैं जल्दबाजी मे था और बार-बार घड़ी देख रहा था। इसी समय एक कवियित्री श्रीमती सरोज की बारी आ गई, उन्होंने जो कविता शुरू की तो हम हंसे भी और व्यंग में कट भी गये—

'वे निभायेंगे क्या साथ
जिन्हें भागने की पड़ी है
जिन्दगी, जिन्दगी है
कि क्या कोई स्वचालित घड़ी है।'

दिल्ली, 27 जनवरी, 1976

प्रश्नोत्तर काल के बाद सदन में एक ऐसी घटना का साक्षी होना पड़ा, जिसे देखकर मैं तो कांप गया, पता नही औरों की प्रतिक्रिया क्या हुई।

सरदार पटेल की बेटी मणिबेन पटेल ने विशेषाधिकार का एक प्रश्न उठाया। उनका कहना था कि चार-छः दिनों पहले सत्याग्रह करते हुए उन्हें पुलिस ने चांदनी चौक में गिरफ्तार किया। तीन-चार घण्टे पुलिस उन्हें थाने में बैठाये रही। लेकिन इसकी सूचना न तो सदन मे दी गई, न बुलेटिन मे इसकी चर्चा की गई। मणिबेन का कहना था कि इस मामले को विशेषाधिकार के सुपुर्द किया जाये।

लोकसभा अध्यक्ष के कहने पर गृह-राज्य मंत्री श्री ओम मेहता खड़े हुए और उन्होंने कहा कि दिल्ली-प्रशासन से उन्होंने जानकारी ली है और मणिबेन की नजरबन्दी के सम्बन्ध में उन्हे कोई सूचना या जानकारी नही है।

मणिबेन ने उसके बाद भी जोर दिया कि इस मामले को विशेषाधिकार के सुपुर्द किया जाये।

तब बैठे-ही-बैठे ओम मेहता ने कहा—दो तीन घण्टे थाने मे टहल आई और उसके बाद घर पहुँच गई, तो इसमें प्रिविलेज का क्या मामला हुआ? बैठ जा बुढ़ी···

जितने हल्के और निकृष्ट भाव से यह वाक्य कहा गया वह हिलाने के लिए काफी था। यह वाक्य सरदार पटेल की बेटी को कहा गया था—सरदार, जिनका देश के निर्माण में अप्रतिम हाथ रहा, सरदार जो गाधीजी के दाहिने हाथ थे, सरदार जो भारत के प्रथम गृह मंत्री थे, सरदार, जिनकी एक भृकुटी के आगे खड़े होने की किसी की हिम्मत नहीं होती थी और सरदार, जिन्होंने राष्ट्र को अखण्डता प्रदान की एवं देश का नया इतिहास गढ़ा।

और मणिबेन कुवारी रहकर सरदार की सेवा मे जीवन का सुख-संभोग मिटाती रहीं। उन्ही मणिबेन पटेल को वर्तमान गृह-राज्य मंत्री का ऐसा निकृष्ट 'रिमार्क' था।

क्या यह सब इतिहास मोन बना सह लेगा?

दिल्ली, 28 जनवरी, 1976

आज अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के लिए नये महामंत्रियों और सह-मंत्रियो की घोषणा की गई। राजू और अनतुले नये महामंत्री हुए, पूरबी दी

तथा मिसेस चन्द्रशेखर पुरानी रह गईं। संयुक्त मंत्रियों की घोषणा नई थी—श्रीमती मारग्रेट अल्वा, श्री नवलकिशोर शर्मा और तरुण गोगई।

मेरी आशंका सही निकली। अच्छा हुआ कि मैंने किसी से यह बात कही नहीं थी, वरना लज्जित होना पड़ता। मैंने तो न ही इच्छा प्रकट की थी और न ही कहा ही था, परन्तु स्वयं वरुआजी ने मुझ से कहा था कि तुम्हें सेक्रेटरी बना रहा हूं।

मैंने तो······को भी यह बात नहीं बताई, इसका मुख्य कारण यह था कि वरुआजी के कहने के बाद भी मुझे तनिक भी भरोसा न था। और जो आशा नहीं रखता, उसे कोई निराशा भी नहीं होती।

मैं बल्कि न होकर हृदय से खुश हूं—लिखने-पढ़ने का और कुछ अपना काम करने का भी मौका मिल सकेगा। और उस तरह से दिन-रात परेशान।

इधर लिखने-पढ़ने का काम अच्छा कर रहा हूं और भाव-भाषा-शैली भी मेरा साथ दे रहे हैं।

दिल्ली, 31 जनवरी, 1976

उनकी मनःस्थितियां जानता हूं और इसीलिए कभी-कभी डर लगता है। पता नहीं वे क्या कर दें, पता नहीं वे कब कंट्रोल से बाहर हो जायें, पता नहीं उनको कब क्या हो जाये!

सोचता हूं—ऐसा क्यों होता है, तब कोई आश्चर्य नहीं होता। आखिर, उनके (श्रीमती सुमित्रा कुलकर्णी) अन्दर जो खून है, उसमें वास है सच्चाई का, निष्ठा का, साहस का, धैर्य का और ऐसी ऊंचाई का, जिसकी तुलना हम में से कोई भी और नहीं कर सकता।

एक-एक शब्द, एक-एक बात एक-एक सांस—मैं देखता हूं, महसूस करता हूं और सिहर जाता हूं।

'मैं जानती हूं, मेरे लिए तिहाड़ में जगह है, बाहर कहीं नहीं।'

और तब एक दिन मैंने उन्हें धीरे से कहा—'आप [illegible] हो जायेंगी, जिस दिन यह नौबत आई [illegible] रहकर [illegible]

'मैं 1 जुलाई तक ही [illegible] में 'रिजाइन' [illegible] ऊंगी। तुम देख लेना।'

—ऐसी परिस्थिति क्यों [illegible] ता हूं [illegible]

कोई विरो[illegible] नहीं है। फिर भ [illegible] बात [illegible]

बात करती हैं। और फिर उनसे निकट भी आपका कोई नहीं है। —मैं कहता हूं।

—'मैं अपने बच्चों को और उन्हें देश से बाहर भेज दूंगी और उसके बाद जो भी मेरे जी में आयेगा, मैं करूंगी। मेरे बच्चों को और उन्हें लोग बड़ी तकलीफ देंगे।' —जब तक वह कहती है।

'शंकर, तुम नही सोचते, हम लोग कहां जा रहे हैं? क्या इसी के लिए हम जिन्दा हैं।'

'तुम तो बड़े स्वार्थी हो, तुम्हें क्या, तुम तो अपना सब कुछ ठीक रखते हो।'

'मुझे जिस दिन कुछ करना होगा, किसी से नहीं पूछूंगी। कर गुजरूंगी।'

'तुम नही समझ सकते कि मैं कितनी पीड़ा में हूं।'

ये कई तरह की बातें हैं, जो उनके मुंह से निकलती रहती हैं और मैं केवल सुनता ही नही हूं, गुनता भी हूं। उनका प्यार, उनका गुस्सा, उनकी पीड़ा, उनकी मन.स्थिति मैं नही समझूंगा तो कौन समझेगा। जीवन के सागर में मोती ढूढ़ने की ठेकेदारी मेरी नहीं है, लेकिन जो मोती मिला है—उसको सहेज न करूं तो मुझ से बड़ा अनाड़ी और कौन होगा। उनकी घृणा और तिरस्कार सब समझता हूं मैं—लेकिन प्रकट करके भी सारी बातें प्रकट नहीं कर सकता।

कारण, मेरे लिए वे थाती के समान हैं—मृत्यु के समीप चलने वाली सांस—जिनमें जीवन के तत्व निहित होते हैं। और मेरे लिए भी वे मांस के समान ही हैं।

दिल्ली, 4 फरवरी, 1976

कल सवेरे कांग्रेस-संसदीय कार्यकारिणी की बैठक हो रही थी। बसन्त साठे ने मार्केटिंग-सिस्टम के बारे में एक टिप्पणी वितरित की थी, उसी पर बातचीत और बहस चल रही थी। मैं कुछ देर से पहुंचा और प्रधानमंत्री को नमस्कार कर कोने की एक कुर्सी पर बैठ गया।

मेरी नजरें सामने की दीवार पर टंगी पेंटिंग पर जाकर टिक गई—मैं सुनता कम रहा, उस कला को ही देखता रहा। वास्तव में बड़ी प्रखर और बेदाग चित्रकारी है। अब तो मुझे ऐसा लगता है मानो जब कभी कार्यकारिणी की बैठक में रहूंगा तब सब कुछ भूल कर उसी पेंटिंग को देखता रहूंगा।

समय भी कुछ ऐसा ही आ गया है। सब कुछ भूल जाओ—भूत, भविष्य और वर्तमान और केवल देखते भर रहो।

लोकसभा की बैठकों में मन नहीं लगता, वहां है ही क्या। निर्जीव आत्माओं का घुटन। कभी-कभी दो-चार मिनटों के लिए अन्दर हो लेता हूं, कभी इच्छा नहीं होती तो लॉबी से दस्तखत करके सेन्ट्रल हाल और वहा से हिन्दी लाज और लायब्रेरी।

सब कुछ स्पन्दनहीन और मरा-मरा-सा लगता है। मैं भी उसका एक अंग हूं। और बड़ी शिफ्त से सब कुछ देख रहा हूं, सुन रहा हूं और झेल रहा हूं।

दिल्ली, 15 फरवरी, 1976

देश, काल, परिस्थिति पर सोचना बन्द कर दिया है, कारण, जो अकारण सोचा करते है, वे अपना दुःख व्यर्थ में बढ़ा दिया करते हैं। और जो सोचते नहीं, बहुत अधिक ताने-बाने बुनते नहीं, अतीत और वर्तमान और भविष्य का लेखा-जोखा लेते नहीं—ऐसे लोग बड़े भले रहते हैं।

मैं भी अब ऐसे लोगों की पांत में ही अपने को पाता हू। कहना, न कहना; सुनना, न सुनना; और समझना, न समझना। और सच कहूं तो मुझे तो एक मिनट भी फुर्सत नहीं मिलती कामों से।

ट्रेन में, 16 फरवरी, 1976

अपने आप में खोये रहने से ज्यादा अच्छा है, अपने आप से अनजान बने रहना। इससे भी कुछ आगे बढ़कर भागते फिरना—व्यक्ति से नहीं, परिस्थिति से। परिस्थिति भी ऐसी जो हो नहीं; संभावना का सत्य हो।

उन विश्वासों को तोड़ ही कैसे सकता हूं, जो पत्थर की लकीर बनकर मेरे मे सपृक्त हो गये है। सच मे मुझे अपने जीवन से बिल्कुल प्यार नहीं है, यदि होता तो उसके नि.शेष की कामना नहीं करता।

पटना, 18 फरवरी, 1976

चलो, यह भी अच्छा हुआ—जुड़ते-जुड़ते कुछ टूटा और टूटते-टूटते कुछ जुड़ा। यह टूटने-जुड़ने, खिलने-कुम्हलाने बजने और मौन बने रहने का क्रम भी जीवन के साथ ही समाहित हो गया है।

बड़ी बात जीवन की चेतना नहीं है, चेतना में निहित करुणा है।

गाथाओं का कोई अन्त हो ही नहीं सकता। सूक्ष्म से सूक्ष्म अणु के समान।

किसी ताल में एक छोटी कंकड़ी डालने से भी अस्थिरता पैदा हो जाती है, आंखों में कोई कण आ जाये तो किरकिरी पैदा हो जाती है, जीवन भी उसी के समान है ।

ट्रेन में, 20 फरवरी, 1976

मैं क्यों इतना भटकता चलता हूं, क्यों भागता चलता हूं, क्यों एक स्थान पर नही रह पाता, मुझे दिल्ली क्यों काटती रहती है ?—सच मे मै इनमें से किसी का भी उत्तर नही जानता ।

यह क्यों-क्या है—अबूझ है मेरे लिए ।

दिल्ली, 23 फरवरी, 1976

उनका कहना है कि वे अलिप्त या निलिप्त हो गई है आज की परिस्थितियों से और तब से वास्तव में वह सुखी है । इसीलिए ऋषि-मुनियों ने शून्य की इतनी महिमा गाई है—और यह निलिप्तता या अलिप्तता उसी विराट शून्य का अंश है—स्थितप्रज्ञ ।

दिल्ली, 1 मार्च, 1976

बहुत सारे दर्द ऐसे होते है, जो सहे नही जाते और बहुत सारे दर्द ऐसे होते है, जो कहे नही जाते । पर वे झनझना जाते है ।

मैं सहने की सीमा को असीम बनाना चाहता हूं । मेरी उपलब्धियां कुछ रहें, ऐसी कि वे यादगारी हो, धरोहर हों ।

शायद हर जगह ऐसा ही हो कि अपना से अपना आदमी घृणा करे, अपने आपसे । लेकिन मैं ऐसा नही होना चाहता ।

प्राप्य संकेत जीवन के विधा बनें, मैं जीवन दुकुल न बनू ।

दिल्ली, 5 मार्च, 1976

क्या स्थिति है समय-क्रम की । डा० रामसुभग सिंह, कामरेड रामकिशन और रानी रामकुमार भार्गव मिलने आये—तो कई चित्र उभर आये ।

डाक्टर साहब केन्द्र के मंत्री, कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्य और केन्द्रीय चुनाव समिति के सदस्य थे तो दिल्ली आकर उनसे वैसे ही मिलता था, जैसे कोई यात्री कुतुबमीनार या लालकिला देखने आता है । याद है मुझे 1967 में तथा फिर 1969 मे उनसे मिला था विधानसभा की एक सीट मिल जाये ।

सीट नहीं मिली थी, डाक्टर साहब का सम्पर्क जरूर मिला था और तब से लेकर आज तक डा० साहब से मेरा भला सम्बन्ध और अपनापन बना हुआ है।

राज्यसभा के लिए डाक्टर साहब चाहते हैं, लेकिन व्यक्तित्व की महानता को कायम रखते हुए। इसीलिए निम्न स्तर पर गिरकर औरों के समान वे दरबार नहीं कर सकते, क्यों नहीं लगा सकते और खुशामद भी नहीं कर सकते। उनके ऐसे व्यक्ति के लिए यह शोभनीय है भी नहीं।

मैं बरुआजी से उनके लिए मिला, तो वे बोले कि प्रधानमंत्री चाहती है कि ये लोकसभा के लिए चुनाव लड़ें और उन्हें राज्यसभा में एक बाधा तारकेश्वरी भी है, कारण, वे भी चाह रही है। देना पड़ेगा तो दोनों को।

मैंने दो-चार लोगों के सम्बन्ध मे और बरुआजी से बातें की। परबतियारजी, रणविजय तथा अशोक के बारे में।

मैंने डा० रामसुभग सिंह जी को यह बात बता दी। वैसे वे भी बरुआजी से मिले भी। मेरे ऊपर उनका काफी भरोसा और विश्वास है।

रात मैंने उन्हें खाने पर भी बुलाया और साथ मे सर्वश्री केदार पाण्डेय, सिसोदियाजी, प्रेमचन्द वर्मा, जब्बार हुसेन, रमेश झा तथा मेरे यहां ठहरे श्री बलराम दुबे, रणविजय, अशोक तथा अनन्त मराल शास्त्री जी भी थे।

जब-जब टिकटों का झमेला चलता है, तब-तब मेरे यहां मिलने वालों और ठहरने वालों की भीड़ भी बढ़ जाती है।

दिल्ली, 8 मार्च, 1976

लोकसभा का बजट-सत्र प्रारम्भ हुआ। मैं इधर पुनः दौड़-धूप मे लग गया था, अत: कल शाम को क्षेत्र के दौरे से वापस आया। कोडरमा-झुमरी-तिलैया मे 5 मीटिंगों में शामिल हुआ और सब मिला कर बहुत अच्छा कार्यक्रम रहा। खुलकर बातें हुईं और भाषण भी वैसा ही दिया।

आज से लोकसभा में आया परन्तु विरोधी-दलों के नेताओं के नहीं रहने से सारा कार्यक्रम ही निर्जीव-सा लगता है—एक तरफा और 'नेट गोल' के समान।

पता नहीं लगता है कि यह क्रम कब तक चलेगा?

ढिल्लों साहब जब अध्यक्ष थे तब प्रश्नोत्तर-काल में एक या दो पूरक-प्रश्न मैं जरूर पूछता था, लेकिन भगतजी जब से हुए हैं मैं कम ही भाग ले रहा हूं तथा इनका ढर्रा भी कुछ ऐसा है कि हम लोगों को कम समय ही मिल पाता है।

जैसे अच्छी-से अच्छी खाद्य सामग्री सामने रखी हो, लेकिन अरुचि रहने पर खाने का जी नहीं करे, वैसे ही इस समय यहां भी है ।

दिल्ली, 18 मार्च, 1976

कल लोकसभा में मेरा प्रश्न था कि क्या तमिलनाडु मे हिन्दी-विरोधी-आन्दोलन में भाग लेने वाले लोगों को पेंशन दिया जा रहा है ? यदि 'हां' तो कितना एवं इसका औचित्य क्या है ?

प्रश्न जब आने को हुआ तो उधर से शंकरानन्द दौड़े हुए आये कि ओम मेहता और रघुरामैया ने मना किया है कि इसे नही रखें। सरकार के लिए बहुत 'एम्बैरेस्मेंट' हो जायेगा ।

मैं बहुत अनिच्छा से उठा, कारण, हिन्दी का प्रश्न मेरे लिए जी-जान का प्रश्न था उसे किसी भांति भी अपने से जुदा करना नही चाहता । ऐसी स्थिति में इतने अच्छे सवाल को किसी भांति छोड़ना नहीं चाहता था, लेकिन आपातकाल में भला कौन ओम मेहता की बात नहीं मानता । और मैं बाहर आ गया, वैसे ही जैसे एक-दो साल पहले पी० गंगादेव बाहर आ गये थे ।

उसके बाद ही तुरत अध्यक्ष ने मेरा नाम पुकारा और विरोधी दलों के जो भी सदस्य थे, सबों ने इस पर हंगामा किया कि मुझे मंत्री ने जानबूझकर हटा दिया है । इस पर प्रधानमंत्री ने प्रश्न मंगाकर देखा और पढ़कर वे भी ओम मेहता पर नाराज हुई कि इसे क्यों रोका गया ? यह बात पंतजी ने तथा गुजराल ने मुझे बाद मे बताई ।

तामिलनाडु के सदस्यों का कहना था कि 'एन्टी हिन्दी' के नाम पर डी० एम० के० वालों ने 'एन्टी सोशल' अथवा अपने कार्यकर्त्ताओं को ही पेंशन दिया है और वह 13 लाख रुपये वार्षिक है ।

चतरा, 10 अप्रैल, 1976

वास्तव में मुझे अपने क्षेत्र से बेहद प्यार है । इसकी चप्पे-चप्पे जमीन से, जंगल से, पहाड़ से, यहां के लोगों से, तरुओं से, जंगली जानवरों से और अपने कार्यकर्त्ताओं से । 18 की शाम को आया और 21 तक घूमता-फिरता ठहरा और '20 सूत्री कार्यक्रम एवं ग्रामीण विकास' पर गोष्ठी किया । रामदुलारीजी का वास्तव मे हृदय से कृतज्ञ हूं जिन्होंने आकर उद्‌घाटन किया । मुंगेरी बाबू और यमुना बाबू आये तथा और कोई बड़े नेता नहीं आये । मुझे अपेक्षा भी नहीं थी, कारण मेरे संसदीय-क्षेत्र के तथा कुछ और भी प्रियजन मिल-

मिला कर तीन सौ के करीव आये तथा 11 से 3 तक और 4.30 से 9.30 तक कार्यक्रम चलता रहा। नाश्ता-खाना-सांस्कृतिक-समारोह—सारा कार्यक्रम सफल रहा।

प्रधानमंत्री और श्री संजय गांधी कहते हैं कि मंत्रीगण, सांसद, विधायक, युवक कार्यकर्त्ता गांवों में जायें, जनता के बीच काम करें, लेकिन यहां यह हाल है कि शहर छोड़कर कोई देहात जाना नहीं चाहता। सारा ढोंग और ढकोसला सिद्ध होता है।

मैंने 7 मंत्रियों से तथा 2 कांग्रेस के नेताओं से आने का अनुरोध किया। 5 ने आने का निश्चित वादा किया लेकिन उसमें से केवल रामदुलारीजी तथा मुंगेरी वाबू ही आये।

कांग्रेस के वास्तविक कार्यकर्त्ता शुरू से उपेक्षित रहे हैं, जो देहातों में, गांवों में, जगलों में काम करते हैं। एम० एल० ए०, एम० एल० सी० का टिकट या कोई पद उसे ही मिलता है जो पटना या दिल्ली में नेताओं की खुशामद में रहता है। मंत्रियों और कार्यकर्त्ताओं में भारी अन्तर है, वही जो साहब और चपरासी में।

मुझे बड़ी खुशी है, इस आयोजन से।

दिल्ली, 23 अप्रैल, 1976

जब-जब प्रधानमंत्री से मिलता हूं, बड़ा अच्छा लगता है। अतिशय शालीनता, एक बौद्धिक अनुराग, एक मर्यादित ऊचाई। पाच वर्षों के अन्दर पच्चासेक बार से अधिक मिला होऊंगा और जानता हूं कि उनकी बात, उनका इशारा, उनके कहने का अर्थ किस प्रकार निकलता है।

आज मिला और बहुत इतमिनान से बातें हुई निम्नलिखित विषयों पर—

1) अण्डमान-निकोबार के सम्बन्ध में।
2) कांग्रेस संसदीय दल के आगामी चुनाव के सम्बन्ध में।
3) ए० आई० सी० सी० के सम्बन्ध में।
4) आस्ट्रेलिया जाने के सम्बन्ध मे।

आज बहुत खुल कर सभी विषयों पर वह बातें कर रही थीं। मुझे बड़ा अच्छा लगता है कि किसी बात पर उनके विचार सुने जायें। अमूमन ऐसा होता है कि वह दूसरों की बातें सुनती है, अपनी बातें नही कहती हैं, लेकिन कभी-कभी वह जब कहने लगती हैं तो बहुत कुछ कह जाती हैं।

दिल्ली, 30 अप्रैल, 1976

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक—मावलकर हाल, कुर्सी मंच, बैठना, बेतरतीबी, खुशामदी बातें, हर ओर अंग्रेजी ही अंग्रेजी। आखिर हो क्या गया है—गांधी की आत्मा को। मौन—श्रोता और दर्शक के और गति क्या हो सकती है।

मैं तो इधर-उधर के कामों में ही मशगूल रहा। यों भी दिल्ली में ए० आई० सी० सी० का रंग जमता नही है, खासकर मावलकर हाल तो बिल्कुल छोटा पड़ता है।

संविधान सशोधन और 20 सूत्री कार्यक्रम यही दो विचारणीय विषय थे, जिसके बाद बैठक समाप्त हो गई।

बंगलौर, 9 सितम्बर, 1976

माओत्से-तुंग को आज की दुनिया का मैं सबसे बड़ा आदमी मानता रहा हूं। माओ ने जितनी बड़ी प्रतिष्ठा चीन की बढ़ाई, जो शासन दिया, जो दृढ़ता दी और स्वयं सभी बड़े राष्ट्रों के सामने तना रहा और सभी बड़े राष्ट्र दोस्ती के लिए चीन के आगे झुके। और माओ शुरू से अन्त तक जनता का आदमी बना रहा।

पता नहीं क्यो मुझे इस महान व्यक्तित्व के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। और आज यहा के 'अशोक होटल' मे जब पार्टी खाने आया और वहीं पता चला कि माओ की मृत्यु हो गई तो मुझे किसी अयाचित उदासीनता ने घेर लिया और समिति का संयोजक होते हुए भी खाना न खाने का निश्चय किया। मेरी कुछ मान्यताएं रही हैं, भली या बुरी और सोचता आया हूं, बहुत दिनों से कि माओ, लतामगेशकर एवं इन्दिराजी—इन तीनों के न रहने पर उस दिन उपवास रखूंगा।

लेकिन जब अपने होटल 'वुडलैंड' में वापस आया तो······ने गुस्सा में आसमान-जमीन एक कर दिया और यहां खिला कर ही मानी। पता नहीं उन्हें इसमें क्या मिलता है। —उस महान् व्यक्ति के लिए मैं इतना भी नहीं कर सका।

कामता सेवा केन्द्र, 26 सितम्बर, 1976

भारत के सिसकते गांव, आर्थिक रूप से छटपटाते गांव, अभी भी अशिक्षित और पिछड़े गांव—अभी पता नहीं कितना समय लगेगा इन्हें उठने में।

मिला कर तीन सौ के करीब आये तथा 11 से 3 तक और 4.30 से 9.30 तक कार्यक्रम चलता रहा। नाश्ता-खाना-सांस्कृतिक-समारोह—सारा कार्यक्रम सफल रहा।

प्रधानमंत्री और श्री संजय गांधी कहते हैं कि मंत्रीगण, सांसद, विधायक, युवक कार्यकर्त्ता गांवों में जायें, जनता के बीच काम करें, लेकिन यहां यह हाल है कि शहर छोड़कर कोई देहात जाना नहीं चाहता। सारा ढोंग और ढकोसला सिद्ध होता है।

मैंने 7 मंत्रियों से तथा 2 कांग्रेस के नेताओं से आने का अनुरोध किया। 5 ने आने का निश्चित वादा किया लेकिन उसमें से केवल रामदुलारीजी तथा मुंगेरी बाबू ही आये।

कांग्रेस के वास्तविक कार्यकर्त्ता शुरू से उपेक्षित रहे हैं, जो देहातों में, गांवों में, जंगलों में काम करते हैं। एम० एल० ए०, एम० एल० सी० का टिकट या कोई पद उसे ही मिलता है जो पटना या दिल्ली मे नेताओं की खुशामद में रहता है। मंत्रियों और कार्यकर्त्ताओं में भारी अन्तर है, वही जो साहब और चपरासी में।

मुझे बड़ी खुशी है, इस आयोजन से।

दिल्ली, 23 अप्रैल, 1976

जब-जब प्रधानमंत्री से मिलता हूं, बड़ा अच्छा लगता है। अतिशय शालीनता, एक बौद्धिक अनुराग, एक मर्यादित ऊंचाई। पांच वर्षों के अन्दर पच्चासेक वार से अधिक मिला होऊंगा और जानता हूं कि उनकी बात, उनका इशारा, उनके कहने का अर्थ किस प्रकार निकलता है।

आज मिला और बहुत इतमिनान से बातें हुईं निम्नलिखित विषयों पर—

1) अण्डमान-निकोबार के सम्बन्ध में।
2) कांग्रेस संसदीय दल के आगामी चुनाव के सम्बन्ध में।
3) ए० आई० सी० सी० के सम्बन्ध में।
4) आस्ट्रेलिया जाने के सम्बन्ध में।

आज बहुत खुल कर सभी विषयों पर वह बातें कर रही थीं। मुझे बड़ा अच्छा लगता है कि किसी बात पर उनके विचार सुने जायें। अमूमन ऐसा होता है कि वह दूसरो की बातें सुनती हैं, अपनी बातें नही कहती हैं, लेकिन कभी-कभी वह जब कहने लगती हैं तो बहुत कुछ कह जाती हैं।

दिल्ली, 30 अप्रैल, 1976

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक--मावलंकर हाल, कुर्सी मंच, बैठना, बेतरतीबी, खुशामदी बातें, हर ओर अंग्रेजी ही अंग्रेजी। आखिर हो क्या गया है--गांधी की आत्मा को। मौन--श्रोता और दर्शक के और गति क्या हो सकती है।

मैं तो इधर-उधर के कामों में ही मशगूल रहा। यों भी दिल्ली में ए० आई० सी० सी० का रंग जमता नहीं है, खासकर मावलंकर हाल तो बिल्कुल छोटा पड़ता है।

संविधान संशोधन और 20 सूत्री कार्यक्रम यही दो विचारणीय विषय थे, जिसके बाद बैठक समाप्त हो गई।

बंगलौर, 9 सितम्बर, 1976

माओत्से-तुंग को आज की दुनिया का मैं सबसे बड़ा आदमी मानता रहा हूं। माओ ने जितनी बड़ी प्रतिष्ठा चीन की बढ़ाई, जो शासन दिया, जो दृढ़ता दी और स्वयं सभी बड़े राष्ट्रों के सामने तना रहा और सभी बड़े राष्ट्र दोस्ती के लिए चीन के आगे झुके। और माओ शुरू से अन्त तक जनता का आदमी बना रहा।

पता नहीं क्यों मुझे इस महान व्यक्तित्व के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। और आज यहां के 'अशोक होटल' में जब पार्टी खाने आया और वहीं पता चला कि माओ की मृत्यु हो गई तो मुझे किसी अयाचित उदासीनता ने घेर लिया और समिति का संयोजक होते हुए भी खाना न खाने का निश्चय किया। मेरी कुछ मान्यताएं रही हैं, भली या बुरी और सोचता आया हूं, बहुत दिनों से कि माओ, लतामंगेशकर एवं इन्दिराजी--इन तीनों के न रहने पर उस दिन उपवास रखूंगा।

लेकिन जब अपने होटल 'वुडलैंड' में वापस आया
आसमान-जमीन एक कर दिया और यहां खिला कर ही
इससे क्या मिलता है। --उस महान् व्यक्ति के लिए मैं
कर सका।

कामता सेवा केन्द्र, 26 सितम्बर, 1976

भारत के सिसकते गांव, आर्थिक रूप से छटपटाते गांव, अ
क्षित और पिछड़े गांव--अभी पता नहीं कितना समय लगेगा

सदियां लग जायेंगी, इन्हें, उठने में। पता नहीं अब कोई गांधी पैदा होगा या नहीं, जो इनकी अनुभूतियों को पहचान पाये।

मैं तो हिन्दी एवं भारतीय जनता दोनों का हाल देखकर निराश ही होता हूं—पता नहीं क्यों ?

चतरा, 2 अक्तूबर, 1976

2 अक्तूबर गांधी-जयन्ती और बड़ा पर्व दशहरा एक साथ पड़ा और मैं अपने क्षेत्र के उन हिस्सों में जो पिछले दिनों बाढ़ से तबाह हुए सहाय्य के रूप में कुछ वस्त्रों का वितरण करने गया। जोरी, घंघरी, हुण्टरगंज और पिण्डराकला। गरीबी देखकर सिहर गया। मैंने कोई खबर नहीं की थी और न तो कोई लिस्ट बनवाई। हरिजनों, मुइयों एवं जिन लोगों के घर गिर गये थे ऐसे लोगों के मुहल्लों में जाकर बैठ जाता, जिस औरत के शरीर पर गुदड़ी लपटी होती या देखने से जो गरीब नजर आती, उसे कपड़ा दे देता था।

दो सौ परिवारों में मैंने कपड़े दिये होंगे—इनमें 90 प्रतिशत से अधिक मर्द या औरतें ऐसी थीं जिनके शरीर पर मात्र एक ही कपड़ा था। किसी-किसी परिवार में तो एक ही साड़ी से मां, बेटी और बहू—तीनों काम चलाते थे।

मैं इस गरीबी को देखकर सिहर गया। हम लोग किस अवास्तविक दुनिया में फिर रहे हैं, पता नहीं। गरीब यहां अधिक गरीब हुआ है; अमीर और अमीर। और हमारे भाषणों का क्रम चालू है।

दिल्ली, 31 अक्तूबर, 1976

25 तारीख को संसद का सत्र शुरू हुआ—विशेष अधिवेशन, सविधान की 59 धाराओं में संशोधन के लिए। पार्टी की ओर से तीन लाईन का चाबुक है, अतः सवाल ही नहीं उठता कि क्या करना है। लेकिन वास्तविकता यह है कि किसी को यह नहीं पता कि क्या होने जा रहा है ?

तीन प्रकार की विचारधाराएं सामने हैं—सविधानसभा का निर्माण हो, न हो या फिर सात वर्षों का कार्यकाल हो।

मैं किसी भांति भी कार्यकाल बढ़ाने या चुनाव टालने के पक्ष में नहीं हूं। हां, चुनाव टालना हो तो सविधानसभा बन जाये और रोज-रोज संविधान में संशोधन करने की बजाये एक बार ही सब कुछ तय हो जाये—इस पक्ष में जरूर हूं। मैंने यही बातें संसदीय-कार्यकारिणी में भी कही तथा आगे भी कहूंगा।

मैं काफी सक्रिय रहा—संशोधन पर बोला और 30 धाराओं में संशोधन भी दिये। जमकर हिन्दी के पक्ष का समर्थन किया और लोगों तक अपने मनोभाव पहुंचा सका। मेरा कहना सही था कि मूल कर्त्तव्यों में—जिसमें राष्ट्रध्वज और राष्ट्रमान के प्रति सम्मान रखने की बात है राष्ट्रभाषा भी जुड़े। लेकिन ये बातें मानी न गईं।

29 को प्रधानमंत्री बोलीं; संविधानसभा की मांग को उन्होंने ठुकराया और कहा कि इसी संसद को सारे अधिकार प्राप्त हैं। मैंने वहीं बैठे-बैठे लिखा—

'संविधान संशोधन पर होने वाली बहस का यह तीसरा दिन है। कई प्रकार के धुंआधार भाषण हो चुके, मुख्यतः कांग्रेसजनों के ही, कारण सी० पी० एम०, संगठन कांग्रेस, जनसंघ, भारतीय लोक दल आदि पार्टियों ने संविधान संशोधन का बहिष्कार किया है, उनका कहना है कि 5 साल की अवधि समाप्त होने पर बढ़ाये गये लोकसभा को नैतिक अधिकार नहीं है।

4 बजने में 10 मिनट बाकी है। 4 बजे प्रधानमंत्री बोलने वाली हैं। हर किसी की आंखें उनकी ओर लगी हैं तथा कान उनके भाषण सुनने को उत्सुक है। वे नारंगी रंग की साड़ी-ब्लाउज में हैं, बार्डर लाल है। पशमीना का शाल कंधे पर है।

कई प्रकार की विचारधारायें सदस्यों में चल रही है—संविधानसभा बने, सेलेक्ट कमेटी में जाये, सबों को यही पास कर दिया जाये। होगा वही जो प्रधानमंत्री की इच्छा होगी और इसीलिए हर सदस्य यह सुनने को उत्सुक है कि प्रधानमंत्री कहती क्या है। धीरे-धीरे सीटें भर रही है, कांग्रेसी सदस्य एक-एक कर आ रहे हैं, अध्यक्ष की कुर्सी की ओर परम्परागत माथा नवाकर बैठ रहे हैं। प्रधानमंत्री 4 बजने के दो-तीन मिनट पहले ही बोलना शुरू करती हैं।'

दिल्ली, 3 नवम्बर, 1976

प्रधानमंत्री से जब-जब मिलता हूं बहुत अच्छा लगता है। जितने अपनापन और विश्वास के साथ बड़ी से बड़ी बातें वे करती हैं, उसे सजोकर रखने की तबीयत होती है।

आज 10-30 का बुलावा आया, मैं गया और उनके संसद भवन के कार्यालय में पहला मुलाकाती था। वे शांत-स्निग्ध-सुमधुर-सी बैठी कोई कागज उलट रही थी, मैंने प्रणाम किया, उन्होंने नमस्कार कहा।

बातों की शुरुआत हुई, मेरी ओर से। मैंने कहा कि बसुमतारीजी ने मेरे

बारे में शायद आपसे यह कहा है कि मैंने बरुआजी के बारे में यह कहा था कि मैं उन्हें नहीं चाहता हूं—यह बिल्कुल गलत है। मुझे जो भी कहना होगा—सीधा आपसे कहूंगा, निर्भयतापूर्वक, इतनी तो सुविधा आपने हमे दी ही है।

इसी समय उनके पास अमेरिकी-राष्ट्रपति के चुनाव-रिपोर्ट चपरासी ने एक स्लिप पर लाकर दिया, वे मेरी ओर मुखातिब होकर बोलीं—कार्टर जीत रहे हैं। लेकिन बात यह है कि वहां जो भी काम होता है सचिवों के अनुसार।

मैंने हामी भरी कि हां आइजनहावर के समय डलेस और निक्सन के समय किसिंजर की ही चलती थी।

इस पर इन्दिराजी ने कहा कि मै जब निक्सन से बात करने गई थी तो पांच मिनट तो वे मुझ से बातें करते थे उसके बाद पाच-दस-मिनट किसिंजर की ओर देखकर यह कहते थे कि हेनरी, मैं ठीक कह रहा हूं या नही। इस पर मैंने प्रो० धर से कहा भी कि इससे तो अच्छा यही होता कि हम लोग किसिंजर से ही बातें कर लेते।

इस बात पर हम दोनों हस पड़े।

इसके बाद स्वयं इन्दिराजी ने कहना शुरू किया कि हम लोगो की आणविक उपलब्धि से कार्टर के कुछ सलाहकार प्रसन्न नही है। उनकी बातों से मैंने यही अन्दाजा किया कि कार्टर की जीत से भारत को कोई बहुत लाभ या इन्दिराजी को खुशी नही है।

अरुणाचल, मेघालय और नागालैण्ड में हिन्दी की स्थिति पर बातें हुईं। उन्होंने पूछने पर बताया कि वे वहां हिन्दी में बोलती हैं और लोग समझते है। मैंने कहा कि सविधान की आठवी सूची में अंग्रेजी को कभी स्थान नही मिलना चाहिए, नही तो राष्ट्र की एकता के लिए यह खतरा हो जायेगा।

गोहाटी-अधिवेशन में हम लोगों को क्या करना है—पूछने पर उन्होंने कहा कि अभी तो प्रस्तावों का मसविदा तैयार नहीं हुआ है।

अन्त मे मैंने दो बातें की—एक यह कि मैं पढ़ने-लिखने से सम्बन्ध रखने वाला सदस्य हू, अतः सरकारी और संस्थागत रूप मे मेरी उपयोगिता होनी चाहिए। दूसरी बात यह कि 'मुक्तकण्ठ' के लिए एक इण्टरव्यू चाहिए—वे इसके लिए मुखातिब दीखी।

जब भी प्रधानमंत्री से मिलता हूं—अपनापन, विश्वास और श्रद्धा का मिला-जुला रूप सामने आता है। चलते हुए मैंने पूछा बिहार मे क्या होगा, कोई परिवर्तन—बोलीं—बिल्कुल नहीं।

दिल्ली, 5 नवम्बर, 1976

आखिर संविधान संशोधन हो गया—जितने भी संशोधन हम सबों ने दिये थे, वापस लेने पड़े। विरोधी-दलों ने 'वाकआउट' किया था; अतः सारा मामला एकपक्षीय रहा। क्या करना था, मैं स्वयं सक्रिय रहा काफी हद से ज्यादा और करीब-करीब रोज बोलता रहा। और मुझे करना ही क्या था।

राम जाने इनका क्या असर इतिहास पर पड़ता है। मैं चुनाव टालने के पक्ष में कभी नहीं हूं।

गोहाटी, 20 नवम्बर, 1976

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक कल से शुरू है और आज युवक-कांग्रेस का सम्मेलन समाप्त हुआ। प्रधानमंत्री ने आखिरी भाषण किया। बहुत कुछ साफ हो गया उनके भाषण से। यह कि दिल्ली और यहां के बाद युवा-पीढ़ी के हाथो में भारत का भविष्य सुरक्षित है—यह मेरा दृढ विश्वास है।

गोहाटी में 90 प्रतिशत स्वागत-द्वारों और बैनरों पर संजय गांधी और अम्बिका सोनी छाये हुए थे, सम्मेलन भी उसी मंच और पण्डाल में हुआ जिसमें कांग्रेस का अधिवेशन होने वाला है। रेडियो-अखबार समाचारों में वही छा गये। नवजवानों का जलवा जरूर देखने मे आया, उनका उमंग, उत्साह और उनकी उपस्थिति।

सब के बाद कांग्रेसजन पर क्या बीत रहा है? जूठे पत्तलों पर भोजन के समान, कल से कांग्रेस की बैठक और हर किसी को ऐसा ही भान हुआ मानो कांग्रेस को धकेल कर युवा-कांग्रेस को लाया जा रहा है। जोर-जबरदस्ती और मर्यादा-भंग के साथ। पता नहीं क्या-क्या अभी होने वाला है इस देश में।

जो हो, कांग्रेस एक विशाल समुद्र है। जनसमूह जवाहरनगर में उसी प्रकार लहरा रहा है, जैसे सागर में ज्वार। एक महानगर बस जाता है तथा कई मेलों का एक मेला लग जाता है। सोनपुर का या देव का विशाल मेला।

दिल्ली, 14 दिसम्बर 1976

कभी-कभी विचित्र आनन्द आ जाता है संसदीय हिन्दी समिति की बैठक ट्रान्सपोर्ट और शिपिंग मिनिस्ट्री में थी—ढिल्लन साहब के साथ। बैठक

समाप्त होने के बाद ढिल्लों साहब ने यह कहा कि मेरे कमरे से क्या अच्छा दृश्य दिखाई देता है, आइये दिखायें। और वे बड़े उत्साह से दिखलाने लगे—खिड़की से ससद भवन, मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा—सब कुछ।

मैंने छूटते ही कहा—शाहजहां भी कैद के बाद इसी प्रकार अपनी खिड़की से ताजमहल देखा करता था।[1]

दिल्ली, 18 जनवरी, 1977

इसके पहले कुछ लिखने को है भी नहीं, जो लिखूं। शाम को भगवतीजी के यहा गया—गोस्वामी, धावेजी, चिन्तामणि पाणिग्रही, डा० बरुआ आदि बैठे थे—बाते चल रही थी कि 'रियूमर' है कि लोकसभा भग होने को है, वहा से मैं डा० कर्ण सिंह के यहां गया—हसते हुए मैंने कहा कि हर जगह इस प्रकार की चर्चा चल रही है। वे ठहाका लगाकर बोले—चर्चा ही नही है, लोकसभा भग हो गया, 8.30 बजे प्रधानमंत्री का रेडियो भाषण सुन लो, 16 मार्च को चुनाव है, जाओ तैयारी करो और जीतकर आओ।

इतने आकस्मिक ढग से लोकसभा भग—हर कोई सन्न रह गया। मैं स्वयं इस पक्ष में था कि चुनाव हो, लेकिन दहशत तो रहती ही है।

9 फरवरी, 1977

विचित्र हैं हम; विचित्र हैं परिस्थितियां और विचित्र है राजनीति का दाव-पेंच भी। राष्ट्रपति का शव एक ओर पड़ा है दफनाने के लिए, 13 दिनो का राजकीय शोक घोषित है और इधर हम सभी 1 सफदरजंग रोड में बैठकर टिकटों का बंटवारा कर रहे है।

राजनीति का यह दाव-पेंच कही भी जीने-मरने नहीं देता। हमारी आस्थाए, हमारे मूल्य और हम स्वयं कभी-कभी दिशा-विहीन हो जाते हैं।

---

[1]कुछ दिनों पहले ही डा० गुरदयाल सिंह ढिल्लों को लोकसभा के अध्यक्ष पद से हटाकर मंत्रिमंडल में शामिल किया गया था, कारण उनकी स्वतंत्र नीति एवं संचालन से प्रधानमंत्री खुश नहीं थी।

12 फरवरी, 1977

कितनी व्यस्तताओं के बीच से गुजरना पड़ा है। 2 से लेकर 12 तक कांग्रेस केन्द्रीय चुनाव समिति की बैठक, पूरे भारत के लोगों का जमाव, सवेरे से शाम तक ही नहीं, रात 2 बजे तक चैन नहीं।

लेकिन इस बीच इतिहास के बीच से गुजरा। देश कहां से कहां चला गया। राजनीति एक करवट से दूसरे करवट बैठ गई, कितनी बातें 2 से लेकर 12 तक घटी उनका साक्षी रहा। प्रधानमंत्री से बातें करने का और नजदीक रहने का, बड़े नेताओं को परखने का, उनकी दिली मनोवृत्तियों को समझने का मौका मिला।

2 को जगजीवन बाबू के त्यागपत्र के बाद कई लोग जो डैना विहीन हो गये थे, उन्हें 'पर' आ गया। भयानक रूप से 'प्रेशर टैक्टिक्स' चल रहा है। इस खूबसूरती और होशियारी से कि कोई समझ नहीं पाये। मेरी समझ में कांग्रेस अध्यक्ष बरुआ, सिद्धार्थशंकर राय, रजनी पटेल और बहुत गहराई के साथ चव्हाणजी, सरदार साहब, ब्रह्मानन्द रेड्डी भी लगे है। लेकिन सब एक नाव मे सवार हैं तथा पतवार इन्दिराजी के ही हाथ मे है।

बरुआजी चाहते हैं कि हर जगह से मिला-जुलाकर 100 उनके लोग पार्लियामेण्ट में आ जायें, जिससे उनका वर्चस्व बन जाये। —यह बात प्रधानमंत्री ने बड़े ही विश्वास के साथ मुझे बताई।

बिहार की लिस्ट में भी बरुआजी का यही उद्देश्य है, इसीलिए अधिकतर, एम० एल० ए०, एम० एल० सी०, भूतपूर्व मंत्री और मुख्यमंत्रियों को स्थान दिया गया है। मेरी यह भी आशंका है कि ये भूतपूर्व मुख्यमंत्रीगण यहां आकर अपनी लॉबी न शुरू कर दें, मंत्री-परिषद् के उम्मीदवार न हो जायें तथा 'प्रेशर-टैक्टिक्स' न शुरू करा दें। मैंने जब अपनी यह आशंका इन्दिराजी को बताई तो वे बोलीं—क्या किया जाये, कांग्रेस-अध्यक्ष तो कहते हैं कि बिहार की लिस्ट देखने की भी जरूरत नहीं है, दो मिनटों में हम पास कर देंगे।

मैंने कहा कि आप स्वयं जरूर देख लें।

तो प्रधानमंत्री ने कहा कि आप जरा सरदारजी आदि से भी बातें कर लें।

मैंने सरदारजी से बात जरूर की, लेकिन लिस्ट में कूड़ा-करकट भरा हुआ था—उसी को करीब-करीब जगन्नाथजी ने पास करवा लिया—बरुआजी

की मदद से। केशरीजी करीब-करीब चुप रहे, यों पीछे उन्होंने बहुत बातें कही थीं। औरंगाबाद-गया और कोडरमा जैसे मामलों पर पहले मुझ से बातचीत न की गई तथा बैठक में मैंने हर मुद्दों पर बहस जरूर की, लेकिन मुझे लाभ बहुत कुछ नहीं मिला।

मैंने अपने मन को संतोष दिलाया कि जो हो मैं तो कोई जवाबदेह हूं नहीं हालांकि मैंने कई जगहों पर अपनी राय जाहिर कर दी।

सिद्धार्थ बाबू ने एक स्लिप पर मीटिंग में ही मुझे लिखकर दिया—300 और 325 के बीच में सीटें मिलेंगी।

चतरा क्षेत्र, 22 फरवरी, 1977

इस बार किसी उम्मीदवार के खिलाफ नहीं; बल्कि हवा के विरुद्ध लड़ना पड़ रहा है। भयानक कांग्रेस-विरोधी हवा है—10 व्यक्तियों से बातचीत करने पर मुश्किल से 1-2 पक्ष में, नहीं तो विपक्ष में ही बातें, ताने और रोष-असंतोष सुनने को मिलता है। यही हाल रहा तो पूरे बिहार में 10-20 सीटें मुश्किल से मिलेंगी।

मैं प्रतिकूल हवा को अनुकूल बनाने के लिए प्रयास कर रहा हूं। व्यक्तिगत रूप से लोगों को मेरे प्रति सहानुभूति और श्रद्धा है। जीत होगी तो मेरी व्यक्तिगत।

नवजवान वर्ग क्रोधित है, किसान हताश है, व्यापारी मौके की तलाश में और बुद्धिजीवी भयानक आलोचक। 1971 में जो हवा थी, उसके ठीक विपरीत आज हवा का रुख है।

3 मार्च, 1977

सवेरे-सवेरे कानन ने फोन से कहा कि······ने रिजाइन कर दिया कांग्रेस से और कांग्रेस फार डेमोक्रेसी में शामिल हो गईं। इस समाचार के बाद मेरी क्या स्थिति हुई यह कोई अन्दाज नहीं कर सकता है—स्वयं मैं भी नहीं कर सकता। दिन भर आंखों में आंसू भरे रहे और कुछ भी नहीं सूझता था। किसी भी मीटिंग में मैं क्या बोल गया—मैं स्वयं नहीं जानता।

उन्होंने ऐसा क्यों किया। दिन भर मैं बस एक ही सवाल पूछता रहा—

आपने यह क्या कर दिया ? क्यों किया ? क्या मेरे लिए इन्तजार नही कर सकती थी ?

मैं 12 बजे रात में कमरा बन्द कर रोते हुए यह सब लिख रहा हूं।······ने इस प्रकार मुझे छोड़ दिया—आखिर क्यों ? उन्होंने कई बार मुझ से कहा था—मैं तुम्हारी पार्टी में रहने लायक नहीं हूं। —लेकिन मैंने भी उन्हें कहा था कि बिना मुझ से बात किए आप कभी भी कोई निर्णय कभी नही लेंगी।

इस समाचार से मैं कितना टूट गया हूं—किसे बताऊं ? मेरे खिलाफ 'कांग्रेस फार डेमोक्रेसी' के शुकदेव वर्मा खड़े हैं। मैंने···· को बहुत करुण पत्र भेजा है और उसमें लिखा है कि मैं भगवान से मना रहा हूं कि मैं हार जाऊं और वे जीत जाये, जिससे आपका हाथ मजबूत हो।

वास्तव मे दिल्ली के प्रति अब वितृष्णा हो गई है। कैसे वहा मुह दिखलाऊंगा। रह-रहकर एक ही बात घूमती रहती है—आपने यह क्या किया ?

अपने चुनाव के मध्य भाग में हूं और भयानक लड़ाई के दौरान सारी शक्ति और उत्साह खो बैठा हूं। जीवन में संभवतः ऐसा धक्का शायद ही कभी लगे।

ये यदि पार्लियामेंट की मेम्बरी से इस्तीफा दे देतीं तो मुझे उतना बुरा नही लगता, जितना बुरा इस दल-त्याग से मुझे लगा है। बार-बार उन्होंने मुझ से कहा था कि इस गर्दिश में इंदिराजी का साथ नही छोड़ूंगी। मुझे उनके व्यक्तित्व और वक्तव्य में गहरी आस्था है, लेकिन यह उन्होंने क्या किया ? वे तो कहती थी कि जब कोई नही रहेगा इन्दिराजी के पास तब मैं खड़ी रहूंगी। फिर यह निर्णय कैसा ?

मैं वास्तव में कांप गया हूं।······आपने यह क्या किया ? मेरी समझ मे यह बिल्कुल अच्छा नही किया। और सब के बावजूद दूध की मक्खी के समान आपने मुझे निकाल कर फेक दिया। अब मैं कहा जाऊ—क्या करूं ? बात मेरी समझ में नही आती है।

रह-रहकर मेरे सामने एक वृत्त बन गया है, जिसमें एक ही प्रश्न बराबर कौंधता रहता है कि आपने यह क्या किया ?

हर दृष्टि से मुझे यह उचित नही जंचता। दुनिया आज क्या कहेगी ? यही तो कि मझदार में जब नांव थी तब आपने उसे छोड़ दिया, जो बैठे थे

उन्हें डूबने के लिए। और वहां जहां आप गई हैं—क्या मिलेगा आपको, कैसे रह पायेंगी आप वहां और यह भयानक निर्णय आप ने क्यों लिया ? क्रोध में यह निर्णय लिया या लोभ में या मानसिक अन्तर्द्वन्द्व में। आखिर क्यों ? क्या आपको मेरे समान किसी निरीह व्यक्ति की हत्या करते समय कोई दया नहीं आई। और लोग मुझ से पूछेंगे तो मैं क्या जवाब दूंगा ? कितनी आस्था और विश्वास के साथ मैंने आपके प्रति श्रद्धा किया है, अपनापन रखा है, मां-बाप-बहन सबों की सम्मिलित मूर्ति आपको माना है और आपने सबों का गला क्षणिक उन्माद में घोट दिया। चाहे आपने मानसिक अन्तर्द्वन्द्व में यह काम किया हो या किसी के उकसाने पर किया हो—यह आपने अच्छा नहीं किया।

चतरा, 8 मार्च, 1977

विचित्र लहर है, हवा ही नहीं है, ब्यार या आंधी है। गांवों में दीवारों पर भी जनता पार्टी और लोकनायक का ही नाम है। हर जगह जनता पार्टी मौजूद है। जो भी वोट उन्हें मिल रहा है कांग्रेस से नाराजगी का प्रतीक है। लोगों में इन्दिराजी के प्रति भारी आलोचना है और उसके तह में संजय गांधी हैं। लोगों में रोष और असंतोष है और वे सब के सब लगता है प्रतिबद्ध हैं कांग्रेस से बदला लेने को।

मेरा पहले से ही अनुमान था कि जेलों से जब इनके नेता बाहर आयेंगे तब यही माहौल हो जायेगा। मेरे प्रति जो भी सहयोग-सद्भाव और अपनापन है, वह व्यक्तिगत अधिक है।

मैं टूटे दिल से इस अभियान में लगा हूं। काश······मेरे दर्द को समझ पाती। मैं उनकी दृष्टि में जो भी रहूं, लेकिन अपनी दृष्टि में एक निर्जीव पुतला रहूंगा। शायद जीवन में इतना बड़ा धक्का न तो पहले कभी लगा था और न आगे लगेगा।

मैं चुनाव लड़ रहा हूं, जीत जाऊं या हार जाऊं—अब क्या फर्क पड़ता है।

गया, 10 मार्च, 1977

बहुत सारे अनुभव होते हैं जीवन में और वह भी चुनाव के समय। जिन का रात-दिन भला किया, ऐसे लोगों को देखा है कि दिन-दहाड़े मुझसे अलग।

जिनका कभी कुछ नहीं किया; ऐसे लोगों को पाया है कि तन-मन-धन से मेरे साथ।

इस बार विचित्र स्थिति है। 1971 में इन्दिराजी की आंधी थी, जब हम चुन कर गये थे, इस बार कांग्रेस के खिलाफ तूफान है। देखें इसमें कितने टिक पाते है और कितने उखड़ जाते हैं।

जो स्थिति है वह भयावह है। कांग्रेस को बिहार में मुश्किल से 15-20 सीटे मिल पायेंगी, ऐसा मेरा अनुमान है। मैं स्वयं अपने बारे में आश्वस्त नही हूं। क्या होगा—राम जाने।

कांग्रेस की पूंजी इस समय सच कहें तो दो हैं—मुसलमान और हरिजन। जगजीवन बाबू के चले जाने के बाद भी हरिजनो का 75 प्रतिशत वर्ग ऐसा है जो कांग्रेस का साथ दे रहा है — लेकिन देहातों में उन सबो को लोग वोट कहां देने देते हैं।

गया, 16 मार्च, 1977

आज मेरा चुनाव संपन्न हुआ। जिस तनाव और अशातिमय वातावरण में यह चुनाव हुआ उसकी हम कल्पना भी नही कर सकते थे। मुझे पहले से ही यह शंका थी या भय था कि कही भयकर उत्पात न हो जाये। ऐसा ही हो गया—दो व्यक्तियों की मृत्यु हुई, चार-छः जगह गोलिया चली एव आठ-दस जगहों पर मारपीट की घटनाएं भी घटी। दो महीने का यह नाटक समाप्त हुआ, भारी तनावों के साथ। मैं इस तरह के वातावरण को कभी पसन्द नही करता।

मेरे मित्रों ने मेरा बहुत-बहुत साथ दिया। हर जगह से भारी सख्या में लोग आये और उन सबों ने अपनी सामर्थ्य के अनुसार काम किया।

कामता सेवा केन्द्र, 18 मार्च, 1977

कामता सेवा केन्द्र में अनायास आ गया, साथ में कानन और रश्मि भी है। इतना थका और टूटा अनुभव कर रहा हूं कि वर्णन नही कर सकता। पिछले दो महीनों की दौड़-धूप ने विचित्र प्रकार से रोम-रोम को मसल कर रख दिया है। बड़ी मानसिक अशांति और द्वन्द्व है।

कल 'रिजल्ट' है — जीत भी सकता हूं, हार भी सकता हूं। जीत गया

तो एक ढंग-ढर्रा जो चलता है, हार गया तो पुरानी जिन्दगी की एक नई शुरूग्रात होगी। दर असल मैं तो उसी दिन हार गया था जिस दिन'''छोड़कर चली गई थी। मैं टूटे दिल से एक औपचारिक लड़ाई लड़ रहा था।

गया, 20 मार्च, 1977

शाम होते-होते सारी तस्वीर साफ हो गई। मैं हार गया, बिहार की सारी सीटें हार गये और रात होते-होते यह समाचार भी आ गया कि रायबरेली से प्रधानमंत्री भी हार गईं तथा इतना ही नहीं अमेठी में श्री संजय गांधी के साथ ही उत्तर प्रदेश की 85 सीटें हम खो बैठे।

आज तक मैं यही समझता था कि मैं जीत रहा हूं और अब सब स्पष्ट है, मैं हार गया। जो भी आता है मातमपुरसी करता है, जो भी आता है तसल्ली देने की कोशिश करता है। लेकिन मैं इतने कमजोर दिल का नहीं हूं। मैंने अपनी हार को स्वीकार कर लिया है।

कुछ दस्तावेज

आनन्द भवन,
इलाहाबाद
22-8-1934

'प्रिय प्रभा,

तुम्हारा खत आया। यह जानकर कि तुम अच्छी हो, खुशी हुई। जयप्रकाश मुझ से मिलने यहां आये थे और तीन दिन रहे, फिर बनारस चले गये। वहां से पटना जाने वाले थे।

कमला की तबियत तीन-चार दिन से संभली हुई है। दिल की तकलीफ नहीं है और दर्द भी कम होता है। कुछ बुखार रोज आ जाता है और कमजोरी बहुत है। उम्मीद है कि अब ताकत बढ़ेगी। लेकिन अरसे तक पलंग पर पड़ा रहना पड़ेगा।

इन्दु यहां आ गई थी और अभी तक है। शायद तीन-चार दिन में शांति-निकेतन वापिस जावे। बेटी* बम्बई वापस गयी।

प्यार,

तुम्हारा भाई
जवाहरलाल'

*जवाहरलालजी की छोटी बहन कृष्णा।

(जयप्रकाशजी की पत्नी श्रीमती प्रभावतीजी के नाम जवाहरलालजी का एक ऐतिहासिक पत्र।)

'यदि इन्दिराजी ने पहले मुझ से बात कर ली होती और आंदोलन को कुचला नहीं गया होता तो देश में केवल राजनीतिक ही नहीं बल्कि सामाजिक तथा अन्य क्षेत्रों में भी अच्छे परिवर्तन होते।'

श्री जयप्रकाश नारायण
—नवभारत टाइम्स, 30 सितम्बर, 1977

यहां कुछ ऐसे ऐतिहासिक दस्तावेज़ प्रस्तुत किए जा रहे हैं, जिन्हें धरोहर के रूप में हमने अब तक संभालकर रखा और अब यह आवश्यक मानता हूं कि दूसरों की नजर भी इन पर पड़े।

पहला पत्र है श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र का, जो उन्होंने मुझे 31-7-1974 को लिखा था, जबकि जे० पी० के आन्दोलन की शुरुआत हो रही थी और

D. P. Mishra

UTTARAYANA
JABALPUR

Dated 31/7/74

प्रिय श्री शंकर दयाल सिंह जी,

आपका 25 ता० का कृपा पत्र कल प्राप्त हुआ। आजकल अपनी ओर से मैं मौन रहना ही पसंद करता हूं। कभी जब लोग मिलते हैं और मुंह से कुछ निकल जाता है तो बात का बतगड़ बन जाता है। परन्तु आपको मैं उन थोड़े से लोगों में मानता हूं जिन्हें देश की भी चिन्ता है। इसीलिए कुछ लिख रहा हूं।

यदि आप लुइफिशर द्वारा लिखी हुई गांधी जी की जीवनी के आखरी हिस्से में The Future of India शीर्षक छोटा सा परिच्छेद पढ़ें तो आपको जयप्रकाश जी के आन्दोलन के उद्गम का आभास मिल जावेगा। यह बात अलग है कि जयप्रकाश जी गांधी जी के विचार को कार्य रूप में परिणत करने में समर्थ हैं या नहीं।

आपने संसद सदस्यों के बिहार भेजे जाने का जो सुझाव किया है उसका अच्छा परिणाम तभी निकल सकता है जब कि भेजे गये व्यक्ति न केवल समझने की शक्ति रखते हों बल्कि अपनी बात कहने का साहस भी रखते हों।

यह सभी के द्वारा स्वीकृत बात है कि देश के लोग आर्थिक दृष्टि से व्यथित हैं और असंतोष दिन-प्रति-दिन बढ़ रहा है। जयप्रकाश जी उनकी आवाज़ बनकर सामने आ गये हैं। मैं नहीं मानता कि यह आन्दोलन बिहार की सीमा में बंद रहेगा। जयप्रकाश जी के विरुद्ध प्रचार करने, आन्दोलनकारियों का दमन करने या सर्वोदय कार्यकर्ताओं में फूट डालने से यह आन्दोलन नहीं रुकेगा। दमन तो अहिंसात्मक आन्दोलन को प्रज्वलित ही करता है। जयप्रकाश जी गांधी नहीं हैं और इंदिरा जी की सरकार अंग्रेज़ी सरकार नहीं है, फिर भी यदि स्थिति बिगड़ती ही गई तो लोग तुलना करने से नहीं हिचकेंगे।

कांग्रेस का कौन नेता है जो अपनी छाती पर हाथ रखकर यह कह सकता है कि भूलें नहीं हुई है और बुराइयों को प्रश्रय नहीं मिला है। इसी प्रकार जयप्रकाश जी को भी सोचना चाहिए कि क्या वे अपने आन्दोलन द्वारा कम्युनिस्टों के हाथों में नहीं खेल रहे हैं। मेरा मतलब केवल मार्क्स-वादियों से ही नहीं है। पिछले कई महीनों से प्रधान मंत्री सी०पी०आइ वालों से कुछ दूर हो रही थीं। अब जयप्रकाश जी उन्हें बाध्य कर रहे है कि वे फिर उनका सहारा लें। सभी जानते है कि जयप्रकाश जी कम्युनिस्टो के घोर विरोधी रहे हैं। अब उनके आन्दोलन से सबसे अधिक ये ही लाभान्वित होंगें?

आवश्यकता प्रधानमंत्री और जयप्रकाश में झगड़ा बढाने की नहीं, प्रत्युत दोनों को एक साथ बिठाकर झगड़ा निपटाने की है। हमने जो भूलें की हैं उन्हें हमें दूर करने के लिए तैयार रहना चाहिए और जयप्रकाश जी को भी यह सोचना चाहिए कि बुराइयों का विरोध करते करते कहीं अराजकता न फैल जावे जिसे फिर वे भी न संभाल सकें। दोनों ओर आत्म-निरीक्षण की आवश्यकता है। परन्तु इतिहास इस बात का साक्षी है कि नेता, चाहे वह सत्ता-धारी हो और चाहे जनबल से बली हो, आत्म-निरीक्षण की प्रवृत्ति नहीं रखता। ऐसी हालत में नेता के बदले परिस्थितियाँ भविष्य का निर्माण करती हैं।

हम थोड़े ही लोग अब बचे हैं जिन्होंने देश के उज्ज्वल भविष्य के स्वप्न आधी शताब्दी पूर्व देखे थे। हम लोग भी व्यथित हैं, परन्तु विवशता का अनुभव करते हैं। साथ ही यह भी सोचते हैं कि शायद हमारी चिन्ता अनावश्यक है। स्वराज्य बिना क्रान्ति हुए मिल गया था। क्या वह क्रान्ति अब होने जा रही है? यदि ऐसा है तो हम वयोवृद्ध लोग परमेश्वर से यही प्रार्थना कर सकते हैं कि क्रान्ति का अन्तिम परिणाम देश के लिए अच्छा हो।

विश्वास है कि आप स्वस्थ एवं प्रसन्न हैं।

भवदीय,

द्वारका प्रसाद मिश्र

कोई भी विश्वासपूर्वक यह नहीं कह सकता था कि इसकी परिणति क्या होगी। ऐसे समय में मिश्रजी ने अपनी दूरदर्शी आखों से भविष्य को निहारा था और आज जब इस पत्र को मैं पढ़ता हू तो यही लगता है, मानो तीन-चार वर्षो पहले कही उनकी बाते आगे चलकर अक्षरशः सत्य निकली।

जे० पी० भावुक व्यक्ति हैं और छोटी-छोटी बातो से भी उन्हें क्लेश पहुंचता है और उनका दिल टूटता है। श्री श्रीप्रकाशजी की मृत्यु के बाद वे जब 'समाचार-भारती' के अध्यक्ष चुने गये, तो कुछ दिनों बाद उन्होंने प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी को 21-8-1972 को एक पत्र लिखा, जिसमे 'समाचार-भारती' की स्थिति, उसे मदद करने की आवश्यकता और मिलकर बात करने का समय मांगा। इन्दिराजी ने जयप्रकाशजी के इस पत्र का उत्तर 16 सितम्बर, 1972 को दिया और मिलने का समय तो नही ही दिया, साथ ही उनकी कुछ उपेक्षा भी की और यह भी लिख दिया कि इस सम्बन्ध में तत्कालीन सूचना-प्रसारण मंत्री श्री गुजराल से मिले। जयप्रकाशजी ने इन्दिराजी के इस पत्र का उत्तर 3-10-1972 को दिया और कई बाते साफ की। साथ ही जयप्रकाशजी ने श्री इन्द्रकुमार गुजराल को 3-10-1972 को एक पत्र दिया, जिसका उत्तर श्री गुजराल की ओर से 20-10-1972 को आया। इन छोटी-छोटी बातो का प्रभाव श्री जे० पी० के मन-मस्तिष्क पर जरूर पड़ा होगा और उनके मन में ये छोटी बातें घाव करती जा रही थी।

21-8-1972

प्रिय इन्दिराजी,

मैं यह पत्र आपको 'समाचार-भारती' के बारे मे कुछ बाते कहने के लिए लिख रहा हूँ। शायद आप जानती ही होंगी कि शुरू से ही मैं इस संस्था से सम्बद्ध रहा हूँ। श्री प्रकाशजी के निधन के बाद संचालक मण्डल के अन्य साथियों ने मुझे बोर्ड आफ डायरेक्टर्स का चेयरमैन बना दिया और तब से मैं उस हैसियत से इस संस्था का काम देख रहा हूँ।

यह संस्था एक बड़े उद्देश्य को सामने रखकर काम कर रही है लेकिन मुझे और मेरे अन्य साथियों को ऐसा महसूस होता है कि केन्द्र सरकार का जितना सहयोग और समर्थन इसे मिलना चाहिए, उतना नहीं मिल रहा है। इसी वजह से इसके मार्ग में कुछ बाधाएं आ रही हैं और यह संस्था तेजी से प्रगति नही कर पा रही है। शायद कुछ गलत फहमिया भी इस संस्था के बारे में कुछ अधिकारियों के मन में है जिनके कारण वे खुलकर इसकी मदद नही करते।

मै यह पत्र इसीलिए लिख रहा हूँ ताकि अगर कुछ गलत फहमियां हों तो वे दूर हो जाएं और इस सस्था को केन्द्र सरकार की पूरी सहायता मिलने लगे। अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर

मैं यह कह सकता हूँ कि इस संस्था को चलाने वाले लोग इसे एक प्रगतिशील राष्ट्रीय संस्था के रूप में विकसित करना चाहते हैजो भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता को, विशेष रूप से छोटे और मध्यम श्रेणी के समाचार पत्रों को, बढ़ावा दे सके। शुरू में इस संस्था को बहुत घाटा हुआ और इसके इन्तजाम में भी कई खामियां थीं, परन्तु इधर दो तीन वर्षो से काम में वडा सुधार हुआ है। अब यह संस्था ऐसी स्थिति में है कि इसे आपका समर्थन मिले तो यह अपने पांवों पर खड़ी हो सकती है और देश की पत्रकारिता में ऊंचा स्थान पा सकती है।

मैं इन दिनों दिल्ली मे ही हूं और एक सितम्वर तक यहा रहूँगा। उसके वाद 16 सितम्वर को मुझे फिर दिल्ली आना है और 16 से 20 तारीख तक यहा रहूँगा। इन दिनों में किसी समय आपसे मिलना हो सके तो मै समाचार-भारती के वारे में कुछ विस्तार से आपसे वात करना चाहता हूँ। हमने श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र को समाचार-भारती परिषद का अध्यक्ष बनाने का निर्णय किया है। वे शुरू से ही इस संस्था में दिलचस्पी लेते रहे है परन्तु अब हमारी कोशिश है कि वे औपचारिक रूप से इसकी देख-रेख में हिस्सा लेने लगें। लोकसभा के सदस्य श्री शंकरदयाल सिह और श्री चन्दूलाल चन्द्राकर भी अब हमारे संचालक-मण्डल के सदस्य हैं।

इस वक्त समाचार-भारती की मदद के लिए दो काम सूचना और प्रसारण मंत्रालय कर सकता है। एक तो रेडियो से इस संस्था को समाचारों के लिए अधिक शुल्क मिलना चाहिए। दूसरे, इस संस्था को 5 लाख रुपए का ऋण देने का आपने निर्णय लिया हुआ है, परन्तु इसमें से अभी डेढ़ लाख रुपया ही दिया गया है। यदि वाकी ऋण भी दे दिया जाए तो इस संस्था को अपना काम आगे वढ़ाने में वड़ी सहायता मिल सकती है।

आपसे मिलने पर और वातें होंगी।

शुभकामनाओं सहित,

भवदीय,

ह० जयप्रकाश नारायण

प्रधान मंत्री

नं० 244-पी०एम०ओ०/72
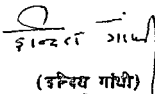
नई दिल्ली - 11
16 सितम्बर, 1972

प्रिय जय प्रकाश जी,

कुछ दिन पहले आपने 'समाचार भारती' के बारे में लिखा था । अच्छा होता कि आप श्री इन्द्र कुमार गुजराल के साथ इस विषय पर विचार-विमर्श करते । इस एजेन्सी के बारे में पहले मैंने जो कुछ सुना था वह बहुत भरोसे की बात नहीं थी, लेकिन श्री गुजराल आपको यह बताने में समर्थ होंगे कि सरकार इस संस्था के लिए क्या कर सकती है ।

भवदीया,

(इन्दिरा गांधी)

श्री जय प्रकाश नारायण,
कदम कुआं,
पटना - 3 (बिहार)

इतिहास का चक्र भी खूब होता है। जिन जे० पी० को इन्दिराजी ने मिलने का समय नहीं दिया, उन्हीं से मिलने वे विगत 14-8-1977 को पटना स्थित उनके कदमकुंआ स्थित मकान पर पहुंची और आशीर्वाद प्राप्त किया ।

जयप्रकाश नारायण
ग्यारी बना
कदमकुआँ, पटना ३
फ़ोन २२३५६

सच्ची प्रतिलिपि

पटना

दिनांक ३१।१०।१९७

प्रिय इन्दिरा जी,

समाचार भारती के संबंध में मेरे पत्र का जो उत्तर आ
भेजा है, वह मिला । अनेक धन्यवाद ।

मुझे तो मालूम नहीं कि समाचार भारती में भारो
कौन- सी बात नहीं है । जहां - तक मुझे स्मरण है , सरकार की
तरफ से ऐसा हमसे पहले नहीं कहा गया था । फिर भी आपके लि
अनुसार मुझे इन्द्र कुमार जी गुजराल से मिलकर बड़ी खुशी होगी ।
एक वर्ष पूर्व लिये गये अपने निर्णय के अनुसार आगामी ११ अक्तूब
से मैं एक वर्ष तक सार्वजनिक कार्यों से अवकाश ले रहा हूं । इस अ
में किसी भी सार्वजनिक कार्य में भाग नहीं लूंगा । तीन अपवाद मैं
रखे हैं , जिनमें एक मुसहरी का कार्य भी है । बाकी सब कार्यों से
अलग हो जाऊंगा । कुछ पढ़ने - लिखने का काम अवश्य करूंगा , औ
समय - समय पर कुछ प्रकाशित भी करता रहूंगा । जिनको मुझसे मुल
मिलना होगा या परामर्श करना होगा वे यदि चाहेंगे तो जहां मैं
रहूंगा , वहां आकर मिल सकेंगे । यह सब मैं इसलिए लिख रहा हूं
आपको मेरे इस निर्णय की भी जानकारी मिले और श्री गुजराल
में क्यों नहीं मिल पाऊंगा , इसका भी कारण आपको ज्ञात रहे
गुजराल साहब को भी पत्र लिख रहा हू और उनसे निवेदन कर रहा
कि मेरी जगह पर समाचार भारती के अन्य पदाधिकारी उनसे मि
आशा है , उनके लिए वे यथेष्ट समय निकाल सकेंगे ।

आप स्वस्थ और प्रसन्न होंगी ।

आपका सस्नेह,
जयप्रकाश
(जयप्रकाश नारा

श्रीमती इन्दिरा गांधी,
प्रधान मंत्री ,
नयी दिल्ली - ११

सच्ची प्रतिलिपि　　　　पटना

दिनांक ३।१०।१९७२

प्रिय इन्द्रकुमार जी,

समाचार भारती के संबंध में एक पत्र मैंने इन्दिराजी को कुछ सप्ताह पहले भेजा था । उसका जो उत्तर आया है, उसकी प्रतिलिपि संलग्न प्रेषित है । मुझे इस संबंध में आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता होती । परन्तु आगामी ११ अक्तूबर ७२ से एक वर्ष के लिए मैं सार्वजनिक कार्यों से अवकाश ले रहा हूं । इस अर्से में सिर्फ लिखने-पढ़ने का ही काम करूंगा । ऐसी स्थिति में मुझे खेद है कि मैं आपसे दिल्ली में नहीं मिल सकूंगा । परन्तु समाचार भारती की ओर से उसके कुछ पदाधिकारी आपकी सुविधा के अनुसार आपसे मिलेंगे । आशा है, उनके लिए आप यथेष्ट समय निकाल सकेंगे ।

आप कुशलपूर्वक होंगे ।

आपका सस्नेह,
जयप्रकाश
(जयप्रकाश नारायण)

श्री इन्द्रकुमार गुजराल,
सूचना एवं प्रसारण मंत्री,
भारत सरकार, नयी दिल्ली ।

No. MSIB/72/1807

राज्य-मंत्री
सूचना और प्रसारण
भारत
MINISTER OF STATE
INFORMATION & BROADCASTING
INDIA

नई दिल्ली

अक्तूबर 20, 1972

आदरणीय श्री जयप्रकाश नारायण जी,

आपके 3 अक्तूबर के पत्र के लिए धन्यवाद। मैं 23 अक्तूबर को युनेस्को कान्फ्रेन्स के लिए विदेश जा रहा हूँ और नवम्बर के प्रथम सप्ताह में भारत वापस आऊंगा। मेरे भारत आने पर समाचार भारती के पदाधिकारी समय निश्चित करके मुझे मिल सकते हैं।

सादर,

भवदीय,

(इन्द्र कुमार गुजराल)

श्री जयप्रकाश नारायण,
कदमकुआं,
पटना-3 (बिहार)

जयप्रकाश नारायण
स्थायी पता :
कदमकुआ, पटना-३
फोन : ५१२३६

पटना
२५ अक्टूबर, ७३

प्रिय शंकरदयालजी,

आपके भेजे हुए समाचार भारती विषयक कागजात प्राप्त हुए। अनेक धन्यवाद!

दिल्ली में गंगा बाबू से मिलकर गुजराल साहब से जो बातें हुईं उनकी जानकारी उन्हें दे दीजियेगा।

समाचार भारती की अगली सामान्य बैठक में मेरा इस्तीफा जरूर मंजूर करा दीजियेगा, और यदि गंगा बाबू स्वीकार करें तो आपलोग उन्हें ही अध्यक्ष चुन लीजियेगा।

शुभकामनाओं के साथ,

आपका सस्नेह
जयप्रकाश
(जयप्रकाश नारायण)

श्री शंकरदयाल सिंह,
संसद सदस्य,
नई दिल्ली।

समाचार-भारती संबंधी सरकार की उपेक्षा से जे० पी० इतने खिन्न और दुखी हुए कि कई बार उन्होंने अध्यक्ष पद से अपना त्यागपत्र प्रेषित किया और हम लोगों की प्रार्थना पर रहे, लेकिन अंत में 25 अक्तूबर, 1973 को उन्होंने मुझे पत्र लिखकर यह आग्रह किया कि उनका त्यागपत्र अवश्य स्वीकृत करवा दिया जाये और लाचार होकर हम लोगों को उनका इस्तीफा स्वीकार करना पड़ा।

१८ जुलाई, १९७७

प्रिय भाई,

आपको तार मिल गया होगा । आपकी डायरी का यह अंश १५ अगस्त के विशेषांक में सम्मानपूर्वक प्रकाशित हो रहा है । इस बार उस अंक में हम तीन कांग्रेस के वर्तमान और भूतपूर्व सदस्यों की डायरी के अंश दे रहे हैं । आपके श्रीमती सुमित्रा कुलकर्णी के और चंद्रशेखर के । इसके अतिरिक्त भूतपूर्व राज्य मंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह की कविताएं भी उस अंक में जा रही हैं ।

धर्मयुग के एकतरफा होने की बात उठती ही नहीं । हमारी प्रतिबद्धता किसी भी राजनीतिक दल या व्यक्ति से नहीं है । कुछ प्रजातांत्रिक मूल्य हैं जिनका निर्वाह होना ही चाहिए यह हमारा विचार है । कम्युनिस्ट पार्टी या कांग्रेस पार्टी या कोई अन्य पार्टी यदि उन मूल्यों का दमन करती है तभी हम उसकी आलोचना करना अपना कर्तव्य समझते हैं । जनता पार्टी ने भी टिकटों के चुनाव आदि में जहां उन मूल्यों का उल्लंघन किया, हमने उसके बारे में बहुत ही सख्त टिप्पणी दी । लेकिन इसके लिए हम या आप, कोई भी क्या कर सकते हैं कि आपातकाल के दौरान इस देश में जो कुछ हुआ वह केवल प्रजातांत्रिक मूल्य का उल्लंघन नहीं था, वह अमानुषिकता थी और शायद गोरी और नादिर शाह के बाद पहली बार इस देश के इतिहास में इतने व्यापक पैमाने पर भयंकर अन्याय और अत्याचार हुआ । उसके प्रति केवल हम लोग जो निर्दलीय हैं वे ही विक्षुब्ध नहीं हैं, मैं खुद जानता हूं कि आप तथा आपकी तरह अन्य तमाम लोग जो उस

के पीछे मानवीयता को नहीं भुला बैठे थे, वे कांग्रेस दल में होने के नाते चाहे चुप बैठे हों लेकिन उनके मन में भी जो कुछ हुआ है उसके प्रति क्षोभ और ग्लानि है। यदि कांग्रेस के अन्दरूनी संगठन में सचमुच प्रजातांत्रिक भावना होती तो शायद आप लोग भी उतने ही बलपूर्वक इन अन्यायों और अत्याचारों का विरोध करते जितना अन्य लोग कर रहे हैं।

इंदिरा जी के प्रति आपकी ममता को समझ सकता हूं। मैं स्वयं उनका बहुत बड़ा प्रशंसक रहा हूं। जे०पी० आंदोलन के प्रति पूरी सहानुभूति होते हुए भी मैंने इंदिरा जी के व्यक्तित्व के विरुद्ध कभी कोई दुर्भावना न मन में बनायी, न शब्दों में व्यक्त की। उसका कारण कोई भय नहीं सच्चा आदर था।

लेकिन सेंशरशिप के मुद्दे पर मैंने उनके निर्णय को कभी उचित नहीं समझा। यह सोचा था कि शायद यह एक अस्थायी कदम है और शीघ्र ही वे पुनः प्रजातांत्रिक ढांचे को सजीव कर देंगी लेकिन इमरजेंसी के तीन चार महीने बाद से ही सत्ता ने जो रूप लेना शुरू किया उससे मुझे बहुत खेद हुआ। और, इंदिरा जी के प्रति मेरे मन में जो आदर था उसको बहुत बड़ी ठेस लगी। आज भी उनके मन मे यदि कोई सच्चा पश्चाताप दीखता तो मुझे बहुत संतोष होता। लेकिन खेद है कि उनके वक्तव्यों में केवल एक राजनीतिक स्वर उभर रहा है। जिस गहरी मानवीय अनुभूति की आशा उनसे की जाती है वह अभी तक तो देखी नहीं।

आपका,
[signature]

श्री शंकरदयाल सिंह,
कामता सदन, बोरिंग रोड,
पटना १।

श्री धर्मवीर भारती 'धर्मयुग' सम्पादक के साथ-साथ देश के उन बुद्धि-जीवियों में हैं, जिन्होने खुली नजरों से घटनाओं को निहारा है तथा अपनी उदार दृष्टि भी रखी है। मेरे एक पत्र के उत्तर में विगत 18 जुलाई, 1977 को उन्होने जो पत्र भेजा, वह ऐतिहासिक दस्तावेज है और उससे यह पता चलता है कि देश का बौद्धिक वर्ग किन परिस्थितियों मे क्या सोच रहा था।

श्रीमती सुमित्रा कुलकर्णी, राज्यसभा की सदस्या और महात्मा गांधी की पौत्री के साथ-साथ मेरी बहन भी हैं। लोकसभा चुनावों के पहले उन्होंने कांग्रेस से इस्तीफा दिया, जिसकी खबर मुझे अपने चुनाव-क्षेत्र में हुई और मेरा मन बोझिल हो उठा तथा दो-चार-दस दिनों तक मैं मानसिक संत्रास में रहा। मैंने उन्हें उन्ही बोझिल दिनों में एक पत्र दिया, जिसका उत्तर उनकी ओर से 14-3-1977 को आया। इस पत्र को मैं इसलिए दे रहा हूं, जिससे गाधीवादी निष्ठा के लोगों की उन दिनों क्या मानसिक यंत्रणा थी, उसकी जानकारी हो सके।

वेरावल (गुजरात)
14-3-1977

शंकर,

कल तुम्हारे दोनों पत्र मिले। उसी समय तुम्हें तार भेजा, आशा है, उससे तुम कुछ आश्वस्त हुए होगे।

वह पत्र मिलने तक तुम्हारे चुनाव समाप्त होंगे। इसलिये लिखने की हिम्मत कर रही हूं। दूसरा—22 मार्च के पश्चात मैं कुछ भी कहूं तो भी मेरी भावना और शब्दों के सातत्य को स्वीकारना तुम्हारे लिये कठिन होगा। आज चुनाव के परिणाम भविष्य के गर्त में निहित हैं। मैं नही जानती क्या होगा। तुम भी नही जानते। इसलिये तुम्हारे स्पष्टीकरण के लिये यह पत्र लिख रही हूं। सौ० कानन को भेज रही हूं। मालूम नही तुम कहां होगे।

तुम्हारे दोनों पत्र मुझे अन्याय करते हैं। इतना ही कहना है कि 'सो काल्ड' स्वजन के प्रति तो ऐसा अन्याय नही ही करना चाहिये किन्तु सर्वथा अपरिचित के प्रति भी इस प्रकार का अन्याय उचित नहीं है। दिल्ली आने पर दोनों पत्र तुम्हें दे दूगी। कानन तुम्हरी सहधर्मचारिणी ही नही है, तुम्हारी सबसे ज्यादा समर्पित और वफादार वकील है। वह निर्णय कर दें, वह मुझे स्वीकार होगा। अस्तु।

तुम्हारी जानकारी के लिए लिख रही हूं कि मैंने किसी 'सौदाबाजी' के लिये या करके यह कदम नही उठाया है। मुझे श्रद्धा नहीं है कि मेरा पक्ष बहुमती प्राप्त करेगा। हां, काफी संख्या में विरोधी पक्ष तुम्हारे सदन में उपस्थित रहेंगे। मगर सर्वथा शक है कि सरकार की विजय हो। मैं 25 मार्च से विरोध पक्ष में बैठने के इरादे से तुम्हारे पक्ष को छोड़कर आई हूं। और कोई अभिलाषा, महत्वाकाक्षा या मनसूबो से नही। 1978 अप्रैल में मेरा सत्र

समाप्त होगा उस दिन मैं राज्यसभा की सीट किसी से भी नहीं मागने वाली हूं। मेरे नये पक्ष में तुम्हारे पक्ष से ज्यादा दूध के धोये या दैवी संत हैं ऐसा समझ कर भी नहीं आई हूं। मात्र जहा थी वहां पर मैं दो साल से ऊपर से व्यथित व्याकुल थी। पहली मार्च की रात पहली बार हल्के मन से प्रसन्नता-पूर्वक मैं सो सकी। और दिल का बोझ दूर हो गया। अब कम से कम मेरे विचार और आचरण में विरोधाभास होने की आवश्यकता नहीं है। तुम्ही ने कहा है मैं रश्मि-वेबू की राजनीति भी नही समझती इसीलिए ऐसा किया है। कम से कम अब सोने के पिंजड़े में बन्द गौरैया नहीं हूं। बाहर विशाल गगन मे विचरण करने की अब स्वतन्त्रता है। मालूम है कि बाज और चील जैसे विशालकाय पक्षी मेरे पर झपट्टा मारेंगे, समाप्त हो जाऊंगी। मगर मृत्यु के पूर्व, अस्त होने के पूर्व, यह मुक्ति गान की प्रसन्नता मुझ पर रहेगी। कम से कम सतत कोई मेरा गला घोटेगा नही और मेरे प्राणों को दबोचेगा नहीं। मुझे किसी से भी जीवन आनन्द की भिक्षा मागनी नहीं पड़ेगी। प्रति दिन के पल विपल के प्रत्याघात से जो विदारित रही उसके बदले एक झटके से समाप्त होना कम दु:खद होगा। कम से कम मेरे स्वमान का हनन नही होगा और करने की चेष्टा करेंगे तो उन व्याघ्रों के तीखे पंजों से दूर होने में इतनी देर नही लगाऊंगी।

सरकार की समस्त शक्ति के सामने हमारी पूर्ण जीत असंभव सी है और जीतने पर भी मैं उस परिधि में न हूं, न होने वाली हूं जहा तुम्हारे शब्दों मे सौदाबाजी काम आयेगी और मुझे यश कीर्ति मिलेगी। मेरा व्यक्तित्व कितना 'प्रस्फुटित' होगा यह तो नहीं जानती, मगर जो थोड़े-बहुत भग्नावशेष बाकी हैं, वह सम्मान के साथ बच जायें इसी एकमात्र इच्छा से छटपटाहट के साथ अलग हुई हूं।

तुम्हारा राजनैतिक अस्तित्व सर्वथा मुझसे अछूता था। इसलिए मैं कहां रहूं, क्या सोचूं, उसकी छाया तुम्हारे यश पर नहीं पड़ेगी, इसका मुझे विश्वास है।

22 मार्च के पश्चात मैं प्रति दिन तिहाड़वासी बनने की तैयारी में हूं। वास्तव में राजे भी इसके लिए तैयार हैं। इसीलिए 18 की रात या 19 की सुबह दिल्ली पहुंचना चाहती हूं। उस मकान की व्यवस्था के लिए चार दिन ज्यादा नहीं है। आशा है, जो स्त्री जेल जाने और विरोध पक्ष में बैठकर राज्यसभा के माननीय सदस्यों के विषाक्त वाणों को झेलने के लिए मैका छोड़कर निकली है, वह सुख, सत्ता या ऐश्वर्य की लालसा से नही, मगर अपने

श्रीमती सुमित्रा कुलकर्णी, राज्यसभा की सदस्या और महात्मा गांधी की पौत्री के साथ-साथ मेरी बहन भी है। लोकसभा चुनावों के पहले उन्होंने कांग्रेस से इस्तीफा दिया, जिसकी खबर मुझे अपने चुनाव-क्षेत्र में हुई और मेरा मन बोझिल हो उठा तथा दो-चार-दस दिनों तक मैं मानसिक संत्रास मे रहा। मैंने उन्हें उन्ही बोझिल दिनों में एक पत्र दिया, जिसका उत्तर उनकी ओर से 14-3-1977 को आया। इस पत्र को मैं इसलिए दे रहा हूं, जिससे गांधीवादी निष्ठा के लोगों की उन दिनों क्या मानसिक यन्त्रणा थी, उसकी जानकारी हो सके।

वेरावल (गुजरात)
14-3-1977

शंकर,

कल तुम्हारे दोनों पत्र मिले। उसी समय तुम्हें तार भेजा, आशा है, उससे तुम कुछ आश्वस्त हुए होगे।

यह पत्र मिलने तक तुम्हारे चुनाव समाप्त होंगे। इसलिये लिखने की हिम्मत कर रही हूं। दूसरा—22 मार्च के पश्चात मैं कुछ भी कहूं तो भी मेरी भावना और शब्दों के सातत्य को स्वीकारना तुम्हारे लिये कठिन होगा। आज चुनाव के परिणाम भविष्य के गर्त में निहित हैं। मैं नही जानती क्या होगा। तुम भी नही जानते। इसलिये तुम्हारे स्पष्टीकरण के लिये यह पत्र लिख रही हूं। सौ० कानन को भेज रही हूं। मालूम नही तुम कहां होगे।

तुम्हारे दोनों पत्र मुझे अन्याय करते है। इतना ही कहना है कि 'सो काल्ड' स्वजन के प्रति तो ऐसा अन्याय नही ही करना चाहिये किन्तु सर्वथा अपरिचित के प्रति भी इस प्रकार का अन्याय उचित नही है। दिल्ली आने पर दोनों पत्र तुम्हे दे दूगी। कानन तुम्हरी सहधर्मचारिणी ही नही है, तुम्हारी सबसे ज्यादा समर्पित और वफादार वकील है। वह निर्णय कर दे, वह मुझे स्वीकार होगा। अस्तु।

तुम्हारी जानकारी के लिए लिख रही हूं कि मैंने किसी 'सौदाबाजी' के लिये या करके यह कदम नही उठाया है। मुझे श्रद्धा नहीं है कि मेरा पक्ष बहुमती प्राप्त करेगा। हा, काफी सख्या में विरोधी पक्ष तुम्हारे सदन मे उपस्थित रहेगे। मगर सर्वथा शक है कि सरकार की विजय हो। मैं 25 मार्च से विरोध पक्ष मे बैठने के इरादे से तुम्हारे पक्ष को छोड़कर आई हूं। और कोई अभिलाषा, महत्वाकांक्षा या मनसूबों से नही। 1978 अप्रैल में मेरा सत्र

समाप्त होगा उस दिन मैं राज्यसभा की सीट किसी से भी नही मांगने वाली हूं। मेरे नये पक्ष में तुम्हारे पक्ष से ज़्यादा दूध के धोये या दैवी संत है ऐसा समझ कर भी नही आई हूं। मात्र जहां थी वहा पर मैं दो साल से ऊपर से व्यथित व्याकुल थी। पहली मार्च की रात पहली बार हल्के मन से प्रसन्नता-पूर्वक मैं सो सकी। और दिल का बोझ दूर हो गया। अब कम से कम मेरे विचार और आचरण में विरोधाभास होने की आवश्यकता नही है। तुम्ही ने कहा है मैं रश्मि-वेबू की राजनीति भी नहीं समझती इसीलिए ऐसा किया है। कम से कम अब सोने के पिंजड़े मे बन्द गौरैया नहीं हू। बाहर विशाल गगन मे विचरण करने की अब स्वतन्त्रता है। मालूम है कि बाज और चील जैसे विशालकाय पक्षी मेरे पर झपट्टा मारेंगे, समाप्त हो जाऊंगी। मगर मृत्यु के पूर्व, अस्त होने के पूर्व, यह मुक्ति गान की प्रसन्नता मुझ पर रहेगी। कम से कम सतत कोई मेरा गला घोंटेगा नही और मेरे प्राणों को दबोचेगा नहीं। मुझे किसी से भी जीवन आनन्द की भिक्षा मांगनी नहीं पड़ेगी। प्रति दिन के पल विपल के प्रत्याघात से जो विदारित रही उसके बदले एक झटके से समाप्त होना कम दुःखद होगा। कम से कम मेरे स्वमान का हनन नही होगा और करने की चेष्टा करेंगे तो उन व्याघ्रों के तीखे पंजों से दूर होने में इतनी देर नही लगाऊंगी।

सरकार की समस्त शक्ति के सामने हमारी पूर्ण जीत असंभव सी है और जीतने पर भी मैं उस परिधि में न हूं, न होने वाली हूं जहां तुम्हारे शब्दो में सौदाबाजी काम आयेगी और मुझे यश कीर्ति मिलेगी। मेरा व्यक्तित्व कितना 'प्रस्फुटित' होगा यह तो नही जानती, मगर जो थोड़े-बहुत भग्नावशेष बाकी हैं, वह सम्मान के साथ बच जायें इसी एकमात्र इच्छा से छटपटाहट के साथ अलग हुई हूं।

तुम्हारा राजनैतिक अस्तित्व सर्वथा मुझसे अछूता था। इसलिए मैं कहां रहूं, क्या सोचूं, उसकी छाया तुम्हारे यश पर नही पड़ेगी, इसका मुझे विश्वास है।

22 मार्च के पश्चात मैं प्रति दिन तिहाड़वासी बनने की तैयारी में हूं। वास्तव में राजे भी इसके लिए तैयार हैं। इसीलिए 18 की रात या 19 की सुबह दिल्ली पहुंचना चाहती हूं। उस मकान की व्यवस्था के लिए चार दिन ज्यादा नही हैं। आशा है, जो स्त्री जेल जाने और विरोध पक्ष में बैठकर राज्यसभा के माननीय सदस्यों के विषाक्त बाणों को झेलने के लिए मैका छोड़कर निकली है, वह सुख, सत्ता या ऐश्वर्य की लालसा से नही, मगर अपने

प्रति कम से कम सनिष्ठ रहे, उसके लिये निकली है, ऐसा तुम समझ पाओगे।

अब इसे समाप्त करूं। काफी काम बाकी है। बच्चों और राजे को भी पत्र लिखने का समय-शक्ति का अभाव है। मगर तुम्हें लिख दिया अन्यथा तुम और अन्य सभी मेरी प्रमाणिकता पर भरोसा नही करोगे।

आगे काफी समय मिलेगा, तुम्हें अच्छा लगेगा तो तुम्हारे पत्र की अन्यायिता को समझाने की कोशिश करूंगी।

परसों तुम्हारे पत्र प्राप्त होने के पूर्व अपनी सारी पवित्रता से भगवान सोमनाथ से आराधना की थी कि मेरे शंकर को यशस्वी करना, संतोष देना। कल तुम्हारे रोष-भरे पत्र ने अन्दर से हिम्मत खत्म कर दी, मगर समाज के सामने मैंने कभी भग्न हृदय को दिखाया ही नही। पहले आघात के बाद तुम्हारे प्रति अगाध प्रेम ने मुझे तुम्हें लम्बा चौड़ा तार देने पर बाध्य किया। पढ़ने वाले पढ़े और चाहे जो सोचे और आशा है, तुम स्वस्थ मन से कार्यरत रहे होगे। हारना-जीतना हमारे हाथ की बात नहीं है। मगर तुम्हारी इतने सालो की व्यवस्था आज विफल नही जायेगी, ऐसी मुझे श्रद्धा है, इसीलिए तार भेजा।

इस सुदूर क्षेत्र में एक भी 12 घण्टे से ज्यादा समय का मेरा परिचित व्यक्ति मेरे पास नही है। मगर यह मेरा और मेरी भावना की विडम्बना है, तो मुझे उसका खेद भी नहीं है।

अभी और तीन दिन है। फिर किसी प्रकार दिल्ली पहुंचू। ओम मेहता का वारट निकले, उसके पहले उन मासूम बच्चो की कुछ व्यवस्था कर पाऊं, यही अंतिम चिन्ता है। अन्यथा मैं ठीक हूं। किसी भी परिणाम से न मुझे धक्का लगने वाला है, न मुझ पर उसकी असर होगी। यह ठीक भी है।

प्यार सहित,

तुम्हारी/दी

और आखिरी दो पत्र हैं श्री सजय गाधी के और प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी के। मैंने एक बार श्री सजय गांधी को एक पत्र लिखा कि 'मुक्तकंठ' के लिए आप कोई अपनी रचना भेजें, जिसका जवाब उनकी ओर से 'मारुति' के पैंड पर आया और पत्र पढ़ने से ही यह पता चल जाता है कि उनके अंदर कितना अहम् घर कर गया था और अपनी राजनीति का केन्द्रबिन्दु

उन्होंने 'मारुति' को ही समझा था। लेकिन दूसरी ओर मैंने जब श्रीमती इन्दिरा गांधी को 'मुक्तकंठ' के विशेषांक के लिए एक संदेश के लिए पत्र दिया, तो फौरन उनका संदेश आया। मां और बेटे का यह फर्क भी समझने योग्य है।

मूल पत्र अंग्रेजी में है, अतः उसका हिन्दी अनुवाद यहां दिया जा रहा है—

मारुति लिमिटेड

रजिस्टर्ड आफिस : पालम गुड़गांव रोड
गुड़गांव (हरियाणा)

प्रसंग : सं० SECT   दिसम्बर 30, 1975

संजय गांधी
मैनेजिंग डायरेक्टर

प्रिय श्री सिंह,

आपके प्रकाशन "मुक्तकंठ" में लेख भेजने हेतु आपके पत्र दिनांक 17 दिसम्बर, 1975 के लिये धन्यवाद।

आपको विदित होगा कि आजकल मैं विभिन्न कार्यों में बहुत व्यस्त हूं और मुझे खेद है कि मैं लेख लिखने के लिये समय नहीं निकाल सकूंगा। मैं आपके तथा प्रकाशन के लिये अपनी शुभकामनायें प्रेषित करता हूं।

सादर,

आपका
ह० संजय गांधी
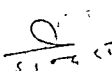
श्री शंकर दयाल सिंह, संसद सदस्य,
18, फिरोजशाह रोड,
नई दिल्ली-110011

प्रधान मन्त्री भारत
PRIME MINISTER,
INDIA

सन्देश

यह काफी नहीं है कि हम आगामी स्वतंत्रता दिवस पहले की तरह ही मनायें। हमारे सामने पहले कई बार बाहरी आक्रमण से खतरे उत्पन्न हुए। हमने उन चुनौतियों का एकता और दृढ़ता से मुकाबला किया। लेकिन आज की चुनौती उससे ज्यादा गंभीर है। कुछ ऐसे लोग और संगठन हैं जो हमारी जनता में फूट डालने की कोशिश कर रहे हैं, और देश को कमजोर बनाना चाह रहे हैं। इसी खतरे की वजह से हमें सख्त कदम उठाना पड़ा। सरकार को जनता के समर्थन और सहयोग की पहले से ज्यादा ज़रूरत है — सिर्फ 'मुक्तकंठ' से नहीं, बल्कि भुजबल और आत्मनिष्ठा से।

इन्दिरा गांधी
(इन्दिरा गांधी)

नई दिल्ली,
23 जुलाई, 1975

उपरोक्त संदेश की भाषा से यह निश्चित रूप से प्रतिध्वनित होता है कि उन दिनों कितनी सख्ती के साथ वे सोच रही थीं।

नवभारत टाइम्स

प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी का चुनाव वैध घोषित
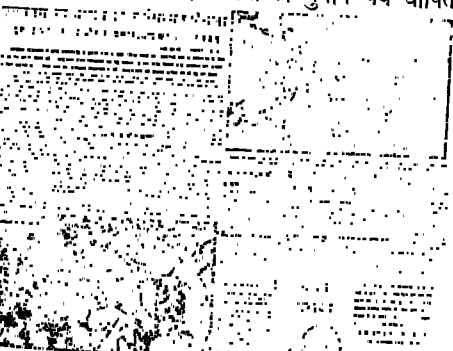
INDIAN EXPRESS

MRS GANDHI'S ELECTION UPHELD

... erupts in Bangladesh;